INSTITUTE OF DISTANCE EDUCATION IDE
Rajiv Gandhi University

BAHIN303
हिंदी गद्य-II

BA (HINDI)

6TH SEMESTER

Rajiv Gandhi University
www.ide.rgu.ac.in

BOARD OF STUDIES	
Prof. Shyam Shankar Singh, (Head) Dept. Of Hindi Rajiv Gandhi University	**Chairman**
Prof. Chandan Kumar Dept. Of Hindi Delhi University	**External Member**
Prof. Dilip Medhi Dept. Of Hindi Guwahati University	**External Member**
Prof. Oken Lego Dept. of Hindi Rajiv Gandhi University	**Member**
Dr. Arun Kumar Pandey Dept. of Hindi Rajiv Gandhi University	**Co-ordinator**

Authors

Dr. Urvija Sharma , Dr. Saroj Kumari, Yatindranath Gaur, Dr. Pankaj Sharma

Vikas revised edition 2021

All rights reserved. No part of this publication which is material protected by this copyright notice may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the Publisher.

"Infomation contained in this book has been published by Vikas Publishing House Pvt. Ltd, and has been obtained by its Authors from sources believed to be reliable and are correct to the best of their knowledge. However, IDE-Rajiv Gandhi University, the publishers and its Authors shall be in no event be liable for any errors, omissions or damages arising out of use of this information and specifically disclaim any implied warranties or merchantability or fitness for any particular use"

Vikas® is the registered trademark of Vikas® Publishing House Pvt. Ltd.
Vikas® PUBLISHING HOUSE PVT LTD
E-28, Sector-8, Noida: 201301 (UP)
Phone: 0120-4078900 Fax: 0120-4078999
Regd. Office: 7561 Ravindra Mansion, Ram Nagar, New Delhi - 110055
Website: www.vikaspublishing.com Email: helpline @vikaspublishing.com

विश्वविद्यालय : एक परिचय

राजीव गाँधी विश्वविद्यालय अरुणाचल प्रदेश के प्रमुख (पूर्व में अरुणाचल विश्वविद्यालय) उच्च संस्थानों में से एक है। स्वर्गीय श्रीमती इंदिरा गांधी ने जो तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री व फरवरी 1984 को रोनो हिल्स पर विश्वविद्यालय की नींव रखी थी यही विश्वविद्यालय का वर्तमान कप विद्यमान है। आरंभ से ही राजीव गांधी विश्वविद्यालय श्रेष्ठता हासिल करने और उन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए प्रयासरत है जो

आरंभ से ही राजीव गाँधी विश्वविद्यालय श्रेष्ठता हासिल करने और उन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए प्रयासरत है जो विश्वविद्यालय अधिनियम में निहित है। 28 मार्च 1985 में विश्वविद्यालय को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा सेक्शन 2 (F) के अंतर्गत अकादमिक मान्यता प्रदान की गई।

26 मार्च, 1994 में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के सेक्शन 12.V के अंतर्गत इसे वित्तीय मान्यता मिली। तब से, राजीव गांधी विश्वविद्यालय ने देश के (तत्कालीन अरुणाचल विश्वविद्यालय) शैक्षिक परिदृश्य में अपना विशिष्ट स्थान बनाया है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा गठित विशेषज्ञों की एक उच्च स्तरीय समिति द्वारा देश के उन विश्वविद्यालयों में राजीव गांधी विश्वविद्यालय को भी चुना गया जिनमें श्रेष्ठता हासिल करने की संभावनाएं व सामर्थ्य है।

9 अप्रैल 2007 से विश्वविद्यालय को मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार की एक अधिसूचना के माध्यम से केंद्रीय विश्वविद्यालय का दर्जा दिया गया।

यह विश्वविद्यालय रोनो हिल्स की चोटी पर 302 एकड़ के विहंगम प्राकृतिक अंचल में स्थित है जहां से दिक्रोंग नदी का अदभुत दृश्य देखने को मिलता है। यह राष्ट्रीय राजमार्ग 52-A से 6.5 कि.मी . और राज्य की राजधानी ईटानगर से 25 किकी दूरी पर स्थित है। दिक्रोंग पुल के द्वारा कैंपस .मी . राष्ट्रीय राजमार्ग से जुड़ा हुआ है।

विश्वविद्यालय के शैक्षिक व शोध कार्यक्रम इस प्रकार तैयार किए गए है कि वे राज्य के सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक विकास में सकारात्मक भूमिका निभा सकें। विश्वविद्यालय स्नातक स्नातकोत्तर एमएड का कोर्स भी .कार्यक्रम भी संचालित करता है। शिक्षा विभाग बी .डी .एच .फिल व पी . चलाता है।

इस विश्वविद्यालय से 15 कॉलेज संबद्ध है। विश्वविद्यालय पड़ोसी राज्यों, विशेषकर असम के छात्रों को भी शैक्षिक सुविधाएं प्रदान कर रहा है। इसके विभिन्न विभागों व इससे जुड़े कॉलेजों में छात्रों की संख्या में निरंतर वृद्धि हो रही है।

यूजीसी व अन्य फडिंग एजेंसियों की वित्तीय सहायता से संकाय सदस्य भी शोध गतिविधियों में सक्रिय रूप से भाग ले रहे हैं। आरंभ से ही विभिन्न फडिंग एजेंसियों द्वारा विश्वविद्यालय के विभिन्न शोध प्रस्तावों को स्वीकृत किया गया है। विभिन्न विभागों ने अनेक कार्यशालाओं, संगोष्ठियों व सम्मेलनों का आयोजन भी किया है। अनेक संकाय सदस्यों ने देश व विदेश में आयोजित सम्मेलनों व संगोष्ठियों में भाग लिया है देश विदेश के प्रमुख विद्वानों व विशिष्ट व्यक्तियों ने-1 विश्वविद्यालयों का दौरा किया है और अनेक विषयों पर अपने वक्तव्य भी प्रस्तुत किए है।

2000-2001 का अकादमिक वर्ष विश्वविद्यालय के लिए सुदृढीकरण का वर्ष रहा। वार्षिक परीक्षाओं से सेमेस्टर प्रणाली में परिवर्तन व्यवधानविहीन रहा और परिणामत छात्रों के प्रदर्शन में भी विशेष सुधार देखा गया बोर्ड ऑफ पोस्ट ग्रेजुएट स्टडीज़ द्वारा बनाए गए विभिन्न पाठ्यक्रमों को लागू किया गया यूजीसी इंफोनेट कार्यक्रम के तहत ERNET इंडिया द्वारा VSAT सुविधा प्रदान की गई ताकि इंटरनेट एक्सेस प्रदान की जा सके।

मूलभूत संरचनागत सीमाओं के बावजूद विश्वविद्यालय अकादमिक श्रेष्ठता बनाए रखने में सफल रहा है। विश्वविद्यालय अकादमिक कैलेंडर का अनुशासित रूप से पालन करता है परीक्षाएं समय पर संचालित की जाती है और परिणाम भी समय पर घोषित होते हैं विश्वविद्यालय के छात्रों को न केवल राज्य व केंद्रीय सरकार में नौकरी के अवसर प्राप्त हुए है बल्कि वे विभिन्न प्रतिष्ठित संस्थाओं उद्योगों व संस्थानों में नौकरी के अवसर प्राप्त करने में सफल रहे हैं। अनेक छात्र NET परीक्षाओं मैं भी सफल हुए हैं। अनेक छात्र | परीक्षाओं में भी सफल हुए हैं NET

आरंभ से अब तक विश्वविद्यालय ने शिक्षण, पाठ्यक्रम में नवीन परिवर्तन लाने व संरचनागत विकास में महत्वपूर्ण प्रगति की है |

ईडीई एक परिचय

हमारे देश में उम शिक्षा प्रणाली को सीमित सीटों सुविधाओं और बुनियादी संसाधनों की कमी के कारण अनेक सामना करना पड़ रहा है। विषयों से जुड़े शिक्षाविद मानते है कि शिक्षा की प्रणाली से अधिक महत्वपूर्ण और जानना है। दूरस्थ शिक्षा प्रणाली इन सभी बुनियादी समस्याओं और समाजिकआर्थिक - बाधाओं को दूर करने का यह प्रणाली ऐसे लाखों लोगों की गुणवत्ता युक्त शिक्षा पाने की मांग की पूर्ति कर रही है जो अपनी रखना चाहते है मगर नियमित रूप महाविद्यालयों में प्रवेश नहीं ले पाते। यह प्रणाली उच्च शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले बेरोजगार कार्यरत पुरुष और महिलाओं के लिए भी मददगार सिद्ध होती है। दूरस्थ शिक्षा प्रणाली उन लोगों के लिए भी उपयुक्त माध्यम है जो सामाजिक, आर्थिक अथवा अन्य कारणों से शिक्षा और शिक्षण संस्थानों से दूर हो गए या समय नही निकाल पाये। हमारा मुख्य उद्देश्य उन लोगों को उच्च शिक्षा की सुविधाएं प्रदान करना है जो मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालय नियमित तथा व्यावसायिक शैक्षिक पाठ्यक्रमों में प्रवेश नहीं ले पाते विशेषकर अरुणाचल प्रदेश के ग्रामीण व भौगोलिक रूप से दूरदराज स्थित क्षेत्रों में व सामान्यतया उत्तरपूर्वी भारत - के दूरस्थ स्थित क्षेत्रों में रान2008 में दूरस्थ शिक्षा केंद्र का नाम परिवर्तित कर दूरस्थ शिक्षा संस्थान रखा गया दूरस्थ शिक्षार्थियों के लिए शिक्षा के अवसरों का विस्तार करने के प्रयास जारी रखते (आईटीई) हुए आईडीई ने2013-14 के शैक्षणिक सत्र में पांच स्नातकोत्तर विषयों शिक्षा अंग्रेजी), हिंदी, इतिहास और राजनीति विज्ञानको शामिल किया है।

दूरस्थ शिक्षा संस्थान में विश्वविद्यालय के पुस्तकालय के पास ही शारीरिक विज्ञान संकाय भवन पहली मंजिल का निर्माण किया गया है। विश्वविद्याल)य परिसर राष्ट्रीय राजमार्ग 52 ए के एनईआरआईएसटी बिंदु से 6 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। विश्वविद्यालय की बसें एनईआरआईएसटी के लिए नियमित रूप से चलती रहती है।

दूरस्थ शिक्षा संस्थान की अन्य विशेषताएं

.1 **नियमित माध्यम के समकक्ष**-पात्रता, अर्हताएं, पाठ्यचर्या सामग्री, परीक्षाओं का माध्यम और डिग्री राजीव गांधी विश्वविद्यालय और विश्वविद्यालय के विभागों के समकक्ष हैं।

2. **स्वयं शिक्षण अध्ययन सामग्री** -(**एसआईएसएम)**छात्रों को संस्थान द्वारा तैयार और दूरत्व शिक्षा परिषद नई दिल्ली द्वारा अनुमोदित स्वय (डीईसी)ं शिक्षण अध्ययन सामग्री प्रदान की जाती है। यह सामग्री प्रदेश के समय आईडीई और अध्ययन केंद्रों में उपलब्ध कराई जाती है। यह सामग्री हिंदी विषय के अलावा सभी विषयों में अंग्रेजी में ही उपलब्ध कराई जाती है।

3. **संपर्क और परामर्श कार्यक्रम (सीसीपी)** कार्यक्रम के प्रत्येक पाठ्यक्रम में व्यक्तिगत संपर्क द्वारा लगभग 7-15 दिनों की अवधि का परामर्श शामिल है। बीपाठ्यक्रमों हालांकि .ए. के लिए सीसीपी में .ए के लिए सीसीपी अनिवार्य नहीं है।.व्यावसायिक पाठ्यक्रमों और एम उपस्थिति अनिवार्य होगी।

.4 **फील्ड प्रशिक्षण और प्रोजेक्ट** -व्यावसायिक पाठ्क्रमों में फील्ड प्रशिक्षण और संबंधित विषय में प्रोजेक्ट लेखन का आवश्यक प्रावधान होगा।

5. **परीक्षा एवं निर्देश का माध्यम** -परीक्षा और शिक्षा का माध्यम उन विषयों को छोड़कर जिनमें संबंधित भाषा में लिखने की जरूरत हो, अंग्रेजी होगा।

6. **विषय परामर्श संयोजक** -पाठ्य सामग्री को तैयार करने के लिए आईडीई विश्वविद्यालय के अंदर और बाहर विषय समन्वयकों की नियुक्ति करती है। विश्वविद्यालय द्वारा नियुक्त परामर्श समन्वयक पीसीसीपी के अनुदेशों को प्रभावी रूप से लागू करने के लिए विश्वविद्यालय के विभिन्न विभागों से जुड़े रहते हैं ये परामर्श समन्वयक परामर्श कार्यक्रम के सुचारु रूप से संचालन तथा विद्यार्थियों के एसाइनमेंट्स का मूल्यांकन करने के लिए संबंधित व्यक्तियों से संपर्क कर आवश्यक समन्वय करते हैं। विद्यार्थी भी इन परामर्श समन्वयकों से संपर्क कर अपने विषय से संबंधित परेशानियों और शंकाओं का समाधान प्राप्त कर सकते हैं।

SYLLABI-BOOK MAPPING TABLE

'हिंदी गद्य – II'

Syllabi- BAHIN-303	Mapping in Book
इकाई : 1 एकांकी; भारतेंदु द्विवेदी युग-; प्रसाद युग ; प्रसादोत्तर युग ; स्वातंत्रयोत्तर युग; स्वातंत्रयोत्तर युग)1947 से अब तक (,कहानी ; कहानी का उद्भव एवं विकास ; नई कहानी एवं ग्रामांचल की कहानियाँ ; निबंध ; सारांस	**इकाई : 1 हिंदी गद्य साहित्य का इतिहास –II**
इकाई 2 : औपन्यासिक तत्वों के आधार पर की समीक्षा 'महाभोज' ; उद्देश्य ; सारांश	**इकाई : 2उपन्यास I – (मन्नू भंडारी : महाभोज)I**
इकाई : 3 का प्रतिपाद्य 'कबिरा खड़ा बाजार में'; कबिरा खड़ा ' का समीक्षात्मक अवलोकन 'बाजार में; सारांश	**इकाई : 3नाटक भीष्म : कबिरा खड़ा बाजार में) साहनी-II**
इकाई : 4 परदा यशपाल :; व्यक्तित्व एवं कृतित्व ; पुरस्कार : मूलपाठ; कथासार ; मुख्य अवतरणों की व्याख्या ; कहानी के तत्वों के आधार पर की समीक्षा 'की समीक्षा 'परदा'; वापसी उषा प्रियंवदा :; व्यक्तित्व एवं कृतित्व ; वापसी : मूलपाठ; कथासार ; मुख्य अवतरणों की व्याख्या ; कहानी के तत्वों के आधार पर 'वापसी' की समीक्षा की समीक्षा '; सारांश	**इकाई 4 : कहानी –II**
इकाई : 5 बसंत आ गया पर कोई उत्कंठा नहीं .डॉ : (ललित निबंध) विद्यानिवास मिश्र; डॉएक परिचय : विद्यानिवास मिश्र .; बसंत आ गया पर कोई उत्कंठा नहीं मूल पाठ :; बसंत आ गया पर कोई उत्कंठा नहीं निबंध सार :; बसंत आ गया पर कोई उत्कंठा नहींसमीक्षात्मक अवलोकन : उदयशंकर भट्ट उदयशंकर भट्ट : (एकांकी) ; उदयशंकर भट्ट एक परिचय :; उदयशंकर भट्ट मूल पाठ :; उदयशंकर भट्ट निबंध सार :; उदयशंकर भट्ट : समीक्षात्मक अवलोकन; सारांश	**इकाई 5 : विविध विधाएँ –II**

विषय-सूची

परिचय

इकाई 1: हिंदी गद्य साहित्य का इतिहास –II

- एकांकी
- भारतेंदु-द्विवेदी युग
- प्रसाद युग
- प्रसादोत्तर युग
- स्वातंत्रयोत्तर युग
- स्वातंत्रयोत्तर युग (1947 से अब तक)
- कहानी
- कहानी का उद्भव एवं विकास
- नई कहानी एवं ग्रामांचल की कहानियाँ
- निबंध
- सारांस

इकाई 2 : उपन्यास (महाभोज : मन्नू भंडारी) – II

- औपन्यासिक तत्वों के आधार पर 'महाभोज' की समीक्षा
- उद्देश्य
- सारांश

इकाई 3 : नाटक (कबिरा खड़ा बाजार में : भीष्म साहनी) – II

- 'कबिरा खड़ा बाजार में' का प्रतिपाद्य
- 'कबिरा खड़ा बाजार में' का समीक्षात्मक अवलोकन
- सारांश

इकाई 4 : कहानी – II

- परदा : यशपाल
- व्यक्तित्व एवं कृतित्व
- पुरस्कार : मूलपाठ
- कथासार

- मुख्य अवतरणों की व्याख्या
- कहानी के तत्वों के आधार पर 'परदा' की समीक्षा' की समीक्षा
- वापसी : उषा प्रियंवदा
- व्यक्तित्व एवं कृतित्व
- वापसी : मूलपाठ
- कथासार
- मुख्य अवतरणों की व्याख्या
- कहानी के तत्वों के आधार पर 'वापसी' की समीक्षा' की समीक्षा
- सारांश

इकाई 5 : विविध विधाएं – II

- बसंत आ गया पर कोई उत्कंठा नहीं (ललित निबंध) : डॉ. विद्यानिवास मिश्र
- डॉ. विद्यानिवास मिश्र : एक परिचय
- बसंत आ गया पर कोई उत्कंठा नहीं : मूल पाठ
- बसंत आ गया पर कोई उत्कंठा नहीं : निबंध सार
- बसंत आ गया पर कोई उत्कंठा नहीं : समीक्षात्मक अवलोकन
- उदयशंकर भट्ट (एकांकी) : उदयशंकर भट्ट
- उदयशंकर भट्ट : एक परिचय
- उदयशंकर भट्ट : मूल पाठ
- उदयशंकर भट्ट : निबंध सार
- उदयशंकर भट्ट : समीक्षात्मक अवलोकन
- सारांश

परिचय

प्रस्तुत पुस्तक 'हिन्दी गद्य' विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित बी.ए. हिन्दी (तृतीय वर्ष) के पाठ्यक्रम के अनुसार लिखी गई है।

गद्य अभिव्यक्ति का एक ऐसा माध्यम है, जिसमें लेखक अपने भावों की प्रस्तुति के लिए सहज रूप से, संवाद अथवा अलंकृत शैली में अपनी बात कहता चला जाता है। काव्य के नियम गद्य में अवरोध पैदा नहीं करते हैं। हिन्दी साहित्य में प्रचुर मात्रा में गद्य कृतियों का प्रणयन हुआ है। आधुनिक युग में गद्य सृजन की कई विधाएं (पद्धतियां) विकसित हुईं। निबंध, कहानी, नाटक, उपन्यास, एकांकी, रेखाचित्र, संस्मरण, रिपोर्ताज, भेंटवार्ता सरीखी अनेकानेक विधाओं के माध्यम से गद्य साहित्य लिखा गया। एक सशक्त हस्ताक्षर के रूप में अनेक लेखक–लेखिकाओं का उदय हुआ, जिन्होंने कई कालजयी रचनाओं से हिन्दी साहित्य–संसार को समृद्ध किया। प्रस्तुत पुस्तक में कुछ ऐसी ही कृतियों का समावेश पाठ्यक्रमानुसार किया गया है।

अध्ययन की सुविधा के लिए संपूर्ण पुस्तक को पांच इकाइयों में समायोजित किया गया है। प्रत्येक इकाई के आरंभ में विषय का विश्लेषण करने से पूर्व उसके निहित उद्देश्यों को स्पष्ट किया गया है। इकाई के बीच–बीच में 'अपनी प्रगति जांचिए' के माध्यम से विद्यार्थियों की योग्यता परखने हेतु प्रश्न दिए गए हैं। इन इकाइयों का विवरण इस प्रकार है–

पहली इकाई 'हिन्दी गद्य साहित्य के इतिहास' पर आधारित है। इसमें हिन्दी साहित्य की प्रमुख विधाओं : उपन्यास, नाटक, एकांकी तथा कहानी के उद्‌भव एवं विकास पर प्रकाश डाला गया है।

दूसरी इकाई मन्नू भंडारी की औपन्यासिक कृति 'महाभोज' पर केंद्रित है। इसमें महाभोज उपन्यास में मुखरित हुई राजनीतिक एवं दलित चेतना की विवेचना करते हुए औपन्यासिक तत्वों के आधार पर उपन्यास की समीक्षा की गई है।

तीसरी इकाई में भीष्म साहनी के लोकप्रिय नाटक 'कबिरा खड़ा बजार में' को अध्ययन का विषय बनाया गया है। इसमें भीष्म साहनी की नाट्यकला पर प्रकाश डालते हुए 'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक का प्रतिपाद्य रेखांकित किया गया है और साथ ही आलोच्य नाटक का समीक्षात्मक अवलोकन भी किया गया है।

चौथी इकाई कथा साहित्य को समर्पित है। इसमें कथाकार जयशंकर प्रसाद, प्रेमचंद, यशपाल व उषा प्रियंवदा के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का संक्षिप्त निरूपण करते हुए उनकी कहानियों क्रमशः 'पुरस्कार', 'पूस की रात', 'परदा' एवं 'वापसी' का विस्तृत अध्ययन किया गया है।

पांचवीं इकाई हिन्दी गद्य की विविध विधाओं से हमारा परिचय कराती है। इसमें आचार्य रामचंद्र शुक्ल के निबंध 'मित्रता', महादेवी वर्मा के रेखाचित्र 'प्रथम भेंट–अंतिम भेंट' (बिट्‌टो), डॉ. विद्यानिवास मिश्र के ललित निबंध 'बसंत आ गया पर कोई उत्कंठा नहीं' और उदयशंकर भट्‌ट की एकांकी 'नए मेहमान' का स्तरीय अध्ययन किया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक 'हिन्दी गद्य' के पाठ्यक्रम का निर्माण सरल भाषा में रुचिकर ढंग से किया गया है। हमें पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक पाठकों की जिज्ञासा को शांत कर पाठ्य–विषय के प्रति उन्हें संतुष्टि प्राप्त करने में सहायक सिद्ध होगी।

इकाई 1: हिंदी गद्य साहित्य का इतिहास –II

1.0 परिचय

आधुनिक काल में हिन्दी गद्य का विकास बौद्धिक, तर्क ज्ञान व चिंतन आदि स्तरों पर विकास के कारण हुआ। आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रवर्तक भारतेंदु ने हिन्दी साहित्य के सभी अंगों को विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। नाटक, कहानी, निबंध, संस्मरण, डायरी, रिपोर्ताज आदि विधाओं में गद्य का विकास उल्लेखनीय रूप से हुआ। आधुनिक काल से पूर्व गद्य का विकास बहुत कम हुआ था। भारतेंदु युग से लेकर शुक्लोत्तर युग में हिन्दी गद्य का जो बहुमुखी विकास दर्शित हुआ वह आज तक प्रभावी है।

आधुनिक काल से पूर्व हिन्दी गद्य विभिन्न चार रूपों में मिलता है– राजस्थानी गद्य, मैथिली गद्य, ब्रजभाषा गद्य तथा खड़ी बोली का प्रारंभिक गद्य। हिन्दी गद्य का आरंभ भारतेंदु से पूर्व ही हो गया था।

फणीश्वरनाथ रेणु स्वातंत्र्योत्तर काल के सशक्त कथाकार हैं। इन्होंने हिन्दी में सही अर्थों में आंचलिक उपन्यास लिखे। *'मैला आंचल'* और *'परती परिकथा'* में ग्रामांचलों के

विशद चित्र देखने को मिलते हैं। *'दीर्घ तपा', 'कितने चौराहे'* और *'जुलूस'* बाद के उपन्यास हैं। हिन्दी गद्य के विकास के साथ ही उपन्यासों की रचना होने लगी।

पांच शताब्दियों के अंतर्धान रहने वाले नाटकों को ही हम आधुनिक गद्य के प्रवर्तन में प्रमुख माध्यम के रूप में देखते हैं। पिछली संस्कृत साहित्य की संपदा अपार है किंतु उसकी उत्तराधिकारिणी हिन्दी में नाटकों की रचना बहुत बाद में हुआ।

एकांकी नाटकों का एक अन्य रूप है अर्थात एक अंक के नाटक ने वर्तमान समय में नाटक से भिन्न अपना स्वतंत्र स्वरूप प्रतिष्ठित कर लिया है। एकांकी बड़े नाटक की अपेक्षा छोटा अवश्य होता है परंतु वह उसका संक्षिप्त रूप नहीं है। हिन्दी एकांकी का विकास क्रमशः भारतेंदु युग, प्रसादोत्तर युग तथा स्वातंत्र्योत्तर युग में संपन्न हुआ। भारतेंदु युग में जो एकांकी लिखी गई वे प्रायः नाटक का ही लघु रूप थी।

कहानियों के आरंभ की परंपरा भी कोई कम पुरानी नहीं है। हिन्दी कहानी का विस्तार अत्यंत प्रभावशील रहा। विभिन्न कालक्रम एवं परिस्थितियों के अनुसार इसका स्वरूप बदलता रहा। कहानी को समय–समय पर विभिन्न नामों से पुकारा जाता रहा– कथा, आख्यान, गल्प आदि। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने *'सरस्वती'* नामक पत्रिका का संपादन किया था। फिर किशोरी लाल गोस्वामी की *'इंदुमती'* नामक कहानी छपी और इसके बाद बंग महिला की *'दुलाई वाली'* और फिर रामचंद्र शुक्ल की *'ग्यारह वर्ष का समय'* प्रकाशित हुई। उपेंद्रनाथ अश्क की कहानियों में प्रेमचंद की भांति सभी वर्गों के पात्र हैं किंतु अधिकांशतया मध्यमवर्गीय एवं निम्नवर्गीय पात्रों का यथार्थ चित्रण मिलता है। *'डाची'* उनकी प्रसिद्ध कहानी है।

गद्य लेखनी की एक अन्य विधा है उपन्यास। हिन्दी में सामाजिक उपन्यासों का आविर्भाव प्रेमचंद से हुआ। उन्होंने सेवासदन, रंगभूमि, कायाकल्प, गबन, गोदान जैसे प्रसिद्ध उपन्यास लिखे। उससे पहले सन् 1877 में श्रद्धाराम ने *'भाग्यवती'* उपन्यास लिखा और उसके बाद सन् 1882 में लाला श्री निवासदास ने *'परीक्षा गुरु'*। *'परीक्षा गुरु'* में उपदेशात्मकता के साथ–साथ समस्त औपन्यासिक तत्वों का समन्वय है। 'परीक्षा गुरु' को ही हिन्दी साहित्य का प्रथम उपन्यास माना जाता है। प्रेमचंद का हिन्दी उपन्यास साहित्य के विकास की परंपरा में एक महत्वपूर्ण योगदान है।

हिन्दी निबंध साहित्य का प्रारंभ भारतेंदु युग से होता है। भारतेंदु के बाद हिन्दी निबंध की विकास यात्रा का दूसरा महत्वपूर्ण सोपान सन् 1901 से सन् 1920 तक माना जाता है। इस युग का लगभग संपूर्ण साहित्य आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की प्रेरणा तथा प्रोत्साहन का परिणाम है। डॉ. श्याम सुंदर दास इस युग के विचारात्मक निबंधकार हैं। श्यामसुंदर दास ने भाषा एवं साहित्य विषयक निबंध ही अधिक लिखे हैं। 'समाज और साहित्य', 'भारतीय साहित्य की विशेषताएं', 'हमारी भाषा', 'हिन्दी गद्य के आदि आचार्य' इनके प्रसिद्ध निबंध हैं। छायावादी कवियों में सर्वाधिक निबंध सूर्यकांत त्रिपाठी निराला ने लिखे। इनके निबंधों में हृदय और बुद्धि पक्ष का सहज समन्वय है, हास्य व्यंग्य का मर्मस्पर्शी विधान है, कविसुलभ भावात्मकता एवं चित्रमयता है। भारतेंदु ने जिस निबंध कला का ढांचा खड़ा किया पं. बालकृष्ण भट्ट ने जिसे गतिमान बनाया और द्विवेदी जी ने पूर्ण संस्कार किया वही निबंध इस काल में आचार्य रामचंद्र शुक्ल के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण तथा मार्मिक चिंतन के

अभिनव तत्वों के साथ विकसित हुए। आधुनिक युग के निबंध साहित्य की एक मुख्य प्रवृत्ति युगीन जीवन की विसंगतियों पर करारी चोट करने वाले हास्य व्यंगात्मक निबंधों की रही है लेकिन हिन्दी लेखन की इतनी समृद्ध परंपरा होने के बावजूद इस क्षेत्र में नये लेखकों का आगमन कम हुआ है।

इस इकाई के अंतर्गत हिन्दी गद्य साहित्य के विकास, उपन्यास, नाटक, एकांकी, कहानी और निबंध आदि गद्य विधाओं का अध्ययन किया गया है।

1.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- हिन्दी गद्य साहित्य की विकास यात्रा का अवलोकन कर पाएंगे;
- हिन्दी उपन्यास, नाटक और एकांकी के उद्‌भव और विकास का अध्ययन कर पाएंगे;
- हिन्दी गद्य साहित्य की कहानी और निबंध विधाओं के उद्‌भव व उनकी विभिन्नताओं का विवेचन कर पाएंगे।

1.5 एकांकी

एकांकी अर्थात एक अंक के नाटक ने आज नाटक से भिन्न अपना स्वतंत्र स्वरूप प्रतिष्ठित कर लिया है। एकांकी बड़े नाटक की अपेक्षा छोटा अवश्य होता है परंतु वह उसका संक्षिप्त रूप नहीं है।

आधुनिक एकांकी वैज्ञानिक युग की देन है। विज्ञान के फलस्वरूप मानव के समय और शक्ति की बचत हुई है, फिर भी जीवन संघर्ष में मानव की दौड़–धूप लगातार जारी है। जीवन की त्रस्तता और व्यस्तता के कारण आधुनिक मानव के पास इतना समय नहीं है कि वह बड़े–बड़े नाटकों, उपन्यासों, महाकाव्यों आदि का संपूर्णतः रसास्वादन कर सके और इसलिए गीत, कहानी, एकांकी आदि साहित्य के लघु रूपों को अपनाया जा रहा है।

ऐतिहासिक दृष्टि से हिन्दी एकांकी के विकास–क्रम को निम्नलिखित प्रमुख काल–खंडों में विभाजित किया जा सकता है–

1. भारतेंदु–द्विवेदी युग
2. प्रसाद युग
3. प्रसादोत्तर युग
4. स्वातंत्र्योत्तर युग

1.5.1 भारतेंदु–द्विवेदी युग

जिस प्रकार भारतेंदु हिन्दी में अनेकांकी नाटकों के लिखने वालों में प्रथम नाटककार माने जाते हैं उसी प्रकार हिन्दी में सबसे पहला एकांकी भी उन्होंने ही लिखा। यद्यपि इस संबंध में विद्वानों में मतभेद अवश्य है। डॉ. त्रिलोकी नारायण दीक्षित, डॉ. नगेंद्र, डॉ. रामकुमार वर्मा आदि के मत में भारतेंदु तथा उनके समकालीन एकांकीकारों के एक अंक वाले नाटकों में संस्कृत में एक अंक वाले रूपकों का प्रभाव है। वास्तव में वे एकांकीकार किसी 'एकांकी' विधा का नाम तक नहीं जानते थे। इसके विपरीत डॉ. सत्येंद्र, प्रो. लालताप्रसाद, प्रो. रामचरण महेंद्र आदि ने भारतेंदु को हिन्दी का प्रथम एकांकीकार माना है। डॉ. सत्येंद्र ने लिखा है कि "यद्यपि एकांकी के नाम से भारतेंदु परिचित नहीं थे और उसे साहित्य का अलग अंग नहीं मानते थे, किंतु आज के विकसित एकांकियों की साहित्य–धारा में जो प्रथमावस्था हो सकती है, वह भारतेंदु के एक अंक वाले नाटकों में स्वतः मिलती है। अतः भारतेंदु जी को हिन्दी का प्रथम एकांकीकार मानने में काई आपत्ति नहीं हो सकती क्योंकि .... भारतेंदु जी के लिखे मौलिक नाटकों में से 'चंद्रावली' और 'अंधेर नगरी' दो नाटक हैं, शेष सब एकांकी।" अस्तु, भारतेंदु प्रणीत 'प्रेमयोगिनी' (1875 ई.) से हिन्दी एकांकी का प्रारंभ माना जा सकता है।

आलोच्य युग में विषयगत दृष्टिकोण को सामने रखकर सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक प्रवृत्तियां उभरीं। समाज में प्रचलित प्राचीन परंपराओं, कुप्रथाओं एवं स्वस्थ सामाजिक विकास में बाधक रीति–रिवाजों को दूर करने का प्रयास उन सामाजिक समस्या–प्रधान रचनाओं के माध्यम से किया गया। इन एकांकीकारों ने जहां सामाजिक कुरीतियों पर हास्य एवं व्यंग्यपूर्ण प्रहार किए वहीं सामाजिक नवनिर्माण के लिए भी समाज को प्रेरित एवं जाग्रत किया। इन रचनाओं के पात्र भारतीय जन–जीवन के जीवित एवं सजीव पात्र हैं जिनकें संवादों द्वारा भारतीय भद्र जीवन में प्रविष्ट पाखंड एवं व्यभिचार का भंडाफोड़ होता है।

भारतेंदुकालीन एकांकियों की धार्मिक पौराणिक धारा के अंतर्गत लिखी गई एकांकियों में धार्मिक कथानकों के आधार पर भारतीय संस्कृति की आदर्शवादी विचारधारा प्रस्तुत की गयी है। इस क्षेत्र में भारतेंदु जी के 'सत्य हरिश्चंद्र' और 'धनंजय', लाला श्रीनिवासदास का 'प्रह्लाद चरित्र', बदरीनारायण प्रेमधन का 'प्रयाग रामागमन', राधाचरण गोस्वामी का 'श्रीदामा' और 'सती चंद्रवली', बालकृष्ण भट्ट का 'दमयंती स्वयंवर', जैनेंद्र किशोर का 'सोभावती' अथवा 'धर्मवती', कार्तिक प्रसाद का 'ऊषाहरण', 'गंगोत्तरी', 'द्रौपदी चीर हरण' और 'निस्सहाय हिंदू', मोहनलाल विष्णुलाल पांड्या का 'प्रह्लाद', खड्गबहादुर मल्ल का 'हरतालिका' आदि में धार्मिक कथानकों पर आधारित पौराणिक एकांकियों के माध्यम से सांस्कृतिक आदर्श प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया।

इस युग में हास्य–व्यंग्य प्रधान एकांकी सर्वाधिक लिखे गए जो प्रहसन की श्रेणी में आते हैं। ये प्रहसन धार्मिक और सामाजिक दोनों प्रकार के विषयों को अपने भीतर समेटे

हुए हैं। इन प्रहसनों पर पारसी रंगमंच का सर्वाधिक प्रभाव है, इसलिए उच्चकोटि क हास्य एवं व्यंग्य इनमें नहीं मिलता। फिर भी सामाजिक क्षेत्र में बाल–विवाह, अनमेल विवाह, वेश्यागमन, मद्यपान, विलासप्रियता आदि पर व्यंग्य किया गया है और धार्मिक क्षेत्र में धार्मिक संकीर्णता और उसकी आड़ में किया पाखंड, पंडागिरी, कर्मकांड, ज्योतिषियों की धोखेबाजी आदि पर आक्षेप किए गए हैं। इस प्रकार के एकांकियों में कमलाचरण मिश्र का 'अद्‌भुत नाटक', श्री जगन्नाथ का 'वर्ण व्यवस्था', माधोप्रसाद का 'वैसाखनंदन', घनश्यामदास का 'वृद्धावस्था विवाह', दुर्गाप्रसाद मिश्र का 'प्रभात मिलन', अम्बिकादत्त व्यास का 'गौ–संकट' और 'मन की उमंग', देवकीनंदन त्रिपाठी का 'जय नरसिंह की', 'सैकड़ों में दस–दस', 'कलयुगी जनेऊ', 'कलियुगी विवाह', 'एक एक के तीन तीन', 'बैल छः टके का', 'वेश्याविलास' आदि, बालकृष्ण का 'शिक्षादान', खड्‌गबहादुर मल्ल का 'भारत–आरत' आदि उल्लेखनीय हैं।

ये रचनाएं वास्तव में एक अंक के नाटक ही हैं। एकांकी की परंपरा में आते हुए भी इन्हें सभी दृष्टियों से पूर्ण 'एकांकी' नहीं कहा जा सकता। इनमें एकांकी के कुछ तत्व अवश्य पाए जा सकते हैं। इस युग के एकांकीकारों ने शैली को निखारने की ओर ध्यान न देकर समाज–सुधार पर ध्यान दिया।

1.5.2 प्रसाद–युग

आधुनिक हिन्दी साहित्य के विकास संदर्भ में भारतेंदु एवं द्विवेदी युग अलग–अलग दो युगों के रूप में मान्य होने पर भी हिन्दी एकांकी के विकास की दृष्टि से एक ही माने जाते हैं, क्योंकि द्विवेदी युग में नाट्यकला की स्थिति में कोई विशेष प्रगति नहीं हुई और न ही ऐसा प्रतिभा संपन्न एकांकीकार इस युग में हुआ जो इस युग की हिन्दी को एकांकी के क्षेत्र में प्रमुखता दिलाता। अतः हिन्दी एकांकी के विकास की दृष्टि से द्वितीय युग प्रसाद युग के नाम से जाना जाता है। इस संदर्भ में आधुनिक एकांकी साहित्य की प्रथम मौलिक कृति के रूप में प्रसाद के 'एक घूंट' का उल्लेख किया जा सकता है। यह रचना सन् 1929 में प्रकाशित हुई। यहीं से हम एकांकी के शिल्प में महत्वपूर्ण परिवर्तन देखते हैं। फिर भी एकांकी साहित्य में इसके स्थान और महत्व पर विद्वानों में काफी मतभेद है। परंतु पुरानी नाट्य परंपरा के आदर्श पर 'एक घूंट' एकांकी की जो नव्यतर प्रवृत्तियां मिलती हैं, उनके आधार पर उसको आधुनिक एकांकी के रूप में देखना अनुचित नहीं होगा। रसोद्रेक के लिए संगीत–व्यवस्था, संस्कृत नाट्य प्रणाली का विदूषक, स्वगत कथन आदि प्राचीन परंपराओं के निर्वाह के साथ ही स्थल की एकता, पात्रों का मनोवैज्ञानिक चरित्र–चित्रण, गतिशील कथानक आदि आधुनिक एकांकी सभी विशेषताएं 'एक घूंट' में मिलती हैं। अतः भारतेंदु ने यदि आधुनिक एकांकी की नींव डाली है तो उसे पल्लवित और पुष्पित करने का श्रेय प्रसाद जी को ही है।

वास्तव में आधुनिक ढंग से हिन्दी एकांकियों का विकास प्रसाद युग में ही हुआ, क्योंकि इस युग में कुछ युगांतकारी नवीन प्रयोग एकांकी क्षेत्र में हुए। इस युग में एकांकीकारों ने पाश्चात्य अनुकरण पर नवीन शैली में एकांकी लिखना प्रारंभ किया तथा पाश्चात्य तकनीक को अपनाया। स्पष्टतः इस युग में एकांकी नाटकों में पाश्चात्य नाट्य

सिद्धांतों की प्रेरणा एवं प्रभाव विद्यमान है। पाश्चात्य नाटककारों, हैनरिक इब्सन, गाल्सवर्दी तथा बर्नाड शॉ आदि का प्रभाव इस युग के एकांकियों पर प्रत्यक्ष रूप से पड़ा तथा इससे एकांकी साहित्य को परिपक्वता की स्थिति पर पहुंचने में सहायता मिली।

आलोच्य युग के एकांकियों में अभिनव तत्वों की मान्यता परिलक्षित होती है। अंकों के स्थान पर एकांकी में दृश्यों का प्रयोग हुआ। भारतेंदु युग में जो एकांकी संस्कृत परिपाटी पर रचे गए थे, इस युग में वे नवीन रूपों में विकसित होने लगे। प्राचीनता का मोह छोड़कर नवीन ढंग के एकांकी नाटक लिखे गए जो कथानक की दृष्टि से मानव जीवन के अत्यधिक निकट थे। प्राचीन कथावस्तु में जो कृत्रिमता होती थी उसके स्थान पर सामाजिक, पारिवारिक एवं दैनिक समस्याओं को एकांकी का विषय बनाना प्रारंभ किया गया। ये रचनाएं यथार्थवाद के निकट आयीं। प्राचीन कृत्रिम प्रणाली, काव्यमय कथोपकथन, प्राचीन रंगमंच एवं अस्वाभाविकता के बहिष्कार का स्वर इस युग की रचनाओं में प्रमुखतया प्राप्त होता है। नयी समस्याएं, विचारधारा एवं गद्यात्मक शिष्ट भाषा का प्रयोग प्रारंभ हुआ।

प्रसाद युग में जिन सामाजिक एकांकियों की रचना हुई उन पर युगीन सामाजिक पृष्ठभूमि का प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होता है। प्रसाद युगीन एकांकीकारों का आलोच्य युग की अन्य नवीन समस्याओं की ओर भी ध्यान आकर्षित हुआ।

तत्कालीन समाज की नग्न विकृतियों का चित्रण करने वाले अनेक एकांकियों की रचना इस युग में हुई। जीवानंद शर्मा कृत 'बाला का विवाह', हरिकृष्ण शर्मा कृत 'बुढ़ऊ का ब्याह', जी.पी. श्रीवास्तव रचित 'गड़बड़झाला' और 'भूलचूक, रामसिंह वर्मा कृत 'रेशमी रूमाल', श्री बदरीनाथ भट्ट कृत 'विवाह विज्ञापन', डॉ. सत्येंद्र कृत 'बलिदान' आदि प्रमुख हैं।

इस युग के एकांकियों में राष्ट्रीयता का स्वर सर्वाधिक मुखरित हुआ है। मंगल प्रसाद विश्वकर्मा कृत 'शेरसिंह', सुदर्शन कृत 'प्रताप प्रतिज्ञा', 'राजपूत की हार' तथा 'जब आंखें खुलती हैं' आदि राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत एकांकी रचनाएं हैं।

प्रसाद युगीन एकांकीकारों ने अनेक ऐतिहासिक एकांकियों की रचना करके भारतीय जनता को प्राचीन भारतीय गौरव एवं अतीत के स्वरूप का स्मरण कराया। मंगलाप्रसाद विश्वकर्मा कृत 'शेरसिंह' में राष्ट्रीयता, स्वातंत्र्य प्रेम तथा भारतीय अतीत के गौरवशाली स्वरूप की प्रतिष्ठा है। श्री आनंदी प्रसाद श्रीवास्तव कृत 'नूरजहां', 'चाणक्य और चंद्रगुप्त', 'शिवाजी और भारत राजलक्ष्मी' ऐतिहासिक कृतियां हैं। श्री ब्रजलाल शास्त्री रचित 'निला', 'दुर्गावती', 'पद्मिनी', 'पन्ना', 'तारा', 'किरण देवी' आदि ऐतिहासिक आदर्शवाद से प्रभावित अतीत गौरव को स्पष्ट करने वाली रचनाएं हैं। श्री सुदर्शन कृत 'राजपूत की हार', 'प्रताप प्रतिज्ञा' आदि में राजपूती शौर्य, राजपूती स्त्रियों का स्वदेश हित हेतु कर्तव्य का पालन एवं देश प्रेम की भावना का प्रभावपूर्ण वर्णन हुआ है। सेठ गोविंददास ने तो बहुत ही बड़ी संख्या में ऐतिहासिक एकांकियों की रचना की है।

धार्मिक पौराणिक एकांकी धारा को प्रवाहित करने में राधेश्याम कथावाचक कृत 'कृष्ण–सुदामा', 'शांति के दूत भगवान', 'सेवक के रूप में भगवान कृष्ण', जयदेव शर्मा रचित 'न्याय और अन्याय', जयशंकर प्रसाद कृत 'सज्जन' और 'करुणालय', आनंदी प्रसाद कृत

'पार्वती और सीता', चतुरसेन शास्त्री कृत 'सीताराम', राधा–कृष्ण', हरिश्चंद्र–शैव्या' आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इस प्रकार प्रसाद युग में कुछ एकांकीकारों ने धार्मिक पौराणिक एकांकी की प्रवृत्ति को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण योग दिया।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि इस युग ने आगामी एकांकीकारों को एक ठोस आधारभूमि प्रदान की जिसमें आधुनिक एकांकी साहित्य और भी स्वतंत्र रूप से विकसित हुआ।

1.5.3 प्रसादोत्तर युग

प्रसादोत्तर युग में यद्यपि एकांकी की अनेक प्रवृत्तियों को प्रश्रय मिला है तथापि सामाजिक एकांकी की प्रवृत्ति पर लगभग सभी युगीन एकांकीकारों ने अपनी लेखनी चलाई। प्रस्तुत युग के प्रमुख एकांकीकार डॉ. रामकुमार वर्मा ने तो अनेक सामाजिक समस्या प्रधान एकांकियों की रचना करके हिन्दी एकांकी साहित्य को बहुमूल्य धरोहर प्रदान की है। इन्होंने जीवन की वास्तविकता को अपनी एकांकियों का आधार बनाया। इस दृष्टि से इनके 'एक तोले अफीम की कीमत', 'अठारह जुलाई की शाम', 'दस मिनट', 'स्वर्ग का कमरा', 'जवानी की डिब्बी', 'आंखों का आकाश', 'नहीं का रहस्य', 'रंगीन स्वप्न' आदि एकांकियां सामाजिक एकांकी की प्रवृत्ति का प्रतिनिधित्व करते हैं। वर्मा जी के समान उपेंद्रनाथ 'अश्क' का ध्यान भी विविध वैयक्तिक, पारिवारिक एवं सामाजिक समस्याओं की ओर गया। इनकी एकांकी रचनाओं में 'चरवाहे', 'चिलमन', 'लक्ष्मी का स्वागत', 'पहेली', 'सखी डाली', 'अंधी गली', 'तूफान से पहले' आदि सामाजिक दृष्टि से विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। श्री शंभुदयाल सक्सेना रचित 'कन्यादान', 'नेहरू के बाद', 'मुर्दों का व्यापार', 'नया समाज', 'नया हल नया खेत', 'सगाई', 'मृत्युदान' आदि एकांकी सामाजिक समस्याओं को प्रस्तुत करते हैं। हरिकृष्ण प्रेमी ने 'बादलों के पार', 'वाणी मंदिर', 'सेवा मंदिर', 'घर या होटल', 'निष्ठुर न्याय' आदि एकांकी रचनाओं में विविध सामाजिक समस्याओं का अंकन किया है जिनमें विधवा समस्या, नारी की आधुनिकता, वर्ग वैषम्य, जातीय बंधन की संकीर्णता, प्राचीन परंपराओं एवं मान्यताओं की अर्थहीनता, पुरुष की वासना लोलुपता एवं दुष्चरित्रता आदि का चित्रण प्रमुख रूप से किया है। भगवतीचरण वर्मा कृत 'मैं और केवल मैं', 'चौपाल में', तथा 'बुझता दीपक' में पीड़ित मानव की अंतर्वेदना का करुण स्वर उभर कर सामने आया है। श्री रामवृक्ष बेनीपुरी रचित 'नया समाज', 'अमर ज्योति' तथा 'गांव का देवता' आदि रचनाएं सामाजिक समस्या प्रधान हैं। श्री सद्गुरुचरण अवस्थी ने भारतीय संस्कृति के आदर्शों को उपयुक्त एवं उचित तर्कों की कसौटी पर कसकर उनको समाज के लिए उपयोगी सिद्ध किया जिनमें बुद्धि, तर्क एवं विवेक का प्राधान्य है। इस दृष्टि से 'हां में नहीं का रहस्य', 'खद्दर', 'वे दोनों' आदि विशेष महत्वपूर्ण रचनाएं हैं। इनके अतिरिक्त चंद्रगुप्त विद्यालंकार रचित 'प्यास' तथा 'दीनू', श्री यज्ञदत्त शर्मा कृत 'छोटी बात', 'साथ', 'दुविधा', एस.सी. खत्री रचित 'बंदर की खोपड़ी', 'प्यारे सपने', श्री सज्जाद जहीर रचित 'बीमार' आदि रचनाओं में सामाजिक जीवन के सत्य को उभारते हुए इसका सर्वपक्षीय चित्रण किया गया है।

प्रसादोत्तर युग राजनीतिक क्रांति का युग था। गांधी जी का प्रभाव राजनीतिक जीवन में विशेष रूप से पड़ रहा था। दूसरी ओर ब्रिटिश सरकार का दमन चक्र भी

राजनीतिक क्रांति को कुचलने के लिए तीव्र गति से चल रहा था। एकांकीकारों ने तत्कालीन राजनीतिक समस्याओं एवं गतिविधियों का चित्रण करना तथा देशवासियों में देश प्रेम एवं स्वतंत्रता की भावना को प्रबल करना अपना महान कर्तव्य समझा।

आलोच्य युग में कुछ देशद्रोही वैयक्तिक स्वार्थों के कारण ब्रिटिश शासकों का साथ दे रहे थे। ऐसे देशद्रोहियों को देशभक्ति की शिक्षा देने की दृष्टि से एकांकीकारों ने ऐतिहासिक पात्रों के आदर्श एवं त्यागमय चरित्र को प्रस्तुत करके प्राचीन भारतीय गौरव की ओर ध्यान भी आकर्षित करवाया। डॉ. रामकुमार वर्मा के ऐतिहासिक एकांकियों में 'चारुमित्र', 'पृथ्वीराज की आंखें', 'दीपदान', 'रात का रहस्य', 'प्रतिशोध', 'राज श्री' आदि प्रमुख हैं। जगदीशचंद्र माथुर ने 'कलिंग विजय' तथा 'शारदीया' शीर्षक एकांकियों की रचना ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर की है तथा भारतीय सांस्कृतिक वातावरण का प्रभावोत्पादक स्वरूप चित्रित किया है। राष्ट्रीय ऐतिहासिक भावना पर 'सिकंदर', 'जेरुसलम' आदि एकांकियों की रचना करके भुवनेश्वर प्रसाद ने अपने देश प्रेम का परिचय दिया है।

हरिकृष्ण प्रेमी रचित 'मान मंदिर', 'न्याय मंदिर', 'मातृभूमि का मान', 'प्रेम अंधा है', 'रूपशिखा' आदि राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत ऐतिहासिक रचनाएं हैं। श्री यज्ञदत्त शर्मा रचित 'प्रतिशोध' तथा 'हेलन' में भारत के गौरवमय अतीत की झांकी प्रस्तुत की गयी है। डॉ. सत्येंद्र रचित 'कुणाल', 'प्रायश्चित', 'विक्रम का आत्ममेघ' में प्राचीन कथानक लेकर स्वस्थ तथा तार्किक विचारधारा को प्रतिपादित किया गया है। भारतीय सांस्कृतिक गौरव की प्रतिष्ठा, अतीत कालीन भारतीय गौरव की महत्ता तथा नागरिकों के चारित्रिक बल की अभिवृद्धि करने वाले आदर्श पात्रों की सृष्टि करके लेखक ने राष्ट्रीय पुनर्निर्माण में सहयोग प्रदान किया है। गिरिजाकुमार माथुर रचित 'विषपान', 'कमल और रोटी', 'वासवदत्ता' आदि में देशभक्तिपूर्ण आत्म बलिदान तथा राष्ट्रीय स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु किए गए शौर्यपूर्ण कार्यों का चित्रण है। श्री रामवृक्ष बेनीपुरी रचित 'संघमित्रा', 'सिंहल विजय', 'नेत्रदान', 'तथागत' आदि प्रसिद्ध ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रसादोत्तर युग में अनेक एकांकीकारों ने बहुत बड़ी संख्या में ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के आधार पर एकांकियों की रचना करके प्राचीन भारतीय गौरव को वर्तमान के समक्ष रखा है।

आलोच्य युग में अनेक एकांकीकारों ने अनेक हास्य व्यंग्य प्रधान एकांकियों की रचना करके विभिन्न सम–सामयिक समस्याओं का अभिव्यक्तिकरण एवं समाधान प्रस्तुत किया। इन एकांकीकारों ने उन विभिन्न समस्याओं पर व्यंग्यामक प्रहार किया जो सामाजिक, साहित्यिक एवं राजनीतिक जीवन के लिए अभिशाप बनी हुई थीं। उपेंद्रनाथ 'अश्क' ने विशेष रूप से इस श्रेणी के एकांकियों की रचना की।

मनोवैज्ञानिक एकांकी की प्रवृत्ति का जन्म प्रसादोत्तर युग में आकर हुआ क्योंकि इस समय तक मनोविज्ञान विषय का पर्याप्त विकास हो चुका था। पाश्चात्य एकांकीकारों के प्रभावस्वरूप हिन्दी एकांकीकारों ने भी पात्रों के मन की गहराइयों में पहुंचकर उनके मनोभावों के चित्रण को परमावश्यक समझा। जगदीशचंद्र माथुर रचित 'मकड़ी का जाला', भुवनेश्वर प्रसाद रचित 'ऊसर', 'प्रतिमा का विवाह' तथा 'लाटरी' आदि मनोविश्लेषण प्रधान मनोवैज्ञानिक रचनाएं हैं।

इस प्रकार प्रसादोत्तर युग में एकांकी साहित्य का एक स्वतंत्र अस्तित्व परिलक्षित होता है। अनेक पाश्चात्य नाटककारों जैसे इब्सन, शॉ, गाल्सवर्दी, चेखव आदि एकांकीकारों की रचनाओं का हिन्दी अनुवाद प्रारंभ हो गया था। इन अंग्रेजी एकांकियों के हिन्दी अनुवादों की मांग रेडियो के क्षेत्र में अधिक थी। इस प्रकार आलोच्य युगीन एकांकीकारों ने विभिन्न नवीन प्रयोगों के द्वारा हिन्दी एकांकी साहित्य को समृद्धशाली बनाया।

1.5.4 स्वातंत्र्योत्तर युग (1947 से अब तक)

हिन्दी एकांकी के विकास की चौथी अवस्था में हिन्दी एकांकियों पर रेडियो का प्रभाव बड़ी गहराई से पड़ा है। रेडियो नाटकों के रूप में नाटकों का नवीन रूप हमारे समक्ष आया। एक सरल व सस्ती मनोरंजन का माध्यम होने के कारण श्रोतागण इसमें रुचि लेने लगे। इसलिए रेडियो एकांकियों की मांग इस युग में अधिक रही।

आलोच्य युग प्रत्येक दृष्टि से क्रांतिकारी परिवर्तनों का युग था। इसमें पूर्व युग की सभी प्रवृत्तियों का समुचित उत्कर्ष हुआ। इस युग में सामाजिक जीवन में होने वाले विभिन्न पक्षीय परिवर्तनों और विकास का यथार्थपरक चित्रण करते हुए जहां एक ओर प्रमुख सामाजिक समस्याओं का निदान प्रस्तुत किया गया वहां सामाजिक विघटन के कारणों का भी विश्लेषण हुआ। इन एकांकीकारों द्वारा सामाजिक कुरीतियों पर जोरदार शब्दों में की गयी टीका टिप्पणी इस तथ्य का द्योतक है कि इन एकांकीकारों का सामाजिक दृष्टिकोण सुधारवादी है। इस क्षेत्र में विनोद रस्तोगी रचित 'बहू की विदा', कणाद ऋषि भटनागर रचित 'नया रास्ता' तथा 'अपना घर' दहेज की कुप्रथा का पर्दाफाश करते हैं। प्रस्तुत युग के सामाजिक एकांकी में विनोद रस्तोगी, जयनाथ नलिन, लक्ष्मीनारायण लाल, राजाराम शास्त्री, कैलाश देव, विष्णु प्रभाकर माचवे, रेवतीशरण शर्मा, श्री चिरंजीत, भारत भूषण अग्रवाल, कृष्ण किशोर, करतार सिंह दुग्गल, स्वरूप कुमार बख्शी, गोविंद लाल माथुर आदि ने समाज में व्याप्त विभिन्न सामाजिक रूढ़ियों एवं विकृतियों के चित्र खीचें हैं। इस युग के एकांकीकारों का यथार्थपरक दृष्टिकोण एवं मानवीय मूल्यों के प्रति विशेष आग्रह रहा है। विष्णु प्रभाकर के एकांकियों में 'बंधन मुक्त', 'पाप', 'साहस', 'प्रतिशोध' तथा 'इनसान', 'वीर पूजा' आदि प्रमुख हैं।

आलोच्य युग के हिन्दी एकांकी में राजनीतिक जीवन, स्वाधीनता संघर्ष, बंगाल का अकाल, भुखमरी, फासीवाद का विरोध, जागीरदारी और देशी नरेशों का जीवनयापन तथा अन्य अनेक राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय समस्याएं प्रकट हुई हैं। जयनाथ नलिन की राष्ट्रीय रचनाओं में सृजनात्मक प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं। देश की स्वतंत्रता, इसके लिए किया हुआ बलिदान, सर्वोच्य त्याग, सतत उद्योग एवं कर्म की आवश्यकता के महत्व का प्रतिपादन इनकी रचनाओं में हुआ है। इनके 'विद्रोही की गिरफ्तारी', 'देश की मिट्टी', 'युग के बाद', 'लाल दिन' आदि राष्ट्रीय भावना से परिपूर्ण एकांकी हैं। विष्णु प्रभाकर ने जो राजनीतिक भावना से परिपूर्ण एकांकी लिखे उनमें राजनीतिक उथल–पुथल, समाज पर राजनीतिक प्रभाव, स्वतंत्रता आंदोलन तथा राजनीतिक गौरव का चित्रांकन किया गया है। इसके अतिरिक्त स्वातंत्र्योत्तर युग में अन्य अनेक प्रतिभा संपन्न एकांकीकार भी हुए जिन्होंने अपनी प्रतिभा का परिचय देते हुए हिन्दी एकांकी को संपन्न एवं समृद्ध बनाने में महत्वपूर्ण योग दिया है।

संक्षिप्त रूप में, हिन्दी एकांकी का विकास क्रमशः भारतेंदु युग, प्रसादोत्तर युग तथा स्वातंत्र्योत्तर युग में संपन्न हुआ। भारतेंदु युग में जो एकांकी लिखी गई वे प्रायः नाटक का ही लघु रूप थी। इस युग में एकांकी का स्वतंत्र रूप नहीं मिलता। किंतु प्रसाद युग से प्रारंभ होकर स्वातंत्र्योत्तर काल तक इसका स्वतंत्र स्वरूप निश्चित हुआ जो निश्चित रूप से प्रगति युग कहा जा सकता है।

1.6 कहानी

कथा कहने और सुनने की प्रवृत्ति आदिम काल से चली आ रही है। कहानी नामक विधा का उद्‌भव बीसवीं शताब्दी की देन है। भले ही कहानी का स्रोत खोजने वाले कभी इसे पंचतंत्र, हितोपदेश, जातक–कथा की महान कहानियों से जोड़ने का प्रयास करते हैं तो कभी ऋग्वेद के संचार सूक्तों, उपनिषदों की रूपक–कथाओं, रामायण और महाभारत के उपाख्यानों से। इतना ही नहीं, वे इसका संबंध *बेताल पचीसी, सिंहासन बत्तीसी* से जोड़कर मध्य देशों की अरबी–फारसी से लिखी *अलिफ–लैला, हजार दास्तान, गुलिस्ता–बोस्तां* से जोड़ते हुए प्रसिद्ध लोक–कथाओं *शीरीं–फरहाद, लैला–मजनू* तक पहुंच जाते हैं। इन कथाओं में विलक्षण कल्पना, घटना–जाल, चमत्कार, प्रश्नोत्तर, जिज्ञासा, संघर्ष, जय–विजय आदि का अद्‌भुत चित्रण मिलता है। सारांश यह कि कहानियों के आरंभ की परंपरा अति प्राचीन है। कालक्रम एवं परिस्थितियों के अनुसार इसका स्वरूप बदलता रहा। कहानी को समय–समय पर विभिन्न नामों से पुकारा जाता रहा– कथा, आख्यान, गल्प आदि।

1.6.1 कहानी का उद्‌भव एवं विकास

इन सभी स्वीकृतियों के बाद इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि आज जिस रूप में कहानी लिखी जा रही है वह परंपरागत कदापि नहीं है। उसका स्वरूप नितांत भिन्न है। जिस प्रकार आधुनिक युग में पाश्चात्य साहित्य के प्रभाव से हिन्दी साहित्य की अन्य विधाओं यथा नाटक, उपन्यास, निबंध, समालोचना आदि का सूत्रपात हुआ उसी प्रकार से कहानी का जन्म अंग्रेजी की *'शार्ट–स्टोरी'* से हुआ।

अब प्रश्न यह उठता है कि हिन्दी की पहली कहानी किसे माना जाए। अन्य आधुनिक गद्य–विधाओं के समान आधुनिक कहानी का प्रवर्तन भारतेंदु युग में ही हुआ। कुछ विचारक इंशा अल्ला खां की 'रानी केतकी की कहानी' को हिन्दी की प्रथम कहानी मानते हैं। इसमें किस्सागोई के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। इसके बाद राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद की 'राजा भोज का स्वप्न' और भारतेंदु की 'एक उद्‌भुत अपूर्व स्वप्न' नामक कहानियां सामने आईं। इनमें कहानी नाम का कोई तत्व उपलब्ध नहीं होता। इन्हें कथात्मक शैली के निबंध कहा जा सकता है। इसी समय पाश्चात्य साहित्य के प्रभाव से बांग्ला, मराठी और गुजराती में भी इन कहानियों के अनुवाद होने लगे। इन अनुवादों ने ही हिन्दी साहित्यकारों को कहानी लेखन के लिए प्रेरणा दी। यहीं से हिन्दी की मौलिक कहानी ने स्वरूप लिया। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' नामक पत्रिका का संपादन किया था। 'सरस्वती' के प्रथम वर्ष में ही किशोरी लाल गोस्वामी की 'इंदुमती' नामक कहानी छपी और इसके बाद

बंग महिला की 'दुलाई वाली' रामचंद्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय' प्रकाशित हुई। इन कहानियों को हम प्रयोगशील कहानियां कह सकते हैं जिनमें कहानीकारों ने विदेशी या बांग्ला साहित्य के प्रभाव में आकर हिन्दी में कहानी लिखने का प्रयास किया। कुछ विद्वान गुलेरी जी की 'उसने कहा था' को हिन्दी की पहली कहानी मानते हैं। अब माधवराव सप्रे की कहानी 'एक टोकरी भर मिट्टी' को हिन्दी की पहली कहानी माना जाता है, जो 1901 में प्रकाशित हुई थी।

कहानी का विकास

1900 से लेकर आज तक कहानी लेखन का क्रम उत्तरोत्तर विकास के पथ पर अग्रसर आपके अध्ययन की सुविधा के लिए हम इसे चार भागों में विभाजित करते हैं–

1. पूर्व प्रेमचंद युग
2. प्रेमचंद–प्रसाद युग
3. उत्तर प्रेमचंद युग
4. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी

1. **पूर्व प्रेमचंद युग** – इस काल को हिन्दी कहानी का शैशव काल कहा जा सकता है। इस काल की प्रतिनिधि कहानियों के विषय में अभी ऊपर आपको बताया है– किशोरी लाल गोस्वामी की *इंदुमती,* रामचंद्र शुक्ल की *'ग्यारह वर्ष का समय'*, बंग महिला की *'दुलाई वाली'* और माधवराव सप्रे की *'एक टोकरी भर मिट्टी'*। इसी समय कुछ और कहानियां भी प्रकाश में आईं– किशोरी लाल गोस्वामी की *'गुलबहार'*, मास्टर भगवान दास की *'प्लेग की चुड़ैल'*, वृंदावनलाल वर्मा की *'राखी बंध भाई'* आदि। इनमें किसी प्रकार की प्रौढ़ता दिखाई नहीं देती।

2. **प्रेमचंद–प्रसाद युग** – पुरानी कथा कहानियां घटना वैचित्र्य के द्वारा मनोरंजन तो कर देती थीं किंतु शिक्षित जनता को प्रभावित नहीं कर पातीं थीं। पाश्चात्य कहानी कला से परिचित होते ही हिन्दी में कलापूर्ण कहानियों की सृष्टि होने लगी। सौभाग्य की बात है कि अपने प्रारंभिक काल में ही कहानी को प्रेमचंद और प्रसाद जैसी दो ऐसी रचना शक्तियां मिलीं जिन्होंने हिन्दी कहानी में एक युगांतरकारी परिवर्तन किया। इन दोनों रचना शक्तियों का क्षेत्र अलग था। एक कहानी को समाज के व्यापक संदर्भों से जोड़ रही थी और दूसरी व्यक्ति की प्रतिष्ठा को रेखांकित कर रही थी।

   प्रेमचंद की कुछ कहानियां पहले उर्दू की *'जमाना'* पत्रिका में (1907) प्रकाशित हुईं। इसके साथ ही *'सरस्वती'* में उन्होंने हिन्दी में कहानियां लिखनी आरंभ कीं। *'सौत', 'पंच परमेश्वर', 'बूढ़ी काकी', 'ईश्वरीय न्याय', 'दुर्गा का मंदिर'* उसी समय की कहानियां हैं। कहानी साहित्य में प्रेमचंद का प्रवेश सर्वथा युगांतरकारी सिद्ध हुआ। उन्होंने साहित्यिक जगत में आते ही कल्पना को यथार्थवाद की ओर उन्मुख कर दिया। वह जनता के सुख–दुख में भाग लेने वाले कलाकार थे। इसलिए उनकी कहानियों में समस्त भारतीय समाज मुखरित हो उठा। स्वाधीनता की

लड़ाई, संयुक्त परिवार में विघटन, जातीय एकता, किसानों की समस्याएं, अछूतोद्धार, विधवा समस्या, औद्योगिकरण, सांप्रदायिक द्वेष, सामाजिक रूढ़ियां, धर्म, जाति और परंपरा से संबंधित अनेक विषय उनकी कहानियों में आकार लेने लगे। उन्होंने लगभग 300 कहानियां लिखीं जिनमें से प्रमुख कहानियां मानसरोवर के आठ भागों में संकलित हैं। *'बड़े घर की बेटी'*, *'शतरंज के खिलाड़ी'*, *'पूस की रात'*, *'ठाकुर का कुआं'* और *'कफन'* उनकी प्रसिद्ध कहानियां हैं।

सन् 1911 में जयशंकर प्रसाद की *'ग्रंथि'* कहानी *'इंदु'* नामक पत्रिका में प्रकाशित हुई। इससे हिन्दी कहानी में एक महत्वपूर्ण मोड़ आया। प्रसाद मूलतः कवि थे अतः उनकी कहानियों में छायावाद की मूल प्रवृत्ति 'वैयक्तिकता' की सूक्ष्म प्रतिच्छाया दिखाई देती है। अधिकांश कहानियों में वैयक्तिक सुख–दुःख वैयक्तिक द्वंद्व का चित्रण मिलता है। *'आकाशदीप'*, *'पुरस्कार'*, *'मधुआ'*, *'ममता'* आदि इसी प्रकार की कहानियां हैं। *'छाया'*, *प्रतिध्वनि'*, *'आकाशदीप'*, *'आंधी'*, *'इंद्रजाल'* प्रसाद की कहानियों के संकलन हैं।

इस काल के अन्य कहानी लेखकों में प्रमुख हैं– चंद्रधर शर्मा गुलेरी। इन्होंने तीन कहानियां लिखीं– *'सुखमय जीवन'*, *'बुद्धू का कांटा'* और *'उसने कहा था'*। इनका नाम केवल एक कहानी 'उसने कहा था' से ही हिन्दी साहित्य के इतिहास में अमर रहेगा।

विशंभरनाथ शर्मा कौशिक और सुदर्शन प्रेमचंद परंपरा के कहानीकार हैं। इन्होंने प्रेमचंद की भांति ही अपने आस–पास से कहानियों के विषय चुने। कौशिक की *'ताई'* और सुदर्शन की *'हार की जीत'* प्रसिद्ध कहानियां हैं।

इसी काल में राधाकृष्ण दास और विनोद शंकर व्यास ने प्रसाद की तरह भाव प्रधान कहानियां लिखीं। चतुरसेन शास्त्री ने विभिन्न युगों के ऐतिहासिक प्रसंगों पर आधारित अनेक मार्मिक कहानियों की रचना की। 'उग्र' ने परंपरा से हटकर विद्रोह का स्वर मुखरित किया। वृंदावनलाल वर्मा ने प्रमुखतः ऐतिहासिक कहानियां लिखीं।

इस युग के अन्य प्रमुख कहानीकार हैं– भगवती प्रसाद वाजपेयी, राहुल सांकृत्यायन, सुभद्रा कुमारी चौहान, उषा देवी मित्रा आदि।

हिन्दी कहानी के विकास की दृष्टि से यह युग अत्यंत महत्वपूर्ण रहा। प्रसाद और प्रेमचंद की रचना प्रक्रिया ने हिन्दी कथा साहित्य में दो निश्चित धाराओं को स्वरूप दिया– व्यक्ति और समाज। आगे चलकर प्रसाद की इस व्यक्तिवादी चिंतनधारा को जैनेंद्र, इलाचंद्र जोशी तथा अज्ञेय ने और प्रेमचंद की समाजवादी चिंतनधारा को यशपाल, भीष्म साहनी, ज्ञानरंजन और अमरकांत ने आगे बढ़ाया।

3. **उत्तर प्रेमचंद युग** – उपन्यास का विकास पढ़ते हुए आपने यह जाना कि इस युग में दो प्रमुख प्रवृत्तियों ने संपूर्ण साहित्य को प्रभावित किया– मनोवैज्ञानिक और समाजवादी यथार्थवाद। इनके प्रेरक थे फ्रायड एवं कार्ल मार्क्स। हिन्दी कहानी पर भी इन दोनों चिंतकों का विशेष प्रभाव दिखाई देता है।

प्रेमचंद और प्रसाद के बाद हिन्दी कहानी को नया आयाम देने वालों में जैनेंद्र का नाम प्रमुख है। उन्होंने कथावस्तु को सामाजिक धरातल से ऊपर उठाकर व्यक्तिगत और मनोवैज्ञानिक भूमिका पर प्रतिष्ठित किया। *'खेल', 'अपना–अपना भाग्य', 'नीलम देश की राजकन्या', 'पाजेब'* आदि में जैनेंद्र ने व्यक्ति मन की शंकाओं, प्रश्नों तथा आंतरिक गुत्थियों को अंकित किया है। इसके अतिरिक्त अधिकांश कहानियों का मुख्य विषय नारी है। यह नारी पतिव्रत्य की चहारदीवारी से बाहर निकलकर मुक्ति की सांस लेना चाहती है। *'जाह्नवी', 'रत्नप्रभा', 'दो सहेलियां', 'प्रमिला', 'मानरक्षा'* आदि की गणना इसी संदर्भ में रेखांकित की जा सकती है।

इलाचंद्र जोशी ने कथा–साहित्य में व्यक्तिवाद को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया। उनका चिंतन जैनेंद्र से भिन्न है। वह मानव मन की गहराइयों में झांककर व्यक्ति–मन के भीतर दमित वासनाओं तथा कुंठाओं का विश्लेषण करते हैं। उनकी कहानियों के अधिकांश पात्र चोर, जुआरी, लंपट, मद्यप और हत्यारे हैं। ये सभी पात्र किसी न किसी हीन–भावना के शिकार होते हैं। *'आहुति', 'डायरी के नीरस पृष्ठ', 'दुष्कर्मी'* आदि इसी प्रकार की कहानियां हैं।

अज्ञेय, प्रेमचंद परवर्ती कथा–साहित्य के प्रमुख कहानीकार हैं। उन्होंने अपनी कहानियों में व्यक्ति–चरित्र को प्रधानता दी है। उनकी यह धारणा है कि व्यक्ति को नैतिक दायित्व की क्षमता से संपन्न करके ही समाज का नैतिक धरातल ऊंचा किया जा सकता है। अतः व्यक्ति–स्वातंत्र्य आवश्यक है। वह समाज का अध्ययन व्यक्ति के माध्यम से करते हैं और समाज की गली–सड़ी, खोखली मान्यताओं के बदले व्यक्ति के भीतर स्थित दृढ़तर मान्यताओं को प्रतिष्ठित करने की चेष्ठा करते हैं। इनके चिंतन पर देशी और विदेशी चिंतकों का प्रभाव है। यदि केवल उनके कहानी संबंधी चिंतन पर दृष्टि केंद्रित की जाए तो वह पश्चिमी दार्शनिक ज्यां पाल सार्त्र के अस्तित्ववादी चिंतन से प्रभावित दिखाई देते हैं। अज्ञेय का प्रथम कहानी संग्रह *'त्रिपथगा'* 1931 में प्रकाशित हुआ था। 'रोज' उनकी प्रसिद्ध कहानी है।

इस व्यक्तिवादी धारा के साथ ही इस समय यशपाल ने अपने कथा साहित्य के माध्यम से समाज में फैली सब प्रकार की कुरूपताओं का पर्दाफाश किया। उनके कथ्य का क्षेत्र इतना व्यापक रहा कि समाज की कोई भी विकृति उनकी आंखों से ओझल नहीं हुई। उनकी दृष्टि मार्क्सवादी थी अतः उनका लक्ष्य एक ही रहा– सामाजिक वैषम्य का उद्‌घाटन करना। इनके कहानी संग्रहों– *'पिंजड़े', 'वो दुनिया', 'ज्ञानदान', 'तर्क का तूफान', 'भस्मावृत', 'चिंगारी', 'अभिशप्त', 'फूलों का कुरता', 'उत्तमी की मां', 'सच बोलने की भूल'* और *'तुमने क्यों कहा था मैं सुंदर हूं'* आदि उल्लेखनीय हैं। *'मक्रील', 'वो दुनिया', 'गण्डेरी', 'पराया सुख', 'करवा का व्रत'*, उनकी प्रसिद्ध कहानियां हैं। इनमें समस्या कोई भी हो नारी के शोषण की या पुरुष के शासन की, वर्ग वैषम्य की आर्थिक विषमता की, धर्म संबंधी मिथ्या विश्वासों की या समाज में फैले भ्रष्टाचार की, पात्र उनकी विचारधारा के अनुरूप

स्वरूप लेते रहे। इस प्रकार प्रत्येक कहानी में उनका समाजवादी चिंतन ही प्रमुख रहा है।

इस समाजवादी परंपरा पर आगे चलकर राहुल, रांगेय राघव, नागार्जुन ने सशक्त कहानियां लिखीं। विष्णु प्रभाकर और उपेंद्रनाथ अश्क ने भी इसी समय कहानी के क्षेत्र में अपना नाम स्थापित किया। इनके पात्र मध्यवर्ग और निम्नवर्ग से संबंधित हैं। विष्णु प्रभाकर की *'धरती अब भी घूम रही है'* और उपेंद्रनाथ अश्क की *'डाची'* दोनों कहानियां हिन्दी कथा–साहित्य की चर्चित कहानियां हैं। इनकी कहानियों में व्यक्ति एवं समाज दोनों ही प्रमुख रहे। सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन को प्रश्रय देने वाले कहानीकारों में चंद्रगुप्त विद्यालंकार, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, भगवतीचरण वर्मा के नाम महत्वपूर्ण हैं। ऐतिहासिक परंपरा की कहानियों में वृंदावनलाल वर्मा प्रमुख हैं।

इस प्रकार इस युग में हिन्दी कहानी अपने विकास की प्रारंभिक अवस्थाओं को पार करते हुए वहां पहुंच गई जहां से इसके श्रेष्ठ रूप के दर्शन होने लगते हैं।

4. **स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी** – यह वह समय था जब देश स्वतंत्र हो चुका था। सत्ता कांग्रेस के हाथ में थी। संविधान निर्मित हो चुका था। गणतंत्र के आलोक में संवेदनशील कथाकार सत्ता के स्थानांतरण को पहचान रहे थे। विभाजन के साथ जुड़े हुए संहार, ध्वंस और सामूहिक हत्याओं ने मानवीय मूल्यों का जो विघटन किया उसे यशपाल, चंद्रगुप्त विद्यालंकार, उपेंद्रनाथ अश्क, विष्णु प्रभाकर, जैनेंद्र और बाद में मोहन राकेश तथा भीष्म साहनी ने चित्रित किया। इन्हीं दिनों अज्ञेय का *'शरणार्थी'* नामक संग्रह प्रकाशित हुआ। इन सब में उस काल के निम्न मध्यवर्गीय और मध्यवर्गीय जीवन के वास्तव में बाह्य पक्ष का चित्रण था। इसके भीतर जो मानसिक ध्वंस गांवों, कस्बों, नगरों, महानगरों आदि में झेला जा रहा था, उसकी स्थिति ही दूसरी थी। इसी समय एक विशेष प्रकार का बोध कहानी में उभर रहा था जिसे आंचलिक बोध का नाम दिया गया। इसी के समानांतर शहरीकरण की कठिनताओं से उत्पन्न हुआ एक दूसरा बोध था– नगर तथा महानगरीय बोध। इस प्रकार कहानी के क्षेत्र में एक साथ कई मोड़ आ रहे थे। अधिकांश कहानीकार जीवन से जुड़ने की चेष्टा कर रहे थे। किंतु कुछ नवीन प्रयोग भी हो रहे थे। कहानी के वस्तु विधान और शिल्प विधान दोनों में इस बदलाव को स्पष्ट देखा जा सकता है।

सन् 1950 के बाद कहानियों में व्यक्तिवादी स्वर प्रमुख होने लगा। मार्क्स और फ्रायड के प्रभावों से आगे बढ़कर अस्तित्ववादी दर्शन ने जीवन के बुनियादी सवालों की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया। स्वतंत्रता से प्राप्त होने वाले सुख की कल्पना शीघ्र ही विच्छिन्न हो गई। व्यक्ति एक तरह का कटाव और अलगाव महसूस करने लगा। मानवीय मूल्यों का सर्वथा ह्रास होने लगा किंतु फिर भी जीवन के प्रति आस्था बाकी थी।

अज्ञेय ने मुख्यतया व्यक्तिगत आत्मसंघर्ष तथा व्यक्ति और परिवेश के संघर्ष का चित्रण किया। *'रोज', 'पहाड़ का धीरज', 'हीली बोन की बत्तखें'* कहानियां नए

यथार्थ पर आधारित हैं। उन्होंने बिम्बों, प्रतीकों और नाटकीय स्थितियों के चित्रण द्वारा कहानियों को अर्थ के विभिन्न स्तर दिए। *'त्रिपथगा', 'परंपरा', 'कोठारी की बात', 'शरणार्थी', 'जयदोल', 'अमर बल्लरी', 'ये तेरे प्रतिरूप'* इनके प्रसिद्ध कहानी संग्रह हैं। आगे चलकर निर्मल वर्मा, रामकुमार, उषा प्रियंवदा की कहानियों ने इस अस्तित्ववादी चिंतन को एक नया मोड़ दिया।

यशपाल ने भी इस बदलाव की स्थिति को बड़ी गहराई से महसूस किया। उनकी अधिकांश कहानियां सामाजिक चेतना से अनुप्राणित हैं। उन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से आर्थिक, नैतिक, धार्मिक, स्त्री–पुरुष विषयक समस्याओं का चित्रण करके सामाजिक वैषम्य पर प्रबल प्रहार करने की चेष्टा की। स्त्री–पुरुष के समान अधिकार दिलाना चाहते थे इसलिए स्त्री की आत्म–निर्भरता में विश्वास रखते थे। इस विषय में उन्होंने बहुत सी कहानियां लिखीं जिनमें 'करवा का व्रत' कहानी उल्लेखनीय है।

यशपाल के बाद भीष्म साहनी, अमरकांत, ज्ञानरंजन, बदी उज्जमा, काशीनाथ सिंह ने इस विचारधारा को बल दिया।

विष्णु प्रभाकर ने भी अपनी चिंतन धारा को बदला। कहानी के क्षेत्र में उनका विकास अप्रत्याशित है। *'धरती अब भी घूम रही है'*, उनकी सबसे अधिक चर्चित कहानी है। जून 1987 की सारिका में छपी कहानी 'एक आसमान के नीचे' विष्णु प्रभाकर की कथा–यात्रा में एक मील का पत्थर है। इसमें सुंदर कलात्मक रचाव है जो देश और विदेश के परिवेश को समेटे हुए है। उनके कई संकलन *'आदि और अंत', 'रहमान का बेटा', 'जिंदगी के थपेड़े', 'संघर्ष के बाद', 'द्वंद्व', 'मेरा वतन', 'धरती अब भी घूम रही है', 'खिलौने', 'पुल के टूटने से पहले', 'मेरी प्रिय कहानियां'* आदि प्रकाशित हो चुकी हैं।

उपेंद्रनाथ अश्क की कहानियों में अत्यधिक विविधता है। उनकी कहानियों में भी प्रेमचंद की भांति सभी वर्गों के पात्र हैं किंतु अधिकांशतया मध्यमवर्गीय एवं निम्नवर्गीय पात्रों का यथार्थ चित्रण मिलता है। *'डाची'* उनकी प्रसिद्ध कहानी है। इसमें मानवीय करुणा की जो सहज अविरल धारा प्रवाहित होती है वह बेजोड़ है। *'सत्तर श्रेष्ठ कहानियां'* उनकी चुनिंदा कहानियों का संकलन है। अश्क जी ने प्रायः सभी कथा–धाराओं में योगदान दिया। इन्होंने अपनी कहानियों में व्यक्ति और समाज दोनों को ही प्रमुखता दी।

इसी समय कहानी में एक दूसरी विचारधारा भी पनप रही थी जहां हिन्दी कथाकार कहानी के पुराने कलेवर से मुक्ति पाने के लिए और नए अनुभव संसार से स्वयं को जोड़ने के लिए एक नई चेतना तलाश रहा था।

1.6.2 नई कहानी एवं ग्रामांचल की कहानियां

सन् 1955 में कहानी पत्रिका का प्रकाशन हुआ। नवीन चेतना की खोज करने वाले कहानीकारों को इस दौर को आगे बढ़ाने का अवसर मिला। उन्होंने 1956–57 में इसका नाम नई कहानी रख दिया। अब कहानी में नए संदर्भों की खोज होने लगी। उलझनपूर्ण

मोड़ और चमत्कारपूर्ण चरम सीमाओं की अपेक्षा आंतरिक द्वंद्व पर बल दिया जाने लगा। जीवन की पहचान कहानीकार के लिए महत्वपूर्ण हो गई। अब वह अपनी अनुभूति की सघनता के लिए नए–नए बिम्बों और प्रतीकों का प्रयोग करने लगा।

नई कहानी के प्रवर्तकों में से प्रमुख नाम हैं– मोहन राकेश, कमलेश्वर, राजेंद्र यादव, मन्नू भंडारी, निर्मल वर्मा, उषा प्रियंवदा। इनकी कहानियों के कथ्य में विविधता है। अधिकांश कहानियां कथाकारों के अपने जीवनानुभव से प्रेरित हैं। गांव का ठहरा हुआ जीवन हो या नगर–महानगर की भागमभाग अथवा पहाड़ की शांत निःस्तब्धता, वहां रहने वाले पात्र स्थितियों के अनुरूप स्वतः रूप लेते चले जाते हैं। *'मलबे का मालिक', 'मिस पाल', 'खाली', 'आखिरी सामान', 'आर्द्रा', 'एक और जिंदगी', 'उसकी रोटी'*, राकेश की चर्चित कहानियां हैं। अधिकांश कहानियां निम्न मध्यवर्ग व मध्यवर्ग से संबंधित हैं। इनमें मूल्यों के विघटन, अकेलेपन, संत्रास और व्यक्ति की अपनी अस्मिता के प्रश्न को भी रेखांकित किया गया है। इन सभी में गहरी मानवीय संवेदना है। कमलेश्वर की *'देवा की मां', 'तलाश', 'राजा निरबंसिया', 'जो लिखा नहीं जाता', 'दुखभरी दुनिया', 'खोयी हुई दिशाएं'* आदि कहानियां आम आदमी की टूटन, घुटन, बिखराव, यातना व मजबूरी का चित्रण करती हैं। राजेंद्र यादव ने सामान्य व्यक्तिगत अनुभवों को नए–नए सामाजिक संदर्भों में ढालकर बहुत सी कहानियां लिखीं। इनमें *'खुशबू', 'टूटना', 'भविष्य'* हैं। मन्नू भंडारी और उषा प्रियंवदा ने अपनी कहानियों में जीवनी की जटिल और गहरी सच्चाइयों का साक्षात्कार करने की चेष्टा की। भले ही दोनों का दृष्टिकोण भिन्न है। मन्नू भंडारी सामाजिकता को महत्व देती है तो उषा प्रियंवदा वैचारिकता को। किंतु दोनों अपने जीवनानुभवों को एक ऐसी प्रामाणिक सच्चाई के साथ सामने रखती हैं कि रचना प्राणवान हो जाती है। मन्नू की *'यही सच है', 'छचांई'* और उषा प्रियवंदा की *'कितना बड़ा झूठ', 'मछलियां'* इसी प्रकार की कहानियां हैं। वातावरण को उसकी संपूर्ण संवेदना के साथ उभारने में शिवानी को विशेष सफलता मिली है। आगे चलकर कृष्णा सोबती, ममता कालिया, मालती जोशी, सुधा अरोड़ा, मृदुला गर्ग, मृणाल पांडे आदि अन्य कई कहानी लेखिकाओं ने विकास की परंपरा में विशेष सहयोग दिया।

निर्मल वर्मा एक लंबे अरसे तक यूरोप में रहे। पाश्चात्य साहित्य से जुड़कर इनकी कहानी ने सर्वथा अलग स्वरूप ले लिया। अधिकांश कहानियां व्यक्ति–सत्य की हैं इनमें अस्तित्व की खोज व तलाश है। *'लंदन की एक रात', 'पिक्चर पोस्टकार्ड', 'परिंदे'* इनकी श्रेष्ठ कहानियां हैं। रामकुमार, महेंद्र भल्ला, कृष्ण बलदेव वैद, प्रयाग शुक्ल इसी कोटि के कहानीकार हैं।

ग्रामांचल की कहानियां

इन कहानीकारों में शिवप्रसाद सिंह, मार्कण्डेय और फणीश्वरनाथ रेणु, शेखर जोशी और विवेकी राय के नाम मुख्य हैं। इनकी कहानियों में जो गांव की मिट्टी की सोंधी महक और गांव के लोगों का जीवन देखने को मिलता है, वह अपूर्व है। रेणु की *'तीसरी कसम'* और शेखर जोशी की *'कोसी का घटवार'* अत्यंत प्रभावपूर्ण कहानियां हैं। रांगेय राघव, शैलेश मटियानी, मधुरकर गंगाधर, शानी आदि कहानीकारों ने इसी परंपरा को आगे बढ़ाया। इस प्रकार कहानी को कितने ही मोड़ों से गुजरना पड़ा इसीलिए समय–समय पर उसे नए नामों

से भी संबोधित किया जाता रहा; यथा– नई कहानी, समानांतर कहानी, अकहानी, सचेतन कहानी, अचेतन कहानी, सक्रिय कहानी आदि। आज कहानी के क्षेत्र में रूप विषयक पुरानी धाराणाएं टूट चुकी हैं। केवल जीवन यथार्थ की अभिव्यक्ति ही महत्वपूर्ण है। कहानी अब बिम्बों और प्रतीकों से भी मुक्त हो चुकी हैं। कहानी के समुचित विकास में पत्र–पत्रिकाओं का योगदान भी महत्वपूर्ण है।

परवर्ती कहानी का बदलता स्वरूप

सन् 1960–1965 के बाद की लिखी कहानियों में अधिक उग्रता और निर्ममता है। ये कहानियां प्रायः उन लेखकों की हैं जिन्होंने स्वतंत्र भारत का क्रूर यथार्थ अपनी आंखों से देखा। इनमें से उल्लेखनीय हैं– दूधनाथ सिंह, महीप सिंह, ज्ञानरंजन, गिरिराज किशोर, काशीनाथ सिंह, रमेश उपाध्याय और गोविंद मिश्र।

स्त्री के स्वतंत्र व्यक्तित्व को चित्रित करने वाली कहानियां ममता कालिया, सुधा अरोड़ा, निरूपमा सेवती, अनिता औलक, दीप्ति खण्डेलवाल, राजी सेठ, मृणाल पांडे आदि ने लिखीं।

इस दौर में उभरने वाले विद्रोह और आक्रोश ने कहानी को एक सपाटबयानी दी। कहानी का रूपबंध बदल गया। उसमें तत्वों की कोई प्रधानता नहीं रही। वह बिम्बों और प्रतीकों से भी मुक्त हो गई। अब निबंध, रेखाचित्र, रिपोर्ताज, संस्मरण, डायरी आदि विधाएं भी कहानी में सम्मिलित हो गईं। परिणामस्वरूप कहानियों में जीवन यथार्थ को निसंग रूप से अभिव्यक्त करने की क्षमता आई।

1.7 निबंध

गद्य साहित्य की विविध विधाओं के साथ ही हिन्दी निबंध लेखन की शुरुआत भी भारतेंदु युग से होती है तथा इसके विकासक्रम को चार सोपानों में विभक्त किया जाता है–

1. भारतेंदु युग (सन् 1868 से सन् 1900 तक)
2. द्विवेदी युग (सन् 1901 से सन् 1920 तक)
3. शुक्ल युग (सन् 1921 से सन् 1940 तक)
4. शुक्लोत्तर युग (सन् 1941 से अब तक)

1. भारतेंदु युग (सन् 1868 से सन् 1900 तक)

हिन्दी निबंध साहित्य का प्रारंभ भारतेंदु युग से होता है। भारतेंदु हरिश्चंद्र के अधिकांश निंबध 'भारतेंदु ग्रंथावली' भाग–3, 'भारतेंदु कला' भाग–4 तथा 'भारतेंदु के निबंध' में संकलित हैं। भारतेंदु के निबंधों के विषय ज्ञान–विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों यथा इतिहास, धर्म, दर्शन, पुरातत्व आदि तक व्याप्त है। उन्होंने विषय को प्रस्तुत करने में व्यंग्य विनोद की शैली को प्रमुखता दी है, जिससे निबंधों में शुष्कता नहीं आ पाई है। भाषा सर्वत्र सधी हुई तथा विषयानुरूप है। 'खुशी', 'होली', 'त्योहार', 'सूर्योदय', 'भूकम्प', 'स्वर्ग में विचार सभा', 'कंकड़ स्तोत्र', 'अंग्रेजी स्तोत्र' आदि अनेक कतिपय प्रसिद्ध एवं उल्लेखनीय निबंध हैं।

भारतेंदु युग के दूसरे महत्वपूर्ण निबंधकार पं. बालकृष्ण भट्ट हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इनके निबंधों की तुलना अंग्रेजी के प्रसिद्ध निबंधकार एडीसन से की है। भट्ट जी की प्रतिभा का सर्वोत्कृष्ट रूप उनके निबंधों में उभर कर आया है। भट्ट जी ने अपने जीवन काल में सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक, नैतिक आदि सभी प्रकार के विषयों पर एक हजार से ऊपर निबंध लिखे थे। इसमें से कुछ 'साहित्य सुमन' तथा 'भट्ट निबंधावली' (भाग एक एवं दो) में संकलित है। 'नाक', 'कान', 'बातचीत' जैसे साधारण से प्रतीत होने वाले विषयों पर निबंध लिखने में इन्हें महाराथ हासिल था। हास्य–व्यंग्य और गंभीरता का जैसा सहज संगुंफन इनके यहां है वैसा अन्यत्र देखने को नहीं मिलता। इनके व्यंग्य मन पर सीधी चोट करते हैं। इनमें शैलीगत वैविध्य भी पर्याप्त मात्रा में है।

भारतेंदु युग के तीसरे उल्लेखनीय निबंधकार पं. प्रताप नारायण मिश्र हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इनके निबंधों की तुलना अंग्रेजी के प्रसिद्ध निबंधकार स्टली से की है। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने निबंधों में जिस व्यंग्य विनोदपूर्ण शैली का समावेश किया था उसका समुचित विकास करने वाले निबंधकारों में पं. प्रताप नारायण मिश्र का नाम अत्यंत महत्वपूर्ण है। हास्य–व्यंग्य के प्रति इनका कितना सम्मान था इसका अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि इन्होंने अपने निबंधों के शीर्षक तक ऐसे रखे हैं जिनसे पाठक इनकी इस विशेषता से अनायास परिचित हो जाता है, 'बंदरों की सभा', 'सोने का डंडा और पोंडा', 'समझदार की मौत' आदि शीर्षक इसी कथन की पुष्टि करते हैं। 'बात', 'दांत', 'आप', '1', '2' जैसे अत्यंत सामान्य से प्रतीत होने वाले विषयों पर चमत्कारपूर्ण निबंध लिखने में भी इन्हें कमाल हासिल था। 'निबंध नवनीत', 'प्रताप पीयूष' और 'प्रताप समीक्षा' इनके निबंधों के कुछ प्रतिनिधि संकलन हैं।

भारतेंदु युग के अन्य लेखकों में यदि बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमधन' शब्द विन्यास की अद्भुत छटा तथा आनुप्रासिक शब्दावली के लिए प्रख्यात हैं तो पं. मोहन लाल विष्णु लाल पांड्या सामयिक घटनाओं तथा भौगोलिक विवरणों से भरपूर निबंध लिखने के लिए प्रसिद्ध हैं। पं. अंबिका दत्त व्यास, काशीनाथ खत्री, पं. महादेव दूबे, पं. मुरलीधर पाठक, पं. हरिमुकुंद शर्मा, पं. हरिश्चंद्र उपाध्याय आदि इस युग के कतिपय अन्य उल्लेखनीय निबंधकार हैं।

भारतेंदु युगीन निबंध साहित्य विषय वस्तु तथा रचना शिल्प, दोनों दृष्टियों से वैविध्यपूर्ण है। इस युग में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, साहित्यिक आदि सभी प्रकार के विषयों पर निबंध लिखे गए। शैली की दृष्टि से वर्णनात्मक, विवरणात्मक, भावात्मक आदि सभी का विषयानुरूप प्रयोग किया गया। हास्य–व्यंग्यात्मक शैली तो इस युग की एक अत्यंत उल्लेखनीय विशेषता है। इस युग के प्रायः सभी निबंधकार अपने युग की विभिन्न प्रत्रिकाओं के संपादक थे। इस युग का अधिकांश निबंध साहित्य 'कविवचन सुधा', 'हरिश्चंद चंद्रिका', 'हिन्दी प्रदीप', 'ब्राह्मण', 'आनंद कादंबिनी', 'मित्र विलास', 'भारत बंधु', 'भारत जीवन' आदि में प्रकाशित हुआ है। इसका एक स्वाभाविक एवं सुखद परिणाम यह हुआ कि इस युग के निबंधकारों की भाषा अत्यंत सधी हुई है। परिणामतः हिन्दी निबंध साहित्य का यह पहला सोपान अपने सामान्य विषय चयन एवं कलात्मक अभिव्यक्ति के कारण प्रत्येक सहृदय पाठक के मन पर अमिट छाप छोड़ता है।

2. द्विवेदी युग (सन् 1901 से 1920 तक)

हिन्दी निबंध की विकास यात्रा का दूसरा महत्वपूर्ण सोपान सन् 1901 से सन् 1920 तक माना जाता है। इस युग का लगभग संपूर्ण साहित्य आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की प्रेरणा तथा प्रोत्साहन का परिणाम है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने स्वयं सन् 1901 में बेकन के तेईस निबंधों के हिन्दी अनुवाद किये थे जो सरस्वती पत्रिका में छपे थे। सन् 1903 में तो उन्होंने सरस्वती पत्रिका के संपादन का भार भी संभाल लिया था। इस दायित्व का निर्वाह उन्होंने सन् 1920 तक किया। आचार्य द्विवेदी के अतिरिक्त जिन अन्य अनेक लेखकों ने इस कालखंड के निबंध साहित्य को समृद्ध किया उनमें सर्वश्री माधव प्रसाद मिश्र, गोविंद नारायण मिश्र, बाल मुकुंद गुप्त, अध्यापक पूर्ण सिंह, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, पं. पद्म सिंह शर्मा, मिश्रबंधु, गणेश शंकर विद्यार्थी, गौरीशंकर हीराचंद ओझा, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, डॉ. श्यामसुंदर दास प्रभृति के नाम उल्लेखनीय हैं।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी एक कुशल संपादक, सुधी आलोचक तथा उपयोगितावादी निबंधकार थे। निबंध लेखक के रूप में उनका उद्देश्य पाठकों का ज्ञान वर्द्धन करना था। अतएव उन्होंने अपने निबंधों के विषय भी प्रायः ऐसे चुने हैं जो पाठक को नयी जानकारी देने वाले हैं। 'जर्मनी में संस्कृत भाषा का अध्ययन–अध्यापन', 'सर विलियम जोंस ने संस्कृत कैसी सीखी', 'कवि कर्तव्य', 'कवि और कविता' आदि निबंधों के शीर्षक तक इस कथन की पुष्टि करते हैं। 'हंस का नीर–क्षीर विवेक'; 'कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता', 'महाकवि माघ की राजनीति' आदि उनके कतिपय प्रसिद्ध निबंध हैं। आचार्य द्विवेदी का निबंध साहित्य 'रसज्ञ रंजन', 'संचयन', 'साहित्य सीकर', 'लेखांजलि' आदि संग्रहों में संकलित है।

पं. माधव प्रसाद मिश्र ने सांस्कृतिक तथा विचार प्रधान निबंध लिखने के साथ–साथ भावप्रधान निबंध भी पर्याप्त मात्रा में लिखे। 'सब मिट्टी हो गया' इनका सर्वश्रेष्ठ निबंध माना जाता है। 'रामलीला', 'जीवन संग्राम में विजय पाने के उपाय', 'आत्माराम की टें टें' इनके कतिपय अन्य उल्लेखनीय निबंध हैं। तार्किक शैली, तत्सम प्रधान पदावली, पद–पद पर उद्धरण इनकी निबंध शैली की उल्लेखनीय विशेषताएं हैं। इनके निबंध 'माधव प्रसाद मिश्र निबंध माला' में संकलित हैं।

द्विवेदी युग के निबंधकारों में सबसे प्रखर व्यक्तित्व बालमुकुंद गुप्त का है। गुप्त जी पत्रकार थे तथा 'भारत मित्र' का संपादन करते थे। इससे पूर्व ये उर्दू के कई पत्रों का संपादन कर चुके थे। अतएव ये हिन्दी में उर्दू की व्यंग्य शैली को साथ लेकर आए। इनकी प्रसिद्धि भी मुख्यतः सामाजिक तथा राजनीतिक विषयों पर लिखे गए उन व्यंग्यात्मक निबंधों के कारण है जो 'शिव शंभु का चिट्ठा' तथा 'चिट्ठे और खत' में संकलित हैं। इसमें 'शिव शंभु का चिट्ठा' अधिक लोकप्रिय है। इस चिट्ठे में लॉर्ड कर्जन के निरंकुश तथा स्वेच्छाचारी शासन के विरुद्ध लिखे गए वे आठ निबंध संकलित हैं जो 'भारत मित्र' तथा 'जमाना' पत्र–पत्रिकाओं में सन् 1904 से सन् 1905 ई. तक धारावाहिक रूप में प्रकाशित हुए थे। ये चिट्ठे अपने समय में कितने लोकप्रिय थे, इसका अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि जब ज्योतींद्रनाथ बनर्जी ने इन्हें अंग्रेजी में अनूदित करके प्रकाशित किया तो पूरा संस्करण हाथों–हाथ बिक गया। ये रचनाएं पाठक को तद्युगीन राजनीतिक चेतना

से ही परिचित नहीं कराती अपितु हिन्दी भाषा की व्यंजना शक्ति एवं संप्रेषणीयता का अत्यंत पुष्ट प्रमाण प्रस्तुत करती हैं।

अध्यापक पूर्णसिंह ने इस युग के निबंध साहित्य को नीरस निर्वैयक्तिकता से मुक्त करके भावावेश एवं कल्पना की एक ऐसी उड़ान दी है जिसका विकास हमें छायावाद में देखने को मिलता है। दूसरे शब्दों में अध्यापक पूर्णसिंह के निबंधों में स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं। उन्होंने अपने निबंधों के माध्यम से मनुष्य के भावना जगत को छूना चाहा। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने उनकी शैलीगत विशेषताओं को उद्घाटित करते हुए लिखा है, "उनकी लाक्षणिकता हिन्दी गद्य साहित्य में नयी चीज थी। ....भाषा और भाव की एक नयी विभूति उन्होंने सामने रखी।" 'आचरण की सभ्यता', 'मजदूरी ओर प्रेम', 'सच्ची वीरता' तथा 'कन्यादान' इनके अत्यंत प्रसिद्ध निबंध हैं। इन्होंने कुल आठ निबंध लिखे हैं जो 'सरदार पूर्णसिंह अध्यापक' के निबंध में संकलित हैं।

अध्यापक पूर्णसिंह के समान चंद्रधर शर्मा गुलेरी ने भी बहुत थोड़े निबंध लिखकर पर्याप्त ख्याति अर्जित की है। ये संस्कृत के प्रकांड पंडित थे तथा सप्रमाण एवं अधिकारपूर्वक लिखने में विश्वास रखते थे। यही कारण है कि इन्होंने गूढ़ शास्त्रीय विषयों से लेकर सामान्य विषयों तक पर साधिकार लिखा है। अर्थगर्भित वक्र शैली तथा पांडित्यपूर्ण हास का जैसा सुखद सम्मिश्रण उनके लेखन में मिलता है वैसा अन्यत्र दुष्प्राप्य है। 'कछुआ धर्म', 'मारेसि मोहिं कुठाउँ' तथा 'न्याय बेटा' इनके उल्लेखनीय निबंध हैं।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के भाव एवं मनोविकार संबंधी निबंध तथा 'कविता क्या है' आदि कतिपय अन्य निबंध इसी युग में प्रकाशित हुए। उन्होंने अपने निबंधों में गंभीर विचारात्मक चिंतन, तार्किक क्रम तथा प्रभावी व्यंजना पर बल दिया और इस प्रकार निबंध को लेख के धरातल से उठाकर एक श्रेष्ठ साहित्य विद्या के रूप में प्रतिष्ठित किया। उनके निबंधकार रूप का पूर्ण उत्कर्ष छायावाद युग में देखने को मिलता है क्योंकि तभी उनके प्रसिद्ध निबंध संग्रह 'चिंतामणि भाग 1' तथा 'चिंतामणि भाग 2' का प्रकाश हुआ।

सर्वश्री गोविंदनारायण मिश्र, पं. पद्मसिंह शर्मा, गणेश शंकर विद्यार्थी तथा डॉ. श्यामसुंदर दास इस युग के अन्य उल्लेखनीय निबंधकार हैं। पं. गोविंदनारायण मिश्र ने साहित्यिक एवं सामयिक विषयों पर निबंध लिखे।

पं. पद्म सिंह शर्मा बहुभाषाविद् थे। संस्कृत, पालि, प्राकृत, हिन्दी, फारसी, उर्दू आदि भाषाओं में इनकी एक समान गति थी। इन्होंने विचारात्मक, आलोचनात्मक, कथात्मक, भावात्मक आदि सभी प्रकार के निबंध लिखे किंतु इन सभी में इनकी विनोदप्रियता का गुण एक समान है।

प्रसिद्ध पत्रकार एवं राजनीतिज्ञ श्री गणेश शंकर विद्यार्थी अपने वैयक्तिक निबंधों के लिए प्रख्यात हैं। बोल–चाल की सामान्य भाषा तथा आत्मव्यंजक वक्रता प्रधान शैली इनके निबंध लेखन की मूल विशेषताएं हैं। त्याग और बलिदान संबंधी विषयों पर इन्होंने जो निबंध लिखे हैं, वे पाठक को अभिभूत कर देते हैं।

डॉ. श्याम सुंदर दास इस युग के विचारात्मक निबंधकार हैं। इन्होंने प्रायः भाषा एवं साहित्य विषयक निबंध ही अधिक लिखे हैं। इनका सारा ध्यान इस बात की ओर केंद्रित

रहा है कि विश्वविद्यालयों में हिन्दी को उच्च शिक्षा के अनुरूप गौरव प्राप्त हो सके। 'समाज और साहित्य', 'भारतीय साहित्य की विशेषताएं', 'हमारी भाषा', 'हिन्दी गद्य के आदि आचार्य' इनके कतिपय प्रसिद्ध निबंध हैं। कथ्य का स्पष्ट एवं विश्लेषणात्मक विवेचन इनकी निबंध शैली के उल्लेखनीय गुण हैं।

इस युग में साहित्य और भाषा विषयक ही नहीं अपितु इतिहास एवं पुरातत्व, भूगोल, धर्म, अध्यात्म, विज्ञान आदि से संबद्ध विषयों पर काफी निबंध लिखे गए। इस युग में भाषा परिष्कार पर पर्याप्त बल दिया गया।

3. शुक्ल युग (सन् 1921 से सन् 1940 तक)

हिन्दी निबंध की विकास यात्रा का तीसरा सोपान 1921 से 1940 तक माना जाता है कुछ आलोचकों ने इस युग को छायावाद और कुछ ने उत्कर्ष काल की संज्ञा दी है।

इस युग के सर्वप्रमुख निबंधकार आचार्य रामचंद्र शुक्ल हैं। उनके अतिरिक्त सर्वश्री बाबू गुलाबराय, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, सियारामशरण गुप्त, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, पांडेय बेचन शर्मा उग्र, शांतिप्रिय द्विवेदी, वियोगी हरि आदि अन्य अनेक निबंधकारों ने इस युग के निबंध साहित्य को समृद्ध किया। शांतिप्रिय द्विवेदी तथा बाबू गुलाबराय का कृतित्व परवर्ती युग में भी देखने को मिलता है।

हालांकि शुक्ल जी के भाव एवं मनोविकार विषयक निबंध सन् 1912 से 1919 की कालावधि के मध्य प्रकाशित हो चुके थे। इस युग में उनके निबंधों का संग्रह 'विचार–वीथि' प्रकाशित हुआ। कालांतर में इस संग्रह के निबंध अपने परिष्कृत, परिमार्जित एवं परिवर्द्धित रूप में 'चिंतामणि' में संकलित हो गए। चिंतामणि भाग दो के तीन आलोचनात्मक निबंध तथा जायसी ग्रंथावली, भ्रमरगीत सार आदि की भूमिका के रूप में लिखे गए समालोचनात्मक निबंध भी इसी युग में प्रकाशित हुए। आचार्य शुक्ल का निबंध साहित्य उनकी आंतरिक प्रेरणा तथा अभिरुचि का परिणाम है। निबंध कला के क्षेत्र में शुक्ल जी का योगदान यह है कि उन्होंने निबंध कों सामान्य लेख के धरातल से उठाकर एक श्रेष्ठ साहित्य विधा के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया। शुक्ल जी के सर्वाधिक महत्वपूर्ण निबंध उनके मनोवैज्ञानिक निबंध हैं। मानव मन की मनोवृत्तियों का सूक्ष्म एवं सुव्यवस्थित विवेचन करने में उन्हें महारात हासिल है। क्रोध कैसे पैदा होता है, उसका फैलाव किस प्रकार होतां है, किन परिस्थितियों में वह बैर में परिणत हो जाता है, आदि बातों को बड़ी खूबसूरती के साथ शुक्ल जी ने प्रस्तुत किया है। शुक्ल जी की खूबी यह है कि विभिन्न मानव वृत्तियों का विवेचन करते समय उन्होंने इस बात का ध्यान रखा है कि यह विवेचन मनोविज्ञान की पुस्तक के समान नीरस एवं बोझिल न बन जाए।

बाबू गुलाबराय इस युग के ऐसे निबंधकार हैं जिनका लेखन द्विवेदी युग में प्रारंभ हुआ था और जिन्होंने इस युग में पर्याप्त मात्रा में लिखने के साथ–साथ शुक्लोत्तर युग में भी खूब लिखा। इन्होंने साहित्यिक, मनोवैज्ञानिक, हास्य–व्यंग्यमूलक आदि सभी प्रकार के निबंध लिखे। वैयक्तिकता, अनुभूति–गहनता, व्यंग्य–विनोद तथा सुबोधता इनकी निबंध शैली के कुछ प्रमुख गुण हैं। 'ठलुआ क्लब', 'फिर निराशा क्यों', 'मेरी असफलताएं' इनके निबंधों के कुछ उल्लेखनीय प्रतिनिधि संकलन हैं।

शुक्ल युग के जिन निबंधकारों ने वैयक्तिकता को निबंध कला का एक अनिवार्य गुण मानते हुए उसे अपने निबंधों में प्रमुख स्थान दिया उनमें पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। ये एक बहु पठित व्यक्ति थे तथा इन्होंने भारतीय और पाश्चात्य साहित्य का गंभीर अध्ययन किया था। इस अध्ययन का प्रभाव इनके निबंधों पर भी पड़ा है। आध्यात्मिक एवं आलोचनात्मक निबंधों पर इन्होंने खूब खुलकर लिखा है। इनके निबंधों की भाषा में शुद्धता के प्रति आग्रह दिखलाई देता है किंतु इससे वह बोझिल नहीं बनी है। 'पंच पात्र', 'विश्व साहिय', 'मकरंद बिंदु', 'कुछ और कुछ', 'बख्शी जी के निबंध' आदि संग्रहों में इनके प्रतिनिधि निबंध संकलित हैं।

इस युग में सियारामशरण गुप्त ने अत्यंत हृदयग्राही निबंध लिखे। सावधानीपूर्वक किसी प्रसंग या प्रतीक का चयन करते हुए गांधीवादी दर्शन को ग्रामीण जीवन एवं ग्राम्य प्रकृति के साथ प्रस्तुत करने में सियारामशरण को स्पृहणीय सफलता प्राप्त हुई है। यत्र–तत्र निर्मल हास्य के छींटे तो सोने में सुहागे का काम करते हैं। 'शुष्कोवृक्षः', 'घूंघट', 'घोड़ागाड़ी', 'छुट्टी', 'ऋणी', 'एक दिन' आदि इनके कुछ उल्लेखनीय निबंध हैं। 'झूठ सच' इनके निबंधों का प्रतिनिधि संकलन है।

छायावादी कवियों में सर्वाधिक निबंध सूर्यकांत त्रिपाठी निराला ने लिखे। इनके निबंधों में हृदय और बुद्धि पक्ष का सहज समन्वय है, हास्य व्यंग्य का मर्मस्पर्शी विधान है, कविसुलभ भावात्मकता एवं चित्रमयता है। कथ्य की दृष्टि से इनके निबंधों का बहुलांश साहित्य समीक्षा से संबद्ध है तो शैली की दृष्टि से इनके यहां बहुविध प्रयोग मिलते हैं। 'पंत जी और पल्लव', 'साहित्यिक सन्निपात या वर्तमान धर्म', 'मेरे गीत और मेरी कला', 'रूप और नारी', 'चरखा', 'महात्मा जी', 'नेहरू जी से एक भेंट' इनके कतिपय उल्लेखनीय निबंध हैं। 'प्रबंध पक्ष', 'प्रबंध प्रतिमा', 'प्रबंध पूर्णिमा', 'चाबुक', 'चयन' आदि इनके निबंधों के प्रतिनिधि संकलन हैं। जयशंकर प्रसाद, महादेवी वर्मा तथा सुमित्रानंदन पंत ऐसे छायावादी कवि हैं जो निबंध लेखन के क्षेत्र में क्रमशः 'काव्य और कला तथा अन्य निबंध', 'शृंखला की कड़ियां' तथा 'गद्य–पद्य' नाम्नी कृतियों के कारण स्मरण किये जाते हैं। जयशंकर प्रसाद के निबंध उनके व्यापक अध्ययन और सूक्ष्म चिंतन के परिचायक हैं तो महादेवी वर्मा के निबंधों में भारतीय नारी की समस्याओं के मार्मिक चित्र उकेरे गए हैं। पंत के निबंध विचार प्रधान होते हुए भी कवित्वपूर्ण गद्य शैली के परिचायक हैं।

पांडेय बेचन शर्मा (उग्र) अपने भावात्मक निबंधों के लिए प्रख्यात हैं। हास्य–व्यंग्य की मीठी चुटकियों से समवेत इनके निबंध में छोटे–छोटे वाक्यों तथा बोलचाल की भाषा का ऐसा सधा हुआ प्रयोग है कि सामाजिक परिस्थितियों का एक प्रभावी चित्र अनायास निर्मित होता चलता है। 'बुढ़ापा' इनका सर्वाधिक प्रसिद्ध निबंध है तथा 'व्यक्तिगत' में इनके प्रतिनिधि निबंध संकलित हैं। भावात्मक निबंध लिखने वालों में सर्वश्री रायकृष्ण दास, वियोगी हरि तथा शांतिप्रिय द्विवेदी का नाम भी स्मरणीय है।

वस्तुतः भारतेंदु ने जिस निबंध कला का ढांचा खड़ा किया पं. बालकृष्ण भट्ट ने जिसे गतिमान बनाया और द्विवेदी जी ने पूर्ण संस्कार किया वही निबंध इस काल में आचार्य रामचंद्र शुक्ल के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण तथा मार्मिक चिंतन के अभिनव तत्वों के साथ विकसित हुए।

4. शुक्लोत्तर युग (सन् 1941 से अब तक)

हिन्दी निबंध की विकास यात्रा का चौथा सोपान सन् 1941 से अब तक माना जाता है। कालावधि की दृष्टि से यह कालखंड सबसे बड़ा है। इस कालखंड के पहले दो दशकों तक निबंधों में वैयक्तिकता का अभाव रहा। किंतु, बाद के दो दशकों में भावात्मक तथा व्यंग्य विनोदपरक निबंधों का लेखंन हुआ। इस प्रकार आलोच्य युग के निबंध साहित्य को तीन वर्गों में बांटा जा सकता है–

1. विचारात्मक निबंध
2. भावात्मक निबंध
3. हास्य–व्यंग्य प्रधान निबंध।

इस युग के विचारात्मक निबंध दो प्रकार के हैं। उनका एक रूप तो वह है जहां वे समीक्षाशास्त्र से जुड़े रहे हैं ओर दूसरा वह है जिसमें चतुर्दिक फैली समस्याओं को स्वतंत्र चिंतन के साथ जोड़ा गया है। विचारात्मक निबंधों पर साहित्यशास्त्र, मनोविश्लेषणवाद, मार्क्सवाद, अस्तित्ववाद, गांधीवाद आदि चिंतन सरिणयों का पर्याप्त दबाव रहा है। इसी प्रकार से भावात्मक निबंधों के भी अनेक रंग हैं। यदि कहीं वे सांस्कृतिक विरासत तथा नवीन जीवन–बोध को लेकर चले हैं तो कहीं घुमक्कड़ी जीवन से प्राप्त लोक जीवन की गमक लिए हुए हैं। कहीं भावात्मकता का बाहुल्य है तो कहीं सांस्कृतिक स्वर प्रधान हो गया है। हास्य व्यंग्यात्मक निबंधों में सामाजिक जीवन की विसंगतियों पर करारी चोट की गयी है।

विचारात्मक निबंधों के क्षेत्र में आचार्य नंददुलारे वाजपेयी तथा डॉ. नगेंद्र की पहचान उनके समीक्षात्मक निबंधों के कारण बनी तो जैनेंद्र ने स्वतंत्र चिंतन के माध्यम से अपनी एक अलग पहचान स्थापित की। नवीन जीवन–बोध को सांस्कृतिक संदर्भों से संपृक्त करते हुए विचारात्मकता तथा भावात्मकता का पूर्ण सामंजस्य डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबंधों में प्रतिफलित हुआ तो सामाजिक विसंगतियों को हरिशंकर परसाई ने बहुत प्रभावी ढंग से उभारा।

आलोच्य युग में एक लंबे समय तक समीक्षात्मक निबंधों की धूम रही। इस प्रकार के निबंधों पर आचार्य रामचंद्र शुक्ल की निबंध शैली का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। इस वर्ग के निबंधकारों में पहला उल्लेखनीय नाम नंददुलारे वाजपेयी का है। उनके प्रारंभिक निबंध छायावादी काव्य से संबद्ध थे जिसमें उन्होंने उसके अंतः सौंदर्य को उद्घाटित करते हुए उसकी उपलब्धियों और संभावनाओं का सफल संधान किया था। तदनंतर उन्होंने अपने निबंधों में साहित्यकार की अंर्तवृत्तियों का विश्लेषण किया। साहित्य को किसी वाद से जोड़ना उन्हें कभी काम्य नहीं रहा। आस्था तथा मानव संबंधों की संपन्नता को उन्होंने उच्चकोटि के साहित्य का एक अनिवार्य तत्व माना। अपने जीवन काल में उन्होंने शताधिक निबंध लिखे जो 'हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी', 'नया साहित्य : नये प्रश्न', 'प्रकीर्णिका', 'राष्ट्रीय साहित्य तथा अन्य निबंध' आदि पुस्तकों में संकलित है।

शांतिप्रिय द्विवेदी ने आचार्य नंददुलारे वाजपेयी से सर्वथा भिन्न प्रकार के निबंध लिखे। उन्होंने साहित्य समीक्षा के साथ–साथ साहित्येतर विषयों पर भी निबंध लिखे। व्यक्ति और समाज के कल्याण के लिए संस्कारिता को एक अनिवार्य उपकरण मानते हुए

उन्होंने अपने कथ्य का आत्मीयतापूर्ण प्रतिपादन किया। 'वृन्त और विकास', 'धरातल', 'साकल्य', 'आधान', 'चारिका', 'समवेत' आदि में उनके प्रतिनिधि निबंध संकलित हैं। शांति प्रिय द्विवेदी के समान रामधारीसिंह दिनकर ने भी अपने वैचारिक चिंतन का आत्मीय प्रतिपादन किया। उनके निबंधों में मानवीय आस्था अत्यंत सहज ढंग से प्रतिफलित हुई है। 'अर्द्ध नारीश्वर', 'मिट्टी की ओर', 'रेती के फूल' आदि संग्रहों में संकलित निबंधों में उनकी यह आस्था अत्यंत सहज ढंग से उभर कर आई है।

नंददुलारे वाजपेयी तथा शांतिप्रिय द्विवेदी के समान डॉ. नगेंद्र की प्रारंभिक पहचान भी छायावादी काव्य के समर्थ समीक्षक के रूप में हुई। समीक्षात्मक निबंध लेखन के क्षेत्र में उन्होंने वैयक्तिकता के स्वर को बरकरार रखा। 'यौवन के द्वार पर', 'वाणी के न्याय मंदिर में', 'हिन्दी उपन्यास' आदि निबंधों में इस स्वर को साफ पहचाना जा सकता है। लेकिन यह आत्मत्व धीरे–धीरे कम होता चला गया और अंततः उनके निबंधों ने विशुद्ध समीक्षात्मक रूप ले लिया। विषय का सुविचारित तार्किक विभाजन, तदनंतर सुबोध स्पष्ट विवेचन और अंत में समग्र मूल्यांकन इनकी निबंध शैली की मुख्य विशेषताएं हैं। 'विचार और अनुभूति', 'विचार और विश्लेषण', 'अनुसंधान और आलोचना', 'आलोचक की आस्था' आदि इनके प्रतिनिधि निबंध हैं जो आगे चलकर 'आस्था के चरण' में समवेत रूप में प्रकाशित हुए हैं।

निबंधकार के रूप में जैनेंद्र की पहचान उनके स्वतंत्र चिंतनपरक निबंधों से बनी है। उन्होंने धर्म ओर संस्कृत से लेकर काम, प्रेम, विवाह आदि नानाविध विषयों पर निबंध लिखे हैं। जैनेंद्र का दार्शनिक चिंतन एकदम निजी है किंतु गांधीवादी होने के कारण उस पर सत्य, अहिंसा, आत्मसमर्पण और ह्रदय परिवर्तन का गहरा रंग है। निजीपन के गुण ने उनके निबंधों को नीरस नहीं होने दिया है। 'जड़ की बात', 'साहित्य का श्रेय' और 'प्रेम', 'सोच–विचार', 'मंथन', 'इतस्ततः' आदि संग्रहों में उनके प्रतिनिधि निबंध संकलित हैं।

वैयक्तिकता के संस्पर्श से संपृक्त निबंध लिखने वालों में अज्ञेय का नाम भी शीर्ष पर है। 'त्रिशंकु', 'आत्मने पद', 'आलवाल', 'सब रंग और कुछ राग', 'भवन्ति', 'लिखि कागद कोरे', 'अंतरा' उनके निबंधों के कुछ प्रतिनिधि संकलन हैं। उनके प्रारंभिक निबंध मनोविश्लेषणवाद के आधार बना कर लिखे गए हैं। उन पर फ्रायड, एडलर तथा जुंग के सिद्धांतों का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। समय के साथ–साथ अनेक विचारों में संक्लिष्टता आती चली गयी और उन्होंने समाज, संस्कृति ओर वैयक्तिक मान्यताओं के संबंध में सूक्ष्म चिंतन से ओत–प्रोत निबंध लिखे।

मनोविश्लेषण को आधार बनाकर निबंध लिखने की जो पहल अज्ञेय ने की थी उसे इलाचंद्र जोशी तथा डॉ. देवराज उपाध्याय ने गतिशील रखा। 'साहित्य सर्जना', 'विवेचना', 'साहित्य संतरण', 'विश्लेषण' और 'साहित्य चिंतन' इलाचंद्र जोशी के निबंधों के प्रतिनिधि संकलन हैं।

इस युग में मार्क्सवादी विचारधारा को आधार बनाकर भी निबंध लिखे गए। इस धारा का उन्नयन प्रो. प्रकाशचंद्र गुप्त ने किया। शास्त्रीय वाग्जाल और पांडित्य प्रदर्शन से अलग रह कर सरल एवं स्पष्ट विवेचना करना इनके लेखन की उल्लेखनीय विशेषता है। 'नया हिन्दी साहित्य : एक भूमिका' तथा 'साहित्य धारा' में इनके प्रतिनिधि निबंध संकलित हैं।

शिवदान सिंह चौहान ने अपने गंभीर और संतुलित लेखन के माध्यम से प्रगतिशील लेखन के आंदोलन को गतिशील रखा। निर्वैयक्तिक शैली में लिखे गए इनके निबंधों में वैज्ञानिक विवेचन तथा मताग्रह की वैचारिक प्रवृत्ति मिलती है। 'साहित्यानुशीलन', 'प्रगतिवाद', 'आलोचना के मान' आदि में इनके प्रतिनिधि निबंध संकलित हैं। यशपाल तथा भगवत शरण उपाध्याय ने भी जीवन और साहित्य को इसी दृष्टि से देखा–परखा। यशपाल ने समाज की सड़ी–गली रूढ़ियों तथा ह्रासोन्मुखी प्रवृत्तियों का जोरदार खंडन किया। यशपाल के प्रतिनिधि निबंध 'न्याय का संघर्ष' और 'बात–बात में बात' में संकलित है तथा भगवतशरण उपाध्याय के प्रतिनिधि निबंध 'ठूंठा आम', 'सांस्कृतिक निबंध' एवं 'साहित्य और कला' में संकलित है।

छायावादोत्तर युग में निबंध लेखन के क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण पहचान बनाने वाले निबंधकारों में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का नाम सर्वोपरि है। साहित्यिक–सांस्कृतिक संदर्भों से संपृक्त इनके निबंधों में कथ्य की अनौपचारिकता और शैली की सादगी के साथ–साथ विद्वता, गंभीरता और सरसता का मणिकांचन योग मिलता है। विचारात्मकता और भावात्मकता का पूर्ण सामंजस्य इनके निबंधों की एक उल्लेखनीय विशेषता है। प्राचीन साहित्य और संस्कृति में पूरी तरह रचे–बसे होने के बावजूद ये कहीं भी मोहासक्त नहीं दिखते। इनकी दृष्टि में अतीत की सार्थकता भविष्य निर्माण के उपयोग में है। 'अशोक के फूल', 'आम फिर बौरा गए', 'कुटज' उनके कतिपय बहु प्रसिद्ध निबंध हैं। 'विचार और वितर्क', 'अशोक के फूल', 'कल्पता' और 'कुटज' में उनके प्रतिनिधि निबंध संकलित हैं।

माखनलाल चतुर्वेदी, रामवृक्ष बेनीपुरी तथा कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर ने हजारी प्रसाद द्विवेदी से भिन्न प्रकृति के भावप्रधान निबंधों की रचना की। माखनलाल चतुर्वेदी के निबंधों में भारतीय संस्कृति और राष्ट्रीय भावना को भावात्मक शैली में रूपायित किया गया है। इनके निबंधों को पढ़ते समय गद्य में काव्य का–सा आनंद मिलता है। 'अमीर–इरादे, गरीब इरादे' इनके निबंधों का प्रतिनिधि संकलन है। बेनीपुरी के निबंधों में भावात्मकता का स्वर समाजवाद की धुरी पर अवलंबित है। इनके निबंधों में भारतीय ग्राम जीवन का हृदयग्राही अंकन है। 'वन्दे वीणा विनायको' में इनके प्रतिनिधि निबंध संकलित हैं। कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर की भावात्मकता प्रेरणा के स्वर को अपने केंद्र में लिए हुए है। आत्मपरकता के साथ–साथ तटस्थता तथा भावुकता के साथ व्यंग्य के सन्निवेश ने इनके निबंधों को अत्यंत प्रीतिकर बना दिया है। 'जिंदगी मुस्करायी' तथा 'बाजे पायलिया के घुंघरू' में इनके प्रतिनिधि निबंध संकलित हैं।

भावात्मक निबंधों को घुमक्कड़ी जीवन के अनुभवों से समृद्ध करने वाले निबंधकारों में राहुल सांकृत्यायन, देवेंद्र सत्यार्थी और भदन्त आनंद कौसल्यायन के नाम उल्लेखनीय हैं। देवेंद्र सत्यार्थी के निबंध माटी की महक और लोकजीवन की गमक लिए हुए है।

भदन्त आनंद कौसल्यायन के निबंध भी उनके घुमक्कड़ी जीवन के अनुभवों को निबद्ध किये हुए हैं। ये अपने कथ्य को दृष्टांत कथाओं के माध्यम से व्यक्त करते हैं। मानवता इनके निबंधों का मूल स्वर है। इनके निबंधों में संस्मरण का तत्व अत्यंत घुला–मिला है। 'जो मैं भूल न सका', 'जो मुझे लिखना पड़ा' तथा 'रेल का टिकट' में इनके प्रतिनिधि निबंध संकलन है।

मार्क्सवादी चिंतन से प्रभावित निबंधों की जिस परंपरा की शुरुआत प्रकाश चंद्र गुप्त ने की थी उसे डॉ. रामविलास शर्मा, गजानन माधव मुक्तिबोध तथा डॉ. नामवर सिंह ने विकसित किया।

हजारी प्रसाद द्विवेदी की निबंध शैली को आगे बढ़ाने वाले निबंधकारों में विद्यानिवास मिश्र तथा कुबेर नाथ राय के नाम सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। विद्यानिवास मिश्र संस्कृत के प्रकांड पंडित और पश्चिमी साहित्य के अच्छे अध्येता हैं। अतएव उनके निबंधों में प्राचीनता और नवीनता का सहज मिश्रण है। 'छितवन की छांह', 'तुम चंदन हम पानी', 'कदम्ब की फूली डाल', 'आंगन का पंछी और बनजारा मन', 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है', 'वसंत आ गया पर कोई उत्कंठा नहीं' आदि संग्रहों में उनके प्रतिनिधि निबंध संकलित हैं। कुबेरनाथ राय नयी पीढ़ी के समर्थ निबंधकार हैं। उनके निबंधों में आंचलिकता के साथ–साथ प्राचीन संस्कृत वांङ्गमय का वैभव अत्यंत रमणीय ढंग से अनुस्यूत है। 'प्रिया नीलकण्ठी', 'रस आखेटक', 'गंध मादन', 'विषाद योग', 'मायाबीज' आदि उनके निबंधों के प्रतिनिधि संकलन हैं।

ललित निबंधों के क्षेत्र में डॉ. धर्मवीर भारती के 'ठेले पर हिमालय', तथा 'पश्यंती' नामक निबंध संग्रहों का महत्वपूर्ण स्थान है। हल्के–फुल्के व्यंग्य विनोद के माध्यम से हिपोक्रेसी का पर्दाफाश करने में वे माहिर हैं। भाषा एकदम आडंबरहीन और सटीक है।

आधुनिक युग के निंबध साहित्य की एक मुख्य प्रवृत्ति युगीन जीवन की विसंगतियों पर करारी चोट करने वाले हास्य व्यंग्यात्मक निबंधों की रही है लेकिन हिन्दी लेखन की इतनी समृद्ध परंपरा होने के बावजूद इस क्षेत्र में नये लेखकों का आगमन कम हुआ है।

1.8 सारांश

हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल में मुद्रण के प्रचलन, शिक्षण संस्थाओं की स्थापना धार्मिक एवं बौद्धिक आंदोलनों के उत्थान तथा पत्र–पत्रिकाओं के प्रचार के कारण जीवन में जैसे–जैसे बौद्धिकता, ज्ञान, तर्क एवं चिंतन की प्रतिष्ठा बढ़ी, वैसे–वैसे गद्य साहित्य का भी विकास हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी के पश्चात तो हिन्दी में गद्य साहित्य की इतनी उन्नति हुई कि इतिहासकारों ने आधुनिक काल को 'गद्यकाल' की संज्ञा दी।

उन्नीसवीं शताब्दी के पूवार्द्ध में ही भारत में अंग्रेजी राज्य स्थापित हो चुका था। उनकी शिक्षा नीति से प्रभावित होकर जो प्रदेश सबसे पहले अंग्रेजी साहित्य के संपर्क में आए उनमें उपन्यासों का प्रचलन अपेक्षाकृत पहले हुआ।

हिन्दी उपन्यास की विकास यात्रा पर एक विहंगम दृष्टि डालें तो पता चलेगा कि हिन्दी उपन्यासों का जन्म सुधारवादी भावनाओं की पृष्ठभूमि में हुआ। इस समय देश में समाज के नैतिक उत्थान और सांस्कृतिक परंपराओं की रक्षा के लिए कई आंदोलन चल रहे थे।

भारतेंदु युग में उपन्यासों की एक लंबी कड़ी दृष्टिगत होती है जिसमें कई प्रकार के मौलिक और अनुदित उपन्यासों की रचना हुई। भारतेंदु के समय में ही श्रीनिवास दास ने

'परीक्षा गुरु' नाम का एक शिक्षाप्रद उपन्यास लिखा था। इसमें पहली बार कुछ औपन्यासिक तत्वों का समावेश किया गया था इसीलिए इसे हिन्दी का पहला उपन्यास स्वीकार किया जाता है।

प्रेमचंद का हिन्दी उपन्यास साहित्य के विकास की परंपरा में एक महत्वपूर्ण योगदान है। प्रेमचंद ने दो प्रकार के उपन्यास लिखे– राजनीतिक और सामाजिक। प्रेमचंद के समकालीन उपन्यासकारों में बहुत से नाम उल्लेखनीय हैं; यथा जयशंकर प्रसाद, चतुरसेन शास्त्री, विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक, भगवतीचरण वर्मा, पांडेय, बेचन शर्मा उग्र, वृंदावनलाल वर्मा, जैनेंद्र, इलाचंद्र जोशी आदि।

इस युग में अधिकांशतः मौलिक उपन्यासों की रचना हुई तथा उपन्यासकारों में पहले से कहीं अधिक कलात्मक संयम दिखाई दिया। इस युग के वर्ण्य विषयों में भी विविधता है। सामाजिक, ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक और मनोविश्लेषणात्मक सभी प्रकार के उपन्यास लिखे गए।

प्रेमचंद ने हिन्दी उपन्यास को जो ठोस आधारभूमि दी उससे इस विधा के विकास की चौमुखी राहें खुल गईं। प्रेमचंद के पश्चात समाजवादी यथार्थवाद को चित्रित करने वाले उपन्यासकारों में यशपाल, मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों में अज्ञेय, ऐतिहासिक उपन्यासकारों में वृंदावनलाल वर्मा, सामाजिक उपन्यासकारों में भगवतीचरण वर्मा और यथार्थवादी उपन्यासकारों में उपेंद्रनाथ अश्क ने अपनी विशिष्ट पहचान बनाई।

हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में विगत लगभग पांच शताब्दियों से अंतर्धान रहने वाले नाटक को ही हम आधुनिक गद्य के प्रवर्तन में प्रमुख माध्यम के रूप में देखते हैं। यह कुछ विचित्र–सी बात अवश्य है कि संस्कृत साहित्य ही अतुल संपदा है किंतु उसकी उत्तराधिकारिणी हिन्दी में नाटकों की रचना बहुत बाद में हुई। भारतेंदु युग से पूर्व तक तो हिन्दी नाटक परंपरा का प्रायः लोप ही रहा है।

हिन्दी नाटकों के उद्‌भव काल को कुछ विद्वानों ने तेरहवीं शती माना है। संवत् 1289 में रचित *'जय सुकुमार रास'* को एक विद्वान ने हिन्दी का प्रथम नाटक माना है। हिन्दी में नाटक के प्रचार–प्रसार हेतु भारतेंदु जी ने बहुविध कार्य किया। हिन्दी पाठकों–दर्शकों के हितार्थ इन्होंने संस्कृत–बांग्ला के श्रेष्ठ नाटकों को, हिन्दी में अनुवाद करके प्रस्तुत किया, स्वयं भी अनेक नाटकों का प्रणयन किया। भारतेंदु जी के समय में अन्य लेखकों ने भी नाटकों को अपनाना शुरू कर दिया। हिन्दी नाटकों के विकास में दो बातें ध्यान देने योग्य हैं। एक तो जैसे–जैसे समय आगे चलता गया, वैसे–वैसे देवता, राक्षस, गंधर्वादि दैवी पात्रों की कमी होती गई।

आधुनिक एकांकी वैज्ञानिक युग की देन है। विज्ञान के फलस्वरूप मानव के समय और शक्ति की बचत हुई है, फिर भी जीवन संघर्ष में मानव की दौड़–धूप लगातार जारी है। वास्तव में आधुनिक ढंग से हिन्दी एकांकियों का विकास प्रसाद युग में ही हुआ, क्योंकि इस युग में कुछ युगांतकारी नवीन प्रयोग एकांकी क्षेत्र में हुए। इस युग में एकांकीकारों ने पाश्चात्य अनुकरण पर नवीन शैली में एकांकी लिखना प्रारंभ किया तथा पाश्चात्य तकनीक को अपनाया।

प्रसादोत्तर युग राजनीतिक क्रांति का युग था। गांधी जी का प्रभाव राजनीतिक जीवन में विशेष रूप से पड़ रहा था। एकांकीकारों ने तत्कालीन राजनीतिक समस्याओं एवं गतिविधियों का चित्रण करना तथा देशवासियों में देश प्रेम एवं स्वतंत्रता की भावना को प्रबल करना अपना महान कर्तव्य समझा।

कहानियों के आरंभ की परंपरा अति प्राचीन है। कालक्रम एवं परिस्थितियों के अनुसार इसका स्वरूप बदलता रहा। कहानी को समय–समय पर विभिन्न नामों से पुकारा जाता रहा– कथा, आख्यान, गल्प आदि।

हिन्दी निबंध साहित्य का प्रारंभ भारतेंदु युग से होता है। भारतेंदु युग के दूसरे महत्वपूर्ण निबंधकार पं. बालकृष्ण भट्ट हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इनके निबंधों की तुलना अंग्रेजी के प्रसिद्ध निबंधकार एडीसन से की है। भारतेंदु युगीन निबंध साहित्य विषय वस्तु तथा रचना शिल्प, दोनों दृष्टियों से वैविध्यपूर्ण है। इस युग में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, साहित्यिक आदि सभी प्रकार के विषयों पर निबंध लिखे गए।

आधुनिक युग के निंबध साहित्य की एक मुख्य प्रवृत्ति युगीन जीवन की विसंगतियों पर करारी चोट करने वाले हास्य व्यंग्यात्मक निबंधों की रही है लेकिन हिन्दी लेखन की इतनी समृद्ध परंपरा होने के बावजूद इस क्षेत्र में नये लेखकों का आगमन कम हुआ है।

1.9 मुख्य शब्दावली

- **तर्कशून्यता** : तर्क अथवा विवेक रहित।
- **परिस्कार** : शुद्ध करना, सुधारना।
- **एकरूपता** : समानता, अनुरूप।
- **विपन्नता** : गरीब, निर्धनता, बदहाल।
- **क्षितिज** : आकाशवृत्त, ज्ञान की सीमा।

1.10 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1. 1324 ई.
2. नाभादास की
3. आर्य समाज संस्था
4. (क) गलत, (ख) सही
5. परीक्षा गुरु
6. राजनीतिक और सामाजिक
7. व्यक्ति के अंतःसंघर्ष का
8. (क) गलत, (ख) सही
9. नहुष

10. ऐतिहासिक–पौराणिक
11. व्यक्तियों की समस्याएं
12. (क) गलत, (ख) सही
13. जयशंकर प्रसाद की एकांकी 'एक घूंट'
14. राष्ट्रीय भावना से ओत–प्रोत ऐतिहासिक रचनाएं
15. प्रसादोत्तर युग में
16. (क) सही, (ख) गलत
17. पूर्व प्रेमचंद युग को
18. सन् 1911 में 'इंदु' नामक पत्रिका में
19. व्यक्ति चरित्र को
20 (क) सही, (ख) सही
21. सन् 1901 से सन् 1920 तक
22. बालमुकुंद गुप्त
23. सन् 1941 से
24. (क) गलत, (ख) सही

1.11 अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. हिंदी गद्य के विकास में ईसाई व ब्रह्म समाज के योगदान का संक्षिप्त विवरण दीजिए।
2. द्विवेदी युग में मुख्य योगदान किसका रहा? इसके समकालीन गद्य लेखकों का उल्लेख कीजिए।
3. नाटकों के अनुवाद में किए गए उल्लेखनीय योगदान का परिचय दीजिए।
4. नाटकों पर पड़ते नवीन प्रभावों पर टिप्पणी लिखिए।
5. हिंदी के प्रमुख उपन्यासकारों का परिचय दीजिए।
6. कहानी का उद्‌भव का परिचय देते हुए बताइए कि प्रथम हिंदी कहानी किसे माना जाता है?
7. संक्षेप में बताइए कि ग्रामांचल कहानी के प्रमुख प्रणेता कौन–कौन हैं?

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. आधुनिक काल से पूर्व उपलब्ध हिंदी गद्य के रूपों का विस्तृत वर्णन कीजिए।
2. हिंदी उपन्यास के उद्‌भव और विकास का वर्णनात्मक विवरण दीजिए।

3. हिंदी उपन्यास के स्वरूपों को स्पष्ट कीजिए? इस विधा के उल्लेखनीय उपन्यासकारों का साहित्यिक परिचय दीजिए।
4. पूर्व भारतेंदु युग में हिंदी नाटकों की स्थिति की समीक्षा कीजिए।
5. हिंदी के कुछ प्रमुख नाटककारों का उल्लेख करते हुए प्रत्येक की साहित्यिक प्रवृत्तियों को उजागर कीजिए।
6. ऐतिहासिक दृष्टि से एकांकी के विकास क्रम का विवरणात्मक विश्लेषण कीजिए।
7. नई कहानी का प्रवर्तक किसे माना जाता है? विस्तार से बताइए कि गद्य विकास में इनकी क्या भूमिका रही।
8. निबंध के विकासक्रम को कितने चरणों में विभक्त किया जाता है? विश्लेषणात्मक वर्णन कीजिए।

1.12 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1. डॉ. रामसजन पाण्डेय, *हिंदी साहित्य का इतिहास,* संजय प्रकाशन, दिल्ली.
2. हजारी प्रसाद द्विवेदी, *हिंदी साहित्य का आदिकाल,* बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, 1961.
3. हजारी प्रसाद द्विवेदी, *हिंदी साहित्य की भूमिका,* हिंदी ग्रन्थ रत्नाकर, बम्बई, 1963.
4. विजयेन्द्र स्नातक, *हिंदी साहित्य का इतिहास,* साहित्य अकादमी, दिल्ली, 1996.
5. बच्चन सिंह, *हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास,* राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1996.
6. रामचन्द्र शुक्ल, *हिंदी साहित्य का इतिहास,* नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, 1961.
7. रामकुमार वर्मा, *हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास,* रामनारायणलाल बेनी माधव, इलाहाबाद, 1971,
8. (सम्पादक) नगेन्द्र, *हिंदी साहित्य का इतिहास,* नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1973.
9. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, *स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य का इतिहास,* राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, 1982.
10. गणपतिचन्द्र गुप्त, *हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास* (खण्ड दो), लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1989 एवं 1990.
11. हरिश्चन्द्र वर्मा एवं रामनिवास गुप्त, *हिंदी साहित्य का इतिहास,* मंथन पब्लिकेशन्स, रोहतक, 1982.

इकाई 2 : उपन्यास (महाभोज : मन्नू भंडारी) – II

2.0 परिचय

मन्नू भंडारी का उपन्यास 'महाभोज' अपनी विषयवस्तु के प्रामाणिक प्रस्तुतीकरण और अबाध पठनीयता के लिए जाना जाता है। मध्य प्रदेश के भानपुरा नगर में 1931 में जन्मी मन्नू भंडारी को श्रेष्ठ लेखिका होने का गौरव प्राप्त है। उन्होंने कहानी और उपन्यास दोनों विधाओं में कलम चलाई है। नौकरशाही में व्याप्त भ्रष्टाचार के दलदल में फंसे आम आदमी की पीड़ा और दर्द को उद्घाटित करने वाले उनके उपन्यास 'महाभोज' (1979) को हिन्दी के सफलतम उपन्यासों की श्रेणी में रखा जाता है। ऐसा कहा जाता है कि राजनीतिक कुचक्रों पर महिलाएं नहीं लिखतीं, महाभोज उपन्यास इस धारणा को तोड़ता है। यही वजह है कि मन्नू भंडारी जब महाभोज लिख डालती हैं तो लोगों का ध्यान किताब पर फौरन चला जाता है।

जनतंत्र की विडंबना व राजनीति के प्रति मानवीय चरित्र को 'महाभोज' का आधार बनाया गया है। यह आजाद भारत की भ्रष्ट, सत्तालोलुप एवं बंजर राजनीति की प्रतिनिधि कथा है। उपन्यास का ताना–बाना सरोहा नामक गांव के इर्द–गिर्द बुना गया है, जहां विधानसभा की एक सीट के लिए चुनाव होने वाला है। यहां मूल्यों व संभावनाओं की लाशों पर राजनीति के गिद्धों का जमघट है।

निःसंदेह कहा जा सकता है कि 'महाभोज' एक सशक्त कृति है क्योंकि राजनीति में चल रही दोगली नीति, भ्रष्टाचार, अवसरवादिता, अमानवीकरण, तिकड़मबाजी, दल–बदल नीति और इसके घिनौनेपन को मन्नूजी ने बखूबी उजागर किया है।

इस इकाई में हम महाभोज उपन्यास में मौजूद राजनीतिक चेतना व दलित चेतना का अध्ययन करेंगे। साथ ही औपन्यासिक तत्वों के आधार पर उपन्यास का समीक्षात्मक अवलोकन भी करेंगे।

2.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- **मन्नू भंडारी के उपन्यास 'महाभोज' की विशेषताओं को समझ पाएंगे;**
- **'महाभोज' में उपलब्ध राजनीतिक चेतना का विश्लेषण कर पाएंगे;**
- **'महाभोज' में विवेचित दलित चेतना के विषय में जान पाएंगे;**
- **औपन्यासिक तत्वों के आधार पर 'महाभोज' की समीक्षा कर पाएंगे।**

2.4 औपन्यासिक तत्वों के आधार पर 'महाभोज' की समीक्षा

विद्वानों ने उपन्यास के निम्न छह तत्व माने हैं–

1. कथावस्तु
2. पात्र और चरित्र चित्रण
3. कथोपकथन या संवाद
4. देशकाल या वातावरण
5. भाषा–शैली
6. उद्देश्य।

'महाभोज' उपन्यास की उपर्युक्त छह तत्वों के आधार पर यहां समीक्षा की जा रही है। उपर्युक्त छह तत्वों में मुख्य तत्व कथावस्तु और पात्र हैं, देशकाल कथावस्तु का ही एक अंग है जो उसे स्वाभाविक और विश्वसनीय बनाता है। उद्देश्य वह परिणाम है जिसे कथावस्तु के द्वारा प्राप्त किया जाता है तथा शैली और संवाद उसे प्राप्त करने के साधन हैं।

1. कथावस्तु

महाभोज नामक लघु उपन्यास नौ भागों में विभक्त है। एक सौ तिरासी पृष्ठों में उसके कथानक को समेटा गया है। राजनीति की विद्रूपता पर आधारित इस उपन्यास को सामाजिक उपन्यास भी कहना प्रासंगिक है। यद्यपि यह एक राजनीतिक उपन्यास है। इस उपन्यास की कथा विकास के हाशिये से बाहर खड़े एक गांव सरोहा की है। यहां जोरावर सिंह जैसे सामंतवादी जमींदारों के बीच किसान एवं मजदूर वर्ग नारकीय जीवन जीने को अभिशप्त है। जोरावर सिंह जैसे जमींदारों के खिलाफ आवाज उठाने वालों के घर आग के हवाले कर दिए जाते हैं, इसके साथ ही उन्हें भी आग में झोंक दिया जाता है। इस उपन्यास में चुनाव जीतने के लिए हत्या, आगजनी, जुलूस, रैलियों, जोड़–तोड़ आदि का चित्रण विश्वसनीय धरातल पर किया गया है। कहानी हरिजन युवक बिसेसर उर्फ बिसू की मौत की घटना से आरंभ होती है। वह जमींदारों के अत्याचारों के प्रमाण एकत्रित करता है, जिन्हें वह दिल्ली जाकर सक्षम प्राधिकारियों को सौंपना और बस्ती के लोगों को न्याय दिलाना

चाहता था। किन्तु दिल्ली पहुंचने से पहले ही उसकी हत्या या मृत्यु हो जाती है। बिसू की हत्या या मौत को केन्द्र बनाकर मन्नू जी ने महाभोज के कथानक की योजना इस प्रकार की है जिससे मानव विरोधी राजनीति के चरित्र का साक्षात्कार होता है।

सरोहा गांव उत्तर प्रदेश के पश्चिमी भाग में स्थित है, जहां विधान सभा की एक सीट के लिए उपचुनाव होने वाला है। इस चुनाव को जीतने के लिए सत्तासीन एवं सत्ताच्युत दोनों ही पक्ष लालायित हैं। एक तरफ वर्तमान मुख्यमंत्री 'दा साहब' ने अपने आदमी लखन सिंह को चुनाव मैदान में उतारा है जिसकी हैसियत पार्टी दफ्तर में कुर्सियां उठाने–बिठाने की ही है तो दूसरी ओर भूतपूर्व मुख्यमंत्री सुकुल बाबू हैं, जो स्वयं सरोहा से चुनाव लड़ रहे हैं। चुनाव जीतने की जो प्रतिस्पर्धा है उसमें कोई पीछे नहीं रहना चाहता है। इसी घटनाक्रम के बीच एक विद्रोही स्वभाव के युवक बिसेसर की मौत पर राजनीति कुछ ऐसी गरमाती है उसमें सत्तारूढ़ पार्टी और विरोधी दल दोनों अपनी राजनीतिक रोटियां सेंकना चाहते हैं। सुकुल बाबू और दा साहब अपने को गरीबों का मसीहा घोषित करने लगते हैं। बिसू की मौत को दोनों ही पक्ष अपने पक्ष में भुनाने की कोशिश करते हैं और इस क्रम में मुख्यमंत्री दा साहब उच्चस्तरीय जांच की घोषणा करते हैं, यद्यपि गांव के लोगों को पता है कि बिसू की हत्या जोरावर सिंह ने जहर देकर की है। जोरावर सरोहा गांव का एक सिरफिरा युवक था और उसे निम्न जाति वालों का आगे बढ़ना पसंद नहीं था। बिसू की मौत की जांच के लिए एस. पी. सक्सेना को नियुक्त किया गया है। जून महीने की गर्मी में एस. पी. सक्सेना सरोहा आते हैं। सक्सेना साहब पहले दिन जोगेसर, महेश बाबु और हीरा के बयान लेते हैं। दूसरे दिन बिंदा का बयान लेते हैं, बिंदा को बिसू की मौत का दुख है। वह जानता है कि बिसू की हत्या क्यों कर दी गई है। सक्सेना अपनी रिपोर्ट में बिसू की हत्या की बात कहते हैं। दा साहब के पास एस. पी. सक्सेना की कन्फिडेन्शियल रिपोर्ट आ गई है। वे डी.आई.जी. सिन्हा को प्रमोशन का लालच देकर सक्सेना की रिपोर्ट को दबाकर उन्हें फिर से नई रिपोर्ट तैयार करवाने की बात करते हैं। दा साहब जोरावर को बचाना चाहते हैं और बिंदा को फंसाना चाहते हैं। हत्या के जुर्म में पुलिस द्वारा बिंदा को गिरफ्तार कर लिया जाता है। 'मशाल' अखबार में खबर छप जाती है कि "दोस्ती की आड़ में बिसू की हत्या करने वाले बिंदा गिरफ्तार।" मशाल अखबार के सम्पादक दत्ता साहब को सरकारी विज्ञापन और अनेक सुविधाएं मिल जाती हैं। ईमानदार एस. पी. सक्सेना को सस्पेंशन एवं भ्रष्ट डी.आई.जी सिन्हा को आई.जी. बनाने का ऑर्डर दिया जाता है। उपन्यास की कथा अन्त में दा साहब के शातिर व्यक्तित्व को उजागर करती है।

2. पात्र और चरित्र चित्रण

'महाभोज' में निम्नलिखित पात्रों की योजना की गई है– बिसेसर (बिसू), मुख्यमंत्री दा साहब, भूतपूर्व मुख्यमंत्री सुकुल बाबू, सरोहा का थानेदार, लखन सिंह, जोरावर सिंह, दत्ता बाबू, त्रिलोचन सिंह रावत (लोचन भैया), पाण्डे, हीरा, बिन्देश्वरी प्रसाद (बिंदा), बिहारी बाबू, जुम्मन पहलवान, रुक्मा, रत्ती, भवानी, डी. आई. जी. सिन्हा, सदाशिव अत्रे (अप्पा साहब), राव, चौधरी, बापट, मेहता, जोगेसर साहू, सोना, एस. पी. सक्सेना, महेश शर्मा, अखिलन रामचन्द्रन, पुत्तन, सरपंच, दिनेश, जमना, काशी, श्रीमती सिन्हा, इन्कम टैक्स कमिश्नर वर्मा,

लाला दीनदयाल, लालता बाबू, नरोत्तम, चौकीदार इत्यादि। उक्त पात्रों में केवल बिसू, दा साहब, सुकुल बाबू, बिंदा– चार ही पात्र उल्लेखनीय हैं।

महाभोज उपन्यास में बिसू की हत्या प्रमुख घटना है। इसमें बिसू की हत्या की हकीकत को लेकर बिसू की हत्या को आत्महत्या करार देने तक की घटना के रूप में कथातत्व का निर्वाह किया गया है। मृतक बिसेसर आरंभ से अंत तक छाया हुआ है। सड़क किनारे पुलिया पर लाश मिलना उपन्यास का एक बिंदु है। यह लाश बिसेसर उर्फ बिसू की है जो इस उपन्यास का सबसे संभावनापूर्ण चरित्र है जिसकी हत्या कर दी गई है।

बिसू सरोहा गांव का तेजस्वी युवक था। उसका पिता हीरा एक गरीब कृषक था। हीरा ने बड़े अरमान से उसे चौदहवीं कक्षा तक पढ़ाया था। हीरा अपने बेटे को अफसर बनाना चाहता था लेकिन उसका बेटा बिसू तो अपने समाज को शोषण के चक्र से बाहर निकालना चाहता था इसलिए पढ़ाई पूर्ण होते ही वापस अपने गांव आ गया। अपने पिता की तरह वह भी खेती के कार्य में लग गया। इसके साथ ही गांव में अप्रना निजी स्कूल खोल दिया। वह हरिजन बच्चों को पढ़ाता और गांव के हरिजन मजदूरों को उनके उचित अधिकारों के लिए तथा सरकार द्वारा निर्धारित की गई मजदूरी की दरों को दिलाने हेतु उन्हें संगठित करता था। वह हरिजन बस्ती में लोगों में सुषुप्त चेतना को जगाने के काम में लगा हुआ था जिसकी वजह से बिसेसर या बिसू परंपरागत सामंतवादी तत्वों की आंखों में कांटे की तरह खटकने लगा था।

साहूकारों द्वारा गरीबों एवं किसानों के शोषण से बिसू व्यथित हो जाता था। मजदूरों को उचित पारिश्रमिक नहीं मिल पाने से वह बेचैन हो जाता था। बिसू लोगों को झगड़ा–फसाद से बचकर रहने को कहता था तथा अपने अधिकारों के प्रति सजग रहने को प्रेरित करता था जिसे जोरावर जैसे जमींदार बरदाश्त नहीं कर सके। परिणामतः नक्सलवादी होने का झूठा आरोप लगाकर उसे जेल में बंद कर दिया जाता है। लेकिन वास्तव में वह नक्सल विरोधी था। वह हमेशा नक्सलियों की मुखालफत करता था। भोले–भाले किसानों एवं मजदूरों की नजर में बिसू देवता था। जमींदारों–साहूकारों की आंखों में कांटे की तरह खटकने लगा था। सुकुल बाबू के राज में जेल में बंद बिसू दा साहब की सरकार के समय रिहा किया जाता है। चार साल बाद जेल से छूटकर कुछ दिन शांत रहने के बाद फिर से अपने कामों में लग जाता है।

जेल से रिहा होने के पश्चात बिसू की मनोदशा का चित्रण करते हुए हीरा कहता है– "एक–दुइ महीना तो पड़ा रहा। न काहू से बोलत न चालब! न कहूं आउन न जाब। बस, गोड़न में मुंह दिहे बइठा रहत...जो खटिया पे लेटिगा तो लेटिके, आसमानै ताकत रहत जो खाय का कहौ ता खाय लै...न कहौ तो भूखै..." जेल के चार वर्ष ने बिसू को बिसू नहीं रहने दिया था। उस दरमियान यातनाओं की वर्षा हुई थी बिसू पर। बेटे की स्थिति का उल्लेख करते हुए हीरा आगे कहता है–"हमका तो लगतै नहीं रहा कि ये हमार बिसुआ है। अरे का बतायी सरकार, बड़ी चुस्ती–फुर्ती रही वाहिके सरीर मा! मुला सब निचुड़ गयी। बहुत बेचैन रहता रहा। रात–रात भर टहरा करता। जाने कउन दुःख लागि गवा रहै।" जेल से छूटकर जब वह आता है तब उसके पैरों और कलाई में इतने घाव थे कि उनसे खून और

मवाद भी आ रहा था। उसकी मां ने घी और हल्दी के फाहे रख–रखकर बड़ी मुश्किल से घावों को ठीक किया था। उसका सारा शरीर जख्मों से भर गया था। हीरा अपने बेटे बिसू के बाहरी और भीतरी असह्य जख्मों को देख कहता था, "बहुतै मुलायम रही खाल हमारे बिसू की साहब...बहुतै मुलायम।"

यद्यपि नई सरकार अर्थात दा साहब की सरकार ने बिसू को जेल से रिहा किया था। किन्तु गांव की स्थिति अभी भी पूर्ववत ही है। सिर्फ सत्ता बदली है। व्यवस्था अभी भी पुरानी कायम है। जेल से छूटकर बिसू गांव पहुंचता है। गांव में अभी भी किसानों व मजदूरों का शोषण जमींदारों एवं साहूकारों द्वारा बदस्तूर जारी था। इन स्थितियों से वह बहुत बेचैन रहता था। मां जब उससे नौकरी नहीं करने को लेकर शिकायत करती तो वह मां से कहता था– "थोड़े दिनौ अउर रुकि जाव अम्मा...फिर तुमको कानो बात की सिकायत न होई!"

बिसू को अपने गांव सरोहा से बहुत लगाव था। हालांकि गांव में गरीबी व शोषण व्याप्त था। इसके बाद भी उसने गांव छोड़कर जाने का नहीं सोचा। गांव की समस्या के प्रति वह बहुत अधिक चिंतित रहता था। गांव के गरीब किसान बिसू को बहुत प्रेम करते थे। वह मजदूरों को अपने अधिकारों के प्रति सचेत करता रहता था। लेकिन वह हमेशा उन्हें दंगा–फसाद से बचने की सलाह देता था। इन सब बातों से जोरावर सिंह बहुत नाराज था। वह उसे बुलाकर डराता–धमकाता था लेकिन इन धमकियों से बिना प्रभावित हुए बिसू मजदूरों के लिए आवाज उठाता था। वह कभी हिंसा का सहारा नहीं लेता था। तभी तो थानेदार एस. पी. सक्सेना से कहते हैं– "जी सर...कभी कोई मार–पीट नहीं हुई।"

बिसू जब जेल से छूटकर आया तब बिंदा से परिचय हुआ और दोनों अच्छे दोस्त बन गए। बिसू अक्सर बिंदा के घर पर ही खाना खा लेता था। दोनों के बीच गांव की समस्याओं के संबंध में चर्चाएं हुआ करती थीं। बिसू जेल से वापस आने के बाद एक बार फिर से मजदूरों व किसानों को अपने अधिकारों के प्रति जाग्रत करने के कार्य में लग गया था। लेकिन हरिजनों की नैतिक ताकत की रीढ़ को ही खत्म कर देने के लिए हरिजन बस्ती में आग लगाई जाती है। जिसमें नौ आदमी जलकर मर जाते हैं। वह इस घटना के दोषियों को सजा दिलाना चाहता है। उसका कहना था– "यह थोड़े–से आदमियों के मरने–भर की बात नहीं है...समझ लीजिए कि पूरी–की–पूरी बस्ती का हौसला ही मर गया। आठ महीनों तक रात–दिन समझा–समझाकर इस लायक बनाया था कि छाती ठोंककर अपना हक मांग सकें...अब बहुत दिनों तक ये लोग अपने हक के लिए लड़ने का हौसला नहीं जुटा पाएंगे।"

इस आगजनी हत्याकांड के कुछ प्रत्यक्षदर्शी प्रमाणों को लेकर बिसू दिल्ली जाने की तैयारी करता है जिसे जोरावर जैसे लोग बरदाश्त नहीं कर पाते। अतः उस आवाज को हमेशा–हमेशा के लिए बंद करने के लिए उसकी हत्या कर दी जाती है।

दा साहब के माध्यम से कथावस्तु आगे बढ़ती है। दा साहब जैसे लोग जिस राजनीतिक संस्कृति का संचालन करते हैं उसका प्रतिरोध उस राजनीति से ही संभव है जो खतरनाक होने के साथ–साथ अग्निधर्मी है। दा साहब में विरोधों को पचा पाने की अद्‌भुत

क्षमता है। मन्नू जी ने उनके विशिष्ट व्यक्तित्व का परिचय इस तरह दिया है– "शहर के सबसे महत्वपूर्ण व्यक्ति दा साहब अपने निजी कमरे के एक कोने में अकेले बैठे हैं– मौन, गम्भीर, कुछ–कुछ चिन्तित और परेशान भी। पर चिन्ता है कि उसके कोई आसार बाहर नहीं हैं। चेहरे की सौम्यता ने उसे भीतर ही ठेल रखा है। फिर भी इतना जरूर लग रहा है कि गहरे में डूबे हुए हैं। हां, बीच–बीच में फोन की घंटी बजती है तो कुछ क्षणों को उबर आते हैं। पर बात में कहीं कोई हड़बड़ी या परेशानी नहीं। वही उनका अपना खास अन्दाज–कम शब्द, सधी आवाज। बात को अपने से, अपने मन में होने वाली उथल–पुथल से काटकर भी किया जा सकता है–यह गुर कोई दा साहब से सीखे। सीखना चाहे तो इतनी विशेषताएं हैं दा साहब में कि सीखने वाला मजे में पूरी जिंदगी खपा सकता है। पर आज के इस हाय–हाय वाले जमाने में किसके पास रखा है इतना धैर्य! तभी तो कोई छाया तक नहीं छू सकता है उनकी।"

दा साहब एक ऐसे राजनीतिक नेता हैं, जो दूसरे तबकों के साथ–साथ हरिजनों के वोट की भी आशा रखते हैं। परंतु लोग आज इतने सतर्क हो रहे हैं कि कौन अपना कौन पराया जानने लगे हैं। 'लखन' दा साहब का कार्यकर्ता है जो सरोहा से चुनाव के लिए खड़ा है। सरोहा में बिसू की हत्या हो गई है और सभी को पता है कि इसके पीछे जोरावर सिंह का हाथ है, जो दा साहब का ही आदमी है। ये तो जाहिर है कि अगर दा साहब के ही आदमी ने बिसू की हत्या की है तो हरिजन वोट उन्हें कैसे मिलेंगे? हो सकता है बाकी लोग भी वोट देने से इन्कार करें। यही बात समझाते हुए लखन दा साहब से कहता है– "आप हैं कि इसी मूर्ख का पल्ला पकड़े हुए हैं। मारा है गरीबों को तो भुगतने दो सजा! नहीं चाहिए हमें जोरावर के वोट। अब इसके वोटों के चक्कर में हरिजनों के सारे वोट भी गये ही। गांव के दूसरे लोगों के वोट भी नहीं मिलेंगे। सारा हिसाब लगाकर देख लिया है मैंने, ले डूबेगा जोरावर का साथ। माथे पर कलंक और आत्मा का बोझ वह अलग।"

दा साहब इन खतरों को समझते हैं लेकिन वे विवेक और धीरज बनाए रखते हैं। साहस के साथ वे कहते हैं– "जिस दिन अपने लोगों का विश्वास खो दूंगा, उस दिन कुर्सी पर नहीं बैठूंगा। सबके विश्वास पर ही टिकी हुई है मेरी कुर्सी। सबके सद्भाव पर ही जिन्दा हूं मैं। विश्वास–सद्भाव ही नहीं रहा तो मेरे रहने का क्या मतलब?"

दा साहब अपनी राजनीति का परिचय देते हैं। मुख्यमंत्री उस युवक के गांव जाते हैं, उसके पिता से मिलकर उन्हें सांत्वना देते हुए कहते हैं– "आज बहुत ही खेदजनक मौके पर...एक दुख के मौके पर हूं, मैं आप लोगों के बीच। चलने लगा तो लोगों ने सलाह दी कि सुरक्षा का विशेष प्रबंध करके चलूं। बात मैं कुछ समझा नहीं। अपने भाई–बन्दों के बीच आकर तो आदमी वैसे ही सुरक्षित रहता है। यह अतिरिक्त सुरक्षा कैसी? क्यों? घरेलू उद्योग योजना के उद्घाटन के लिए बिसेसर के बाबा से अधिक सही आदमी और कौन हो सकता है भला?...गरीबों का हितैषी था बिसेसर। उसकी आत्मा को शान्ति मिलेगी इससे। जितने भी संकेत मिले हैं उससे लगता है कि बिसेसर ने आत्महत्या की है।"

दा साहब के भाषण के बीच एक नौजवान कहता है, "बिसेसर को मारा गया है, उसकी हत्या हुई है, उसने आत्महत्या नहीं की है।" इस पर दा साहब उत्तर देते हैं–

"असलियत छिप नहीं सकती और अब तो मैं भी नजर गड़ाए बैठा हूं। मैंने डी.आई.जी. से कह दिया है कि किसी बड़े अफसर को भेजकर बयान ले, आप लोगों के।" मुख्यमंत्री दा साहब बिसेसर के पिता को मुख्यमंत्री निधि में से पचास हजार का चेक देकर सहानुभूति जताते हैं और केस डी.आई.जी को सौंप देते हैं। इस प्रकार दा साहब की सूझबूझ से गांव के लोग प्रभावित हो जाते हैं।

बिसू की मौत के सारे कागजात डी.आई.जी. सिन्हा के पास पहुंच गए थे। दा साहब से लखन पूछता है, आपने बिसू की मौत संबंधी रिपोर्ट तैयार करने के लिए कुछ दिशा–निर्देश दिए हैं? तब दा साहब कहते हैं कि अफसरों को इस तरह के आदेश देना उनके अधिकार में हस्तक्षेप करना है। पुलिस वालों का कार्य है कि सबूतों और बयानों के आधार पर ईमानदारी से रिपोर्ट तैयार करें। उन्हें इसी बात का वेतन भी दिया जाता है। ऊपर से आदेश थोपा जाएगा तो न्याय कैसे करेंगे? अपनी आकांक्षाओं को थोड़ी लगाम देनी चाहिए। मुख्यमंत्री दा साहब चतुर राजनीतिज्ञ थे। तभी तो वे कहते हैं..."मेरे लिए राजनीति धर्मनीति से कम नहीं। इस राह पर मेरे साथ चलना है तो गीता का उपदेश गांठ बांध लो। निष्ठा से अपना कर्तव्य किये जाओ, बस! फल पर दृष्टि ही मत रखो।"

दा साहब दूसरों पर प्रभाव डालने में माहिर थे। मशाल के संपादक दत्ता बाबू ने इंटरव्यू के लिए बहुत पहले समय मांगा था। आज समय लेकर मिल लेने के लिए उन्होंने लखन से कह दिया। घरेलू ऑफिस में फाइलें निपटा रहे थे दा साहब, उसी समय दत्ता बाबू मिलने आते हैं। दा साहब ने दत्ता बाबू का स्वागत किया। चपरासी से कहा कि रत्ती से कहना है कि पांच–सात मिनट में डी.आई.जी. से फोन पर बात करवा देगा। दत्ता बाबू पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव डालने के उद्देश्य से उन्होंने यह किया था। "कोई पांच–छह महीने पहले इंटरव्यू के लिए समय मांगा था आपने, नहीं दे सका था। समय के अभाव की बात तो अपनी जगह थी ही...उस समय मेरे पास। मेरी ये योजनाएं हैं...मैं ये करूंगा, वो करूंगा... मेरे शासन काल में ये होगा, वो होगा...यही सब। पर वह गा–गे–गी वाली भाषा मुझसे बोली नहीं जाती। अरे भाई, पहले कुछ कर दो, फिर उस पर बात करो, दूसरों से भी बात करने को कहो...आलोचना करने को कहो।"

दा साहब ने कहा, "खुलकर टिप्पणी कीजिए। हम गलती करें तो खुलकर निन्दा कीजिए हमारी भी...मैं तो भाई, कबीर के दोहे का कायल हूं कि 'निन्दक नियरे राखिये।' प्रशंसक से निन्दक ज्यादा हितैषी होता है हमेशा। आपको सत्पथ पर रखता है।" उसी समय डी.आई.जी. का फोन आता है। दा साहब दत्ता बाबू की उपस्थिति में सिन्हा को बिसू की हत्या की सही–सही तहकीकात ईमानदारी एवं सच्चाई के साथ करने की सूचना देते हैं। "यदि मुजरिम नहीं पकड़ा गया तो सजा आपको दूंगा, अपने को दूंगा, समझे?"

दत्ता बाबू को सरकारी इश्तहार और कागज के कोटे का प्रलोभन देकर मशाल को अपना प्रशंसक बनाते हैं। दा साहब देखते हैं सक्सेना की रिपोर्ट अपने खिलाफ जा रही है, तब वे डी.आई.जी. को मामला अपने हाथ में लेने की तथा सक्सेना का तबदला करने की हिदायत देते हैं। विधायक दल के असंतुष्ट लोगों के नेता शिक्षामंत्री लोचन भैया अविश्वास प्रस्ताव लाकर दा साहब का मंत्रीमंडल गिराने का प्रयास करते हैं, तब

दा साहब लोचन भैया के साथी राव चौधरी को प्रलोभन दिखाकर अलग करते हैं। दा साहब राव से कहते हैं– "राजनीति मेरे लिए स्वार्थनीति नहीं है और चाहता हूं कि मेरे साथ काम करने वाले लोग भी इस बात को अच्छी तरह समझ लें।" राव का चेहरा बुझने लगा। तभी दा साहब ने प्रहार किया–"लोचन से क्या आश्वासन मिला था?" राव ने कहा, "लोचन भैया ने ब्लैंक चैक दे दिया है हमें। समझ लीजिए, गृह और वित्त सुरक्षित ही हैं हमारे लिए।" तब दा साहब हंसे और थोड़ी देर तक हंसते ही रहे। उस हंसी में उपहास था, विनोद था, या व्यंग्य–शीघ्र ही गम्भीर होकर समझाने के लहजे में उन्होंने कहा, "जिसके एकाउंट में कुछ हो ही नहीं, वही बड़े खुले हाथ से बांट सकता है इस तरह के ब्लैंक चैक।" समझौते का हाथ बढ़ाते हुए दा साहब ने यह भी कहा कि "मैं बहुत ऊंचे तक तो नहीं ले जा सकता, पर जहां तक ले जाता हूं, वहां खड़े होने के लिए कम–से–कम पांव के नीचे की जमीन जरूर देता हूं। मेरे साथ चलने वालों के सामने औंधे मुंह गिरने का खतरा कतई नहीं रहता। अब तुम सोच लो।"

आखिरकार राव और चौधरी दोनों चुप हो जाते हैं। राव को शिक्षामंत्री का पदभार संभाल लेने को कहा जाता है और लोचन भैया को बरखास्त करते हैं। लखनसिंह के विरुद्ध चुनाव लड़ने की इच्छा प्रदर्शित करने वाले जोरावर को दा साहब ने चिन्ताभरे स्वर में कहा, "आज सवेरे से तुम्हारी ही बात सोचता रहा हूं मैं। कल रात सक्सेना वाली फाइल मंगाकर देखी थी। परेशानी तो पैदा हो ही गई...तुमने यह अच्छा नहीं किया। एक परेशानी से जैसें–तैसे उबरने की कोशिश कर रहे थे कि...यह मत भूलो कि पुलिस और कानून के हाथ बहुत लम्बे होते हैं और आंखें काफी तेज। न देखें तो हाथी तक को न देखें, पर उतर आएं तो फिर चींटी भी नहीं बच सकती– न नजर से न गिरफ्त से।" दा साहब की बात से जोरावर डर जाता है। जोरावर को असहाय देख दा साहब बोले– "यह सही है कि मैं जब किसी का हाथ पकड़ता हूं तो बीच में नहीं छोड़ता। स्वभाव है मेरा। पर कोई इसे मेरी दुर्बलता समझकर नाजायज फायदा उठाना चाहे तो..." इस बार का धमकीभरा स्वर जोरावर के साहस को संपूर्णतः तोड़ने में कायल हो गया। अंत में दा साहब ने कहा, "बात जबानी रहे, तब तक कुछ नहीं, पर एक बार फाइल में आ जाए तो बहुत मुश्किल हो जाता है।" दा साहब के स्वर में विशेष चिन्ता के भाव को अहसास कर जोरावर सचमुच जमीन पर आ गया। घबराते हुए अनुनय करता हुआ वह कहने लगा, "हमारे साथ कुछ उलटा–सीधा नहीं होना चाहिए। आपकी जिम्मेदारी है यह।" दा साहब कुछ नहीं बोले। लगा, किसी गहरे सोच में डूब गए। जोरावर ने चुनाव लड़ने की इच्छा प्रकट की तो आश्चर्य के साथ दा साहब बोले, "उधर बिसू ने आगजनी के जो प्रमाण जुटाए थे, उन्हें लेकर बिंदा दिल्ली जाने वाला है, इधर सक्सेना ने सारे प्रमाण जुटा लिए हैं और तुम्हें चुनाव लड़ने की सूझ रही है। विधानसभा की जगह मुझे तो डर है कि कहीं तुम्हें जेल...।"

जोरावर चुनाव लड़ने का ख्याल तक छोड़ देता है और संपूर्णतः समर्पित होकर कह देता है कि– "हमारे साथ ऐसा–वैसा कुछ नहीं होना चाहिए, यह आपकी जिम्मेदारी है।" इस प्रकार वे सभी मोर्चे पर जीत हासिल करते हैं।

सुकुल बाबू महाभोज के एक अन्य विशिष्ट पात्र हैं जो कूट राजनीतिज्ञ के रूप में सामने आते हैं। 'बिसू की हत्या' उनके लिए भी एक अच्छा मुद्दा मिल गया है। अपनी

घिनौनी राजनीति को आदर्शवाद का जामा पहनाने में वे माहिर हैं। उसका यह एक नमूना देखिए–

"खड़ा हुआ हूं आप लोगों की लड़ाई लड़ने के लिए, बिसू की मौत का हिसाब पूछने के लिए। बात केवल बिसू की मौत की ही नहीं है... यह सब आप लोगों के जिंदा रहने का सवाल है। अपने पूरे हक के साथ जिंदा रहने का सवाल है। यह मौत कुछ हरिजनों की या एक बिसू की नहीं...आपके जिंदा रहने के हक की मौत है। आपका यह हक जरा से स्वार्थ के लिए गांव के धनी किसानों के हाथ बेच दिया गया और यही हक मुझे आपको वापस दिलवाना है। जुल्म ने आप लोगों के हौसले तोड़ दिए हैं इसलिए मैं लडूंगा आपकी यह लड़ाई। आखिरी दम तक लडूंगा।" सुकुल बाबु सरोहा से ही दो बार चुनाव जीतकर मुख्यमंत्री बने थे पर तीसरी बार हार गये थे और हारने के पश्चात उन्होंने राजनीति से संन्यास का ऐलान भी किया था, परंतु बिसू की मौत से एक बार फिर उनको मौका मिला। इस मौके को वे हाथ से नहीं जाने देना चाहते। वे कहते हैं..."चुनाव जीतने के लिए सारा जोर लगा दिया है सरकार ने, पर मैं पूछता हूं कि क्यों? मैं तो हारा हुआ आदमी हूं, मुझसे भला कैसा डर? जनता ने आप पर भरोसा कर कुर्सी पर बैठाया है और कुर्सी पर बैठ आपने जो कुछ किया होगा जनता के हित में ही होगा... इस सरकार ने आपकी सुख शांति, उन्नति और समृद्धि के लिए बड़े–बड़े आश्वासन दिए... हम अस्वस्थ हुए क्योंकि जनता के कल्याण में ही हमारा सुख है।"

बासठ वर्ष की उम्र में भी सुकुल बाबू सबको ठिकाने लगाकर टिके हुए थे। कोई और होता तो कब का दम तोड़ चुका होता। उन्हें लग रहा था कि "राजनीति गुंडागर्दी के निकट चली गई है। जिस देश में देव–तुल्य राजनेताओं की परंपरा रही हो, वहां राजनीति का ऐसा पतन! कभी–कभी मन में एकदम वैराग्य जाग जाता है, पर राजनीति में जहां तक अपने को धंसा लिया है, वहां से निकल भी तो नहीं सकते। निकलने का सीधा अर्थ है हार मान लेना। और जीवन में एक यही तो बात है जो वे कभी नहीं मान सकते। पिछले चुनाव में हारकर भी मन से वे उस हार को एक दिन के लिए भी स्वीकार नहीं कर सके। उस हार को जीत में बदलना ही है...जो भी हो...जैसे भी हो। कृतसंकल्प हैं उसके लिए।"

सुकुल बाबू चुनाव के वक्त रैली में आने वाले हर व्यक्ति के लिए व्यवस्था करते हैं। दो समय का खाना और पांच रुपया प्रति व्यक्ति तय हुआ है। बच्चों के लिए भी दो–दो रुपये दिये जाएंगे। सुकुल बाबू सारे दिन अपनी गोटियां ही बिठाते रहे। शाम के भाषण में कौन–कौन से मुद्दे उठाने हैं...कितने वोट खोने हैं और कितने पाने हैं? अभी तक हरिजनों के बूते पर ही चुनाव जीतते आये थे। पिछली बार इन लोगों ने आंख फेरी तो मुंह की खानी पड़ी। सुकुल बाबू को डर है कि जोरावर कहीं हुड़दंग न मचा दे। सारे गांव में उसका आतंक है क्योंकि वह सरपंच का भतीजा है। सुकुल बाबू लोगों को बहाकर ले जाने का अर्थ जानते है। बहाव की ताकत को भी जानते हैं। कुछ अरसे पहले जो आया था, वह बहाव ही तो था। बहाव नहीं बवंडर। एक बार जीत कर किसी तरह विधानसभा में पहुंच जाएं तो फिर वहां बवंडर का सिलसिला प्रारंभ करेंगे। जोड़–तोड़ करने की अपनी क्षमता पर काफी भरोसा है सुकुल बाबू को। अपने लोग जरा साथ दें तो बाएं हाथ का खेल है यह उनके लिए।

बिसू की हत्या होती है और उसका मित्र बिंदा हत्यारे के रूप में गिरफ्तार किया जाता है। सक्सेना, लोचन बाबू और बिंदा पूरी तरह उपेक्षित परित्यक्त फेंके–हारे हुए लोग हैं। बिंदा, सक्सेना और लोचन बाबू जैसे लोग व्यवस्था बदलने में विश्वास पैदा करते हैं। "मार डालो, मार डालो, तुमने बिसू को मार डाला, मुझे भी मार डालो, लेकिन देखना बिसू की इच्छा को कोई नहीं मार सकता।" यद्यपि इन पात्रों को उपन्यास में कम स्थान मिला है लेकिन इनके होने की आहट शुरू से अंत तक है।

3. कथोपकथन या संवाद

उपन्यास की कथावस्तु को आगे ले जाने में मदद देने वाला भाग है संवाद। संवाद पात्रों की उम्र, शिक्षा, प्रतिष्ठा आदि के अनुसार होना चाहिए। महाभोज के संवाद कथा विकास के साथ–साथ पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं का परिचय देने में पूरी तरह सफल रहे हैं। उपन्यास के संवाद संक्षिप्त, सरल, सरस, स्वाभाविक, रोचक एवं कौतूहलता आदि गुणों से युक्त हैं। महाभोज में मन्नूजी ने पात्रों के माध्यम से एवं वार्तालाप द्वारा समसामयिक राजनीतिक परिस्थितियों का सांकेतिक चित्रण किया है। कहीं–कहीं राजनीतिक वातावरण का प्रत्यक्ष रूप में विस्तृत चित्रण किया है। दा साहब और लखन के बीच बिसू की हत्या से राजनीतिक नफा–नुकसान के संबंध में वार्तालाप देखिए–

"ऐन मौके पर इस बेवकूफ ने बिसू को मरवा दिया। अब कुछ नहीं होने का"।

आवेश के मारे मुंह से थूक की छोटी–छोटी फुहारें छूटने लगीं लखन के, और सांवला चेहरा एकदम बैंगनी हो उठा।

"बहुत आवेश में हो। दोष तुम्हारा नहीं, उम्र का है।" जरा भी विचलित हुए बिना दा साहब ने कहा, "आवेश राजनीति का दुश्मन है। राजनीति में विवेक चाहिए। विवेक और धीरज।"

"पद पर बैठोगे तो पद की जिम्मेदारी स्वयं सब सिखा देगी।" पुलिस और कानून पर भी संवाद के माध्यम से करारा व्यंग्य मिलता है। बिंदा और सक्सेना के बीच हुए वार्तालाप में इसकी झलक मिलती है। देखिए–

"वह तो सो गया साहब, पर अपनी सारी बेचैनी मुझे दे गया। अब जब तक असली मुजरिम को पकड़वाने की उसकी आखिरी इच्छा को पूरी नहीं कर देता, मैं चैन से नहीं सो पाऊंगा..." पहली बार स्वर भीग गया बिंदा का।"

"क्या प्रमाण जुटाये थे उसने? अगर ऐसे प्रमाण हैं तो पुलिस को दो। वह नये सिरे से सारे मामले को..."

"नहीं, कुछ नहीं करेगी यहां की पुलिस, कभी कुछ नहीं करेगी। करना होता तो पहले ही नहीं करती!"

"कैसी बातें करते हो, बिना प्रमाण के कर ही क्या सकती है पुलिस?"

"क्यों, कानून और पुलिस के हाथ तो बहुत लम्बे होते हैं? केवल गरीबों को पकड़ने के लिए?"

"कानून के लिए अमीर–गरीब कुछ नहीं होता।" डपटते हुए सक्सेना ने कहा।

"झूठ बात है यह, सरासर झूठ।" एकदम चीख पड़ा बिंदा और उसकी आंखों के डोरों में फिर सुर्खी उभर आई, "सीने पर हाथ रखकर पूछिये अपने–आपसे कि कितनी सच्चाई है आपकी बात में।"

उपरोक्त संवाद में बिंदा की मानसिक अंतर्दशा का परिचय मिलता है। 'महाभोज' के संवाद कथा–विकास के साथ–साथ पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं का परिचय देने में पूर्ण सफल रहे हैं। महाभोज के संवाद संक्षिप्त, सरल, सरस, स्वाभाविक, रोचक एवं कौतूहलता आदि गुणों से युक्त हैं।

4. देशकाल या वातावरण

देशकाल का दूसरा नाम वातावरण भी है। देशकाल या वातावरण का चित्रण उपन्यास की वास्तविकता में वृद्धि करता है। सच कहा जाए तो उपन्यास में देशकाल या वातावरण का चित्रण उपन्यास में पृष्ठभूमि का निर्माण कर उसे वास्तविक रूप प्रदान करता है। वह पात्रों की तस्वीरों के लिए 'बैक–ग्राउन्ड' और 'फ्रेमवर्क' का कार्य करता है। इस बारे में डॉ. भोलानाथ का कहना है–"सामान्यतः तो सभी साहित्यिक विधाओं में पात्रों की भाषा का सहारा इस प्रकार लिया जाता है कि यदि पात्र मुसलमान हुआ तो उसके लिए हिन्दी की उस शैली का प्रयोग होता है जिसमें उर्दू में प्रयोग किये जाने वाले अरबी या फारसी शब्दों की अधिकता होती है। यदि पात्र अंग्रेजियत में डूबा हुआ ईसाई बनाम हिन्दू या हिन्दू बनाम ईसाई हुआ तो उसकी भाषा में हिन्दी के व्याकरण का विशेषकर क्रियाओं और कारकों का अशुद्ध प्रयोग करा दिया जाता है और उच्चारण भी कभी–कभी गलत करा दिया जाता है जैसे 'त' के स्थान पर 'ट'। 'महाभोज' का देहाती हीरा बहुत कुछ अपनी भाषा बोलता रहता है। बिसू की हत्या के बयान लिए जाते हैं तब हीरा एस. पी. सक्सेना से कहता है– "अरे, अब का बतई, सरकार...बस बचपना रहा हमरे बिसुआ का, ऊ सरकार, खेत में काम करै वाले मजूरन से कहत रहा कि इत्ती कम मजूरी पै काम ना करौ। मजूरी बढ़ावै की खातिर लड़ौ। बेगारौ न करौ...उधारी पै इत्ता–इत्ता सूदौ न देव। येई सब ऊ लोगन का बुरा लगत रहा, सरकार!" फिर एक क्षण रुककर बोला, "अउर ठीकौ है सरकार, मजूरन का भड़क जाए से खेतन मा नुकसान जउन होत रहा, ओकर कौन सहि है? बिना मजूरन का कहीं खेती हुई सकै है, सरकार?"

नन्दिनी मिश्र ने 'महाभोज' उपन्यास के देशकाल के संबंध में अपनी पुस्तक 'मन्नू भंडारी का उपन्यास साहित्य' में लिखा है–"सामान्यतया महाभोज को राजनीतिक उपन्यास कहा जाता है और इसमें समकालीन राजनीतिक परिस्थितियों का प्रसंगानुसार चित्रण भी किया गया है परंतु लेखिका ने राजनीतिक वातावरण का प्रत्यक्ष रूप से विस्तृत चित्रण न कर बहुधा पात्रों के चरित्र–चित्रण एवं वार्तालाप के मध्य ही समसामयिक राजनीतिक परिस्थितियों का सांकेतिक चित्रण किया है।"

डी.आई.जी. सिन्हा का आई.जी. के पद पर प्रोन्नत होने की खुशी में दी गई पार्टी से व्याप्त भ्रष्टाचार का दर्शन होता है– "लॉन में कनात और शामियाना लगा है और पेड़–पौधों पर रंग–बिरंगे फूल खिले हैं। श्री और श्रीमती सिन्हा बड़े उत्साह और आत्मीयता से स्वागत कर रहे हैं आने वालों का। बड़े–बड़े सरकारी अफसर, व्यापारी, वकील, डॉक्टर–कहना

चाहिए–क्रीम ऑफ द टाउन जुटा हुआ है इस समय सिन्हा साहब के लॉन में। वर्दीधारी बैरा ट्रे में सोफ्ट ड्रिंक्स लेकर घूम रहे हैं। यहां से वहां तक फैली, सजी–संवरी मोटी–छरहरी महिलाएं ही उपकृत कर रही हैं इन लोगों को। पुरुषों की भीड़ तो टुकड़ों–टुकड़ों में ऊपर–नीचे आ–जा रही है। यों महिलाओं के लिए भी वह क्षेत्र वर्जित कतई नहीं, पर कम ही है उनकी संख्या वहां। ऊपर के कमरे में बाकायदा बार बना हुआ है। शीवाज रीगल, ब्लैक डॉग से लेकर देशी रम तक कम–से–कम पच्चीस किस्म की शराबें रखी हुई हैं वहां सिन्हा साहब के दोनों पुत्र बड़ी शालीनता और मुस्तैदी के साथ सबको अपनी–अपनी पसंद का ड्रिंक डाल–डालकर दे रहे हैं। सिन्हा साहब शिष्टता के नाते हर किसी के पास दो–दो मिनट जाकर बधाई के बोझ से बोझिल होते जा रहे हैं। श्रीमती सिन्हा बिना किसी काम के ही अपने भारी–भरकम शरीर को बड़ी फुर्ती से इधर–उधर घुमाकर ऐसी व्यस्तता का आभास दे रही हैं कि लगता है जैसे इनके चलने से ही पार्टी चल रही है।"

इसके अलावा विभिन्न स्थान पर प्रसंगानुसार वातावरण का चित्रण हुआ है। लेखिका के इस उपन्यास में देश में व्याप्त भ्रष्टाचार के दर्शन जिस रूप में होते है वह अन्य किसी उपन्यास में शायद ही संभव हो। गांव की राजनीति को कितना ओछेपन में आज के राजनीतिज्ञों ने ढाल दिया है। गांव में हरिजनों के झोंपड़े जलाना, उनकी हत्या कराना और फिर पुनः नेताओं की कोरी सहानुभूति जिसमें मगरमच्छ के आनुप्रशासनिक भ्रष्टाचार का भांडा फोड़ दिया है।

5. भाषा–शैली

उपन्यास के विभिन्न तत्वों में भाषा शैली का विशिष्ट स्थान होता है। 'महाभोज' की भाषा शैली मुख्यतया बोलचाल की सरस एवं सुबोध शैली है। 'महाभोज' की भाषा शैली में प्रवाहात्मकता का सुंदर कलात्मक ढंग से चित्रण मन्नू जी ने किया है। जैसे–

"इस बार तो देख लिया सबने कि जनता की एकता में बड़ा जोर है, तूफानी जोर! तूफान आता है तो बड़े–बड़े पेड़ों को जड़ सहित उखाड़ फेंकता है। जनता एक होती है तो बड़े–बड़े राज्य उलट देती है। फिंका हुआ आदमी इस बात को सबसे ज्यादा महसूस करता है। कुर्सी पर बैठना है तो जनता में फूट डालो...कुर्सी बचानी है तो जनता में फूट डालो। जनता की एकता कुर्सी के लिए सबसे बड़ा खतरा है। समझ रहे हैं न आप लोग मेरी बात? आप लोग खुद...।"

महाभोज उपन्यास में व्यंग्य और प्रवाहमयी भाषा के दर्शन भी होते हैं। इस उपन्यास की भाषा साहित्यिक के साथ–साथ परिष्कृत और मधुर भी है। एक उदाहरण देखिए–

"यह तुम नहीं, तुम्हारा स्वार्थ बोल रहा है। स्वार्थ को इतनी छूट देना ठीक नहीं कि वह विवेक को ही खा जाए। अखबारों को तो आजाद रहना ही चाहिए। वे ही हमारे कामों का, हमारी बातों का असली दर्पण होते हैं। मेरा तो उसूल है कि दर्पण को धुंधला मत होने दो। हां, अपनी छवि देखने का साहस होना चाहिए आदमी में। बड़ी हिम्मत और बूता चाहिए उसके लिए। इससे जो कतराता है, वह दूसरे को नहीं, अपने को ही छलता है।"

महाभोज के पात्र छोटे से गांव से जुड़े हुए हैं इसलिए ग्रामीण भाषा शैली का प्रयोग भी हुआ है। पात्रों की मनःस्थिति के अनुसार भाषा का रूप बदलता है। बिसेसर के पिता हीरा की भाषा हताशा से भरी पूर्णतः ग्रामीण है। यथा–

"हम का कर सकें, सरकार! आंखिन से देखे बिना कइसे केहिका नाम लइलें? अउर अब नाम लेइके होइबे का करी, सरकार? हमार बिसू तो चला गया...हमार पाला–पोसा जवान लड़िका...अरे हमार बचवा..."

महाभोज उपन्यास की भाषा पात्रों के अनुकूल है। इस उपन्यास की मुख्य विशेषता जैसे पात्र वैसी भाषा है।

महाभोज में संस्कृत के अनेक शब्दों का प्रयोग किया गया है। यथा– आहार–व्यवहार, वर्ण, आश्वासन, चरित्र, दोष, होड़, अनन्त, धैर्य, सौम्यता, भव्य, संकल्प–विकल्प, आत्मा, विकृत, दृष्टि, आत्मग्लानि, व्यवधान, संयम, मुद्रा, विधि, विधान, विहीन, सम्मिलित, सम्मान, स्वामी, स्वागत, स्वस्थ, हाहाकार इत्यादि।

खड़ी बोली में लिखा गया यह उपन्यास अरबी–फारसी के शब्दों से भरा पड़ा है। जैसे– पहला, सच्ची, धुएं, सांप, बादल, धूल, दनादन, राख, दर्दनाक, लावारिस, लाश, मुश्किल, बेअसर, ज्यादा, दूरी, आदमी, कबाब, मौका, तहकीकात, जहरीला, अखबार–नवीस, चेहरा, हादसा, हंगामा, मुजरिम, सजा, मजबूर, हस्ती, मामला, इस्तीफा, आसार, हाजिर, कागज, सिलसिला, खुद, बाकायदा, ऐलान, महसूस, अवसर, उम्र, शुरू, एकदम, मौत, कोना, खलबली, कच्ची, अहमियत, जिन्दगी, शायद, खतम, ढेर, गला, बिलबिलाना, बड़ा, माथा, बयान, असली, नफरत, गुस्सा, हवा, साल, ख्याल, आराम, आग, खबर, गरीब, सरहद, खुमारी इत्यादि।

महाभोज में पात्रों के अनुकूल अंग्रेजी के शब्दों के साथ–साथ पूरे–के–पूरे वाक्यों का भी निःसंकोच प्रयोग किया गया है जैसे– क्रीम ऑफ द टाउन, 'आइ वॉन्ट टू ग्रोथ इट', 'इट्स ए क्लीयर केस ऑफ सुसाइड', 'एक्सक्यूज मी सर', 'नथिंग वेरी स्पेशल...नथिंग रोमांटिक अबाउट हिम', 'आई मस्ट कांग्रैच्यूलेट यू, सक्सेना!' "समथिंग वेरी इम्पोर्टेण्ट, दैन वी विल कन्सिडर!" इत्यादि। अंग्रेजी के शब्दों में– 'यस्सर', रिपोर्ट, फाइल, क्रिमिनल साइकॉलॉजी, 'थैंक्यू सर', स्पेशल, स्कॉच, सेकण्ड क्लास, ऑर्डर, पार्टी, सस्पेंशन, ड्यूटी, फोन, इमरजेंसी, प्रमोट, वोट, प्रमोशन, डायरी, एम्बेसेडर, ड्राइवर, कार्ड, हेडलाइन, राउण्ड, स्टार्ट, पैग, इन्क्वायरी, ब्लैंक चैक, सेलिब्रेट, ब्लॉक्स, स्टेप बाइ स्टेप, पोर्टफोलियो, कूलर, फार्म, माइक, ट्रैक्टर, फण्ड, बजट, जीप, रेडियो, सैल्यूट, रिसर्च प्रोजेक्ट, क्लास स्ट्रगल, कास्ट स्ट्रगल, सेन्सिटिव, एक्सट्रा सेन्सिटिव, मिस्टर, हिज प्रापर सेंसिज, इन्वॉल्व, स्टेशन, स्टूडेण्ट, रेस्ट, डायबिटीज, लेफ्टराइट, ह्वील, सॉफ्ट, ड्रिंक्स, ब्लैक डॉग, शीवाज रीगल, रम, रिजर्व आइटम, मिसिज, इन्कमटैक्स कमिश्नर, रिजर्व, रुटीन, परमिट, एडवर्टाइजिंग कंपनी इत्यादि।

6. उद्देश्य

साहित्य जीवन की व्याख्या है और यह कार्य उपन्यास मनोरंजन के माध्यम से बड़ी सुगमता से करता है। उपन्यास के कथानक की परिस्थितियों अथवा चारित्रिक विशेषताओं में

कोई–न–कोई विशिष्ट जीवन दृष्टि पाई जाती है। उपन्यासकार कलाकार होने के अतिरिक्त सामाजिक प्राणी भी होता है। जब वह किसी कथा को उपन्यास के रूप में कहने का निश्चय करता है, तभी उसके मन में कथासूत्र के साथ जीवन दृष्टि मूर्त होने लगती है, जो उसने अपने सांसारिक जीवन के अनुभवस्वरूप उपलब्ध की है। डॉ. श्रीनारायण अग्निहोत्री के अनुसार– "महान उपन्यासकार जीवन के चिन्तक और पर्यवेक्षक दोनों ही रहे हैं और उनका चरित्र–विषयक ज्ञान, उद्देश्य एवं वासना में बैठने वाली उनकी अंतर्दृष्टि, चिरस्थायी तथ्यों एवं अनुभव की समस्याएं और उसकी परिपक्व बुद्धि ये सब मिलकर उनके संसार–विषयक दृष्टिकोण को एक ऐसा नैतिक महत्व प्रदान करते हैं जिसकी विचारवान पाठक उपेक्षा नहीं कर सकता।"

उपन्यास लिखने के कई उद्देश्य होते हैं। कथानक के आरंभ में बिसेसर उर्फ बिसू की लाश को लावारिश बताना, गिद्धों के द्वारा नोंच–नोंच कर खाना तथा अन्य जितनी भी घटनाओं का उल्लेख किया गया है वह इस उद्देश्य की पूर्ति करता है कि वर्तमान राजनीति का अपना कोई नैतिक अस्तित्व नहीं है। इसमें अनेक विसंगतियां समाहित हैं। उपन्यास में उपचुनाव के दौरान गांव का माहौल महाभोज जैसा बन जाता है। हर व्यक्ति अधिक से अधिक लाभ उठाना चाहता है। राजनेता गांव के लोगों के साथ बिसेसर की मौत और हरिजन बस्ती की अग्नि दुर्घटना तथा ग्रामीण जनजीवन की अस्त–व्यस्तता के प्रति हमदर्दी दिखाकर जनमत को अपने पक्ष में करने लगे हैं। वोट बैंक को बढ़ाने के वास्ते राजनेता अपने–अपने तरीकों से दाव–पेंच खेल रहे हैं।

राजनीति के साथ–साथ अन्यत्र फैला भ्रष्टाचार एवं घूसखोरी आदि बुराइयों को उजागर करने के अलावा महाभोज उपन्यास में शिक्षा के ऊपर बल देना भी लेखिका का एक अन्य उद्देश्य लगता है। बिंदा और बिसेसर दलितों को शिक्षित करने के लिए अनेक प्रयास करते हैं। उनका नारा है 'शिक्षित बनो', 'स्वाभिमानी बनो', बिना शिक्षा के कोई परिवर्तन संभव नहीं है। बिसेसर जब शहर से शिक्षित होकर गांव में लौटता है तो दलितों को शिक्षित करने के लिए स्कूल चलाता है। उनके घरों में जाकर स्वयं पढ़ाता है।

मन्नू जी का एक अन्य उद्देश्य प्रशासनिक व्यवस्था का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करना भी हो सकता है। बिसू की मौत की जांच के लिए एस.पी. सक्सेना को भेजा जाता है। सक्सेना जांच की शुरुआत में समझ जाते हैं कि यह आत्महत्या का नहीं, वरन् हत्या का मामला है। परंतु डी.आई.जी. ने पहले से ही रिपोर्ट तैयार कर ली कि बिसू ने आत्महत्या की है। इस बीच दा साहब डी.आई.जी. को अपने बंगले पर बुलाकर संदेह जताते हैं कि बिंदा ने बिसू की हत्या की है। इस प्रकार हत्या के जुर्म में बिंदा को गिरफ्तार कर लिया जाता है और डी.आई.जी. सिन्हा को आई.जी. बना दिया जाता है तथा सक्सेना को सस्पेंड कर दिया जाता है। सत्तारूढ़ दल और विरोधी दल दोनों ही अपनी–अपनी विजय की उम्मीद करते हैं तथा बिसू की मौत को लोग भूल जाते हैं।

निःसंदेह महाभोज उपन्यास का उद्देश्य बहुमुखी है। यह उपन्यास राजनीतिक चेतना से मण्डित और वर्तमान राजनीति का सच्चा दस्तावेज है। उपन्यास में गरीब, खेतिहर मजदूरों और गांव की अधिकांश जनता के निर्मम शोषण पर तुली राजनीति के दोगले

अगुओं, उनके पिट्ठुओं और चमचों का वास्तविक एवं सटीक चित्रण हुआ है। विश्वास से कहा जा सकता है कि "देश के अभावग्रस्त वर्गों को सदा से त्रस्त करते आये घिनौने आतंक से परदा उठाने वाला यह पहला साहसपूर्ण उपन्यास है। गरीबों के लिए झूठे आंसू बहाने में निपुण मगरमच्छनुमों नेताओं द्वारा लगाये गये खोखले नारों के पीछे के कुत्सित षड्यंत्रों और दमघोंटू स्थितियों की निर्भीक चीड़फाड़ इसमें की गई है।

2.5 सारांश

राजनीति के घिनौने रूप का ब्यौरा प्रस्तुत करना ही मन्नू भंडारी का मंतव्य नहीं है बल्कि चुनाव के दौरान हरिजन युवक बिसू की मौत, भूत और वर्तमान राजनेताओं के लिए 'महाभोज' बन जाती है। उसी घटना को लेकर राजनीतिक हथकंडों का प्रयोग करके भोले–भाले लोगों को कैसे गुमराह किया जाता है... इस सिलसिले में नेताओं के भोज्य बने सभी कारणों को मन्नू भंडारी ने सामने रखा है।

'महाभोज' उपन्यास में स्वतंत्र भारत के राजनीतिक माहौल की सच्चाई का ब्यौरा प्रस्तुत किया गया है। यह उपन्यास 1976 से 1979 के मध्य लिखा गया है। सन् 1975 में श्रीमती इंदिरा गांधी के शासनकाल में आपातकाल की घोषणा कर दी गई। इस दौरान जनता पर अनेक अत्याचार हुए। उसके बाद जनता पार्टी की सरकार बन गई लेकिन भ्रष्टाचार और शोषण का सिलसिला बना रहा।

सरोहा गांव में हरिजनों की झोपड़ियों को आग लगाई जाती है। उनकी झोपड़ियां राख में बदल जाती हैं और आदमी कबाब में। लेकिन रिपोर्ट के लिए न पुलिस आती है न नेता। लेकिन चुनाव के डेढ़ महीने पहले हरिजन युवक बिसेसर की मौत राजनीतिक दलों के लिए अपने बेटे की मौत से भी ज्यादा तिलमिला देती है। डॉ. जगन्नाथ चौधरी के शब्दों में, "बिसू की मौत राजनीति के अखाड़े में खेलने वालों के लिए मानो गिद्धों के लिए 'महाभोज' का जुगाड़ कर गई।"

प्रस्तुत उपन्यास 'महाभोज' में लेखिका ने जनता को झूठे आवश्वासन दिलाकर, उन्हें बहकाकर, फुसलाकर सत्ता हथियाने के लिए जनता को गुमराह करने वाले राजनेताओं की पोल खोली है। विधानसभा के उप चुनाव में जीतने के लिए दा साहब और सुकुल बाबू जिन हथकंडों का इस्तेमाल करते हैं, वे हथकंडे ही आज समस्याएं बनकर खड़े हो जाते हैं। उनकी हर चाल भ्रष्टाचार को बढ़ावा देती है।

मन्नू भंडारी ने बड़ी निर्भीकता एवं साहस के साथ राजनीति को सत्ता, भोग विलास, धन की प्राप्ति का अखाड़ा मानने वाले मंत्रियों को नग्न करके जनता के सामने प्रस्तुत किया है। वास्तव में इन स्वार्थी, पद के लालची, भ्रष्टाचारी और राष्ट्र विरोधी मंत्रियों को कौन–सी सजा दी जा सकती है! लेखिका ने देशवासियों के सामने चुनौती के रूप में प्रश्न उपस्थित किए हैं।

विपक्षी पार्टी के नेता सुकुल बाबू हरिजनों के हमदर्द बनकर इनके वोट प्राप्त करने के लिए हरिजन–सवर्ण के भेद की दीवार को और ऊंची कर रहे हैं। दा साहब को सवर्णों

का हिमायती बताकर हरिजनों व दलितों को भड़का रहे हैं। दा साहब कहते हैं– "दुहाई गरीबों की सब देते हैं, पर उनके हित की बात कोई नहीं सोचता। जनता को बांटकर रखो. .. कभी जात की दीवारें खींचकर, तो कभी वर्ग की दीवारें खींचकर! जनता का बंटा–बिखरापन ही तो स्वार्थी राजनेताओं की शक्ति का स्रोत है।"

'महाभोज' में मन्नू भंडारी ने राजनीतिक क्षेत्र की लगभग सभी समस्याओं यथा उनकी विसंगतियों एवं विकृतियों को उजागर किया है। इस प्रकार महाभोज में पूंजीवादी शक्तियों के विरुद्ध आवाज बुलंद करने वाला और शोषितों में क्रांति की भावना पैदा करने वाला हरिजन युवक बिसेसर तथा मुख्यमंत्री को मुंहतोड़ जवाब देने वाला बिंदा क्रांति की धधकती चिंगारियां हैं। "तीस साल से आप लोगों की बातें ही तो सुनते–समझते आ रहे हैं। क्या हुआ आज तक? पेट भरने के लिए अन्न नहीं, आपकी बातें... खाली... बातें।" लेखिका की मांग है– बिंदा की आवाज को बुलंद करने की, बिसू की धधकती राख की चिंगारियां बनकर सुलगने की तथा ईमानदार पुलिस अफसर सक्सेना का हौसला बढ़ाने की। यही इस उपन्यास की उपलब्धि है।

हमारी न्याय की देवी सचमुच ही अंधी बन गई है, अगर वह आंखें खोलकर देख पाती तो न्याय व्यवस्था की यह हालत न होती जो आज हो रही है। वैसे न्याय तथा कानून व्यवस्था भ्रष्ट नहीं होती लेकिन हमारे ही समाज के कुछ स्वार्थी लोगों ने उसे भ्रष्ट किया है। पूंजीवादी पहरेदारों ने धन, सत्ता और शक्तियों के बल पर उसे खरीद लिया है। शासक और पुलिस के गठबंधन में बेचारा गरीब व निर्दोष बर्बाद हो जाता है। मन्नू भंडारी ने 'महाभोज' उपन्यास में इन समस्त विकृतियों को प्रस्तुत करके भ्रष्ट व्यवस्था पर कुठाराघात किया है।

भ्रष्ट राजनीति ने समाचार पत्रों तथा जल संचार के अन्य साधनों को भी प्रभावित किया है। महाभोज में 'मशाल' के संपादक दत्ता बाबू को सत्तारूढ़ पार्टी के नेता दा साहब सरकारी विज्ञापन देने और कागज का कोटा बढ़ाने का लालच दिखाते हैं तो वह रातोंरात अखबार का रूप ही बदल देता है। 'मशाल' में वही समाचार प्रकाशित होते हैं जो दा साहब को सत्तारूढ़ करने में सहायक हो।

उन्नीसवीं शताब्दी में ज्योतिबा फुले, सावित्री बाई, डॉ. भीमराव अंबेडकर आदि ने अछूतों व दलितों के उद्धार के लिए विशेष कार्य किया। उनके द्वारा किए गए कार्यों से दलितों में जागृति आई और वे अपने अधिकारों एवं समाज में हुए अपने अपमान के लिए न्याय मांगने के प्रति सचेत हुए। महात्मा गांधी ने भी हरिजनों के उद्धार के लिए काफी संघर्ष किया। संत रैदास पहले दलित और दलित चेतना के कवि माने जाते हैं जिन्होंने वर्ण व्यवस्था के साथ संघर्ष किया। स्वतंत्रता से पहले और बाद में भी हिन्दी उपन्यास साहित्य में प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद, उग्र, निराला, रांगेय राघव, नागार्जुन आदि लेखकों ने अपने उपन्यासों में दलित समाज की समस्याओं को उठाकर दलितों में चेतना जगाने का कार्य किया है। मन्नू भंडारी ने 'महाभोज' लिखकर उपन्यासों को ऐसे स्थान पर पहुंचाया जहां बहुत कम लेखकों की पहुंच होती है।

दलित चेतना का केंद्रबिंदु आठवीं सदी के उपन्यासों से ही प्रतिबिंबित होता है। विवेचकों की दृष्टि में महाभोज राजनीतिक उपन्यास है, परंतु यह उपन्यास दलित जीवन का मार्मिक व यथार्थ चित्रण भी करता है। यह राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक समस्याओं के साथ दलित वर्ग की समस्याओं को भी व्यक्त करता है। लेखिका ने सरोहा गांव के एक दलित युवक बिसेसर की जमींदार जोरावर द्वारा की गई हत्या की पृष्ठभूमि में एम.एल.ए. का चुनाव और इस चुनाव में राजनीतिक जीवन में आई मूल्यहीनता तथा अवसरवादी मानसिकता को प्रस्तुत किया है।

'महाभोज' में जहां एक ओर दलितों के उत्थान के लिए लड़ने वाले बिसेसर और बिंदा हैं तो दूसरी ओर हीरा जैसे पुरानी पीढ़ी के लोग जो समझौते की परंपरा सिर झुकाकर, हाथ जोड़कर निभाते हैं। गरीबी और शोषण के साये में जीने वाले वे मनुष्य नहीं केवल वोटर बनकर रह गए हैं। सरकारी नियम के अनुसार मजदूरी का प्रश्न तो अलग रहा, यदि वे जोरावर सिंह जैसे साहूकार व जमींदार के कहने से काम नहीं करते तो उन्हें प्रताड़ित किया जाता है, उनके घर जला दिए जाते हैं। इनके विरुद्ध जो भी गवाही देता है तो उसके साथ भी वैसा ही सुलूक किया जाता है जो अन्य दलितों के साथ किया जाता है। पुलिस भी दलितों एवं पीड़ितों को परेशान करती है।

मन्नू जी का एक अन्य उद्देश्य प्रशासनिक व्यवस्था का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करना भी हो सकता है। बिसू की मौत की जांच के लिए एस.पी. सक्सेना को भेजा जाता है। सक्सेना जांच की शुरुआत में समझ जाते हैं कि यह आत्महत्या का नहीं, वरन् हत्या का मामला है। परंतु डी.आई.जी. ने पहले से ही रिपोर्ट तैयार कर ली कि बिसू ने आत्महत्या की है। इस बीच दा साहब डी.आई.जी. को अपने बंगले पर बुलाकर संदेह जताते हैं कि बिंदा ने बिसू की हत्या की है। इस प्रकार हत्या के जुर्म में बिंदा को गिरफ्तार कर लिया जाता है और डी.आई.जी. सिन्हा को आई.जी. बना दिया जाता है तथा सक्सेना को सस्पेंड कर दिया जाता है। सत्तारूढ़ दल और विरोधी दल दोनों ही अपनी–अपनी विजय की उम्मीद करते हैं तथा बिसू की मौत को लोग भूल जाते हैं।

2.6 मुख्य शब्दावली

- **कौतूहल** : अचंभा, उत्सुकता।
- **घूसखोरी** : रिश्वत लेना।
- **वार्तालाप** : बातचीत।
- **देहाती** : गांव का।
- **अरसा** : समय।
- **दुर्बलता** : कमजोरी।
- **प्रलोभन** : लालच।
- **तहकीकात** : खोजबीन।

- **खपाना** : समाप्त (समाहित) करना।
- **प्रतिस्पर्धा** : मुकाबला।

2.7 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1. अलगाव कहानी के कथ्य को।
2. स्वतंत्र भारत के राजनीतिक माहौल की सच्चाई।
3. (क) सही, (ख) गलत।
4. सरोहा गांव की।
5. दो बिंदु– शिक्षित और आधुनिक चेतना से संपन्न बिंदा और बिसेसर।
6. (क) गलत, (ख) सही
7. छह तत्व।
8. नौ भागों में।
9. (क) सही, (ख) गलत।

2.8 अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. मन्नू भंडारी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।
2. 'महाभोज' उपन्यास किस पृष्ठभूमि पर आधारित है? विवेचना कीजिए।
3. 'महाभोज' उपन्यास की विशेषताएं बताइए।
4. 'महाभोज' उपन्यास का उद्देश्य स्पष्ट कीजिए।
5. उपन्यास के प्रमुख पात्रों का चरित्र–चित्रण कीजिए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. 'महाभोज' उपन्यास में मौजूद राजनीतिक चेतना का विश्लेषण कीजिए।
2. मन्नू भंडारी ने 'महाभोज' उपन्यास में किन तथ्यों को आधार बनाया है, विस्तार से वर्णन कीजिए।
3. 'महाभोज' उपन्यास में प्रयुक्त दलित चेतना का विश्लेषण कीजिए।
4. औपन्यासिक तत्वों के आधार पर 'महाभोज' उपन्यास की समीक्षा कीजिए।
5. मन्नू भंडारी ने महाभोज उपन्यास में जिन प्रसंगों का यथार्थसम्मत चित्रण किया है, उनको विस्तारपूर्वक समझाइए।

2.9 आप ये भी पढ़ सकते हैं

- मन्नू भंडारी, *महाभोज,* राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
- डॉ. ममता शुक्ल, *मन्नू भंडारी के कथा–साहित्य का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन,* जवाहर पुस्तकालय, मथुरा।
- प्रो. किशोर गिरडकर, *मन्नू भंडारी का कथा–साहित्य,* विश्वभारती प्रकाशन, नागपुर।
- प्रो. गुलाबराव हाडे, *मन्नू भंडारी का कथा साहित्य,* विद्या विहार प्रकाशन, कानपुर।
- नंदिनी मिश्र, *मन्नू भंडारी का उपन्यास साहित्य,* हिंदी साहित्य भंडार, लखनऊ।

इकाई 3 : नाटक (कबिरा खड़ा बाजार में : भीष्म साहनी) – II

3.0 परिचय

संघर्षमय सामाजिक चेतना के सर्जक भीष्म साहनी का जन्म 8 अगस्त, 1915 को रावलपिंडी (अब पाकिस्तान) में हुआ था। विभाजन से पूर्व आप अवैतनिक शिक्षक एवं व्यवसायी थे। विभाजन के उपरांत भारत आकर सृजन कार्य आरंभ किया। भारतीय जन नाट्य संघ (इप्टा) से जुड़ने के बाद इन्होंने अंबाला व अमृतसर में अध्यापन कार्य किया और फिर दिल्ली विश्वविद्यालय में साहित्य के प्रोफेसर बने।

हिन्दी साहित्य में मार्क्सवादी दृष्टिकोण के पक्षधर, मानवीय मूल्यों के हिमायती एवं प्रेमचंद की परंपरा के अग्रणी लेखक आदि के रूप में चर्चित भीष्म साहनी 1957 से 1963 तक फॉरेन लैंग्वेज पब्लिकेशन हाउस मास्को में अनुवादक की भूमिका में रहे जहां उन्होंने रूसी साहित्यकारों की कृतियों का हिन्दी रूपांतर किया। वर्ष 1965 से 1967 तक 'नई कहानियां' नामक पत्रिका का संपादन किया। भीष्म साहनी प्रगतिशील लेखक संघ एवं एफ्रो–एशियायी लेखक संघ से संबद्ध रहने के अलावा 1993 से 1997 तक साहित्य अकादमी के कार्यकारी समिति के सदस्य भी रहे। वर्ष 1975 में उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार, पंजाब सरकार का शिरोमणि लेखक अवार्ड, 1980 में एफ्रो–एशियन राइटर्स एसोसिएशन का लोट्स अवार्ड, 1983 में सोवियत लैंड नेहरू अवार्ड तथा 1998 में भारत सरकार के पद्मभूषण सम्मान से अलंकृत किया गया। तमस, हानूश, कबिरा खड़ा बजार में, माधवी, भाग्य रेखा, निशाचर, कुन्तो, झरोखे, बसन्ती जैसी कालजयी कृतियां भीष्म साहनी ने हिन्दी साहित्य संसार को सौंपी। 11 जुलाई, 2003 को आपका देहावसान हो गया।

'कबिरा खड़ा बजार में' भीष्म साहनी की लोकप्रिय नाट्य कृति है, जो कबीर के व्यक्तित्व पर आधारित है। दृढ़, उग्र, बेपरवाह, मस्तमौला कबीर का व्यक्तित्व सदियों से भारतीय जनमानस को प्रेरित–प्रवाहित करता रहा है। अपने समय की तानाशाही, धर्मांधता, बाह्याडंबर और मिथ्या धारणाओं के खिलाफ अनथक संघर्ष करने वाला यह किरदार हमारे बीच आज भी स्थायी व प्रेरक मूल्य की भांति स्थापित है। उनकी निर्मम अक्खड़ता, फक्कड़पन युक्त मस्ती व युगप्रवर्तक सोच साहित्यिक–सामाजिक जड़ता को तोड़ने वाली थी जिसके जरिए उन्होंने तमाम मोर्चों पर संघर्ष किया। भीष्म साहनी की यह नाट्य कृति मध्ययुगीन परिवेश में संघर्षरत कबीर को उनके पारिवारिक–सामाजिक संघर्षों सहित आज भी प्रासंगिक बनाती है।

इस इकाई में हम भीष्म साहनी की नाट्य कला पर दृष्टिपात करते हुए 'कबिरा खड़ा बजार में' का प्रतिपाद्य स्पष्ट करेंगे और साथ ही इस नाट्य कृति का समीक्षात्मक अध्ययन भी करेंगे।

3.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- भीष्म साहनी की नाट्य कला को समझ पाएंगे;
- 'कबिरा खड़ा बजार में' का प्रतिपाद्य स्पष्ट कर पाएंगे;
- 'कबिरा खड़ा बजार में' की समीक्षात्मक विवेचना कर पाएंगे।

3.3 'कबिरा खड़ा बजार में' का प्रतिपाद्य

'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक की मूल संवेदना कबीर कालीन भी है और समकालीन भी। मध्ययुगीन भारतीय इतिहास के परिवेश में संघर्षरत चेतना के प्रतिनिधि कबीर के जरिए यह नाट्य कृति तत्कालीन धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक संदर्भों को आज भी प्रासंगिक बनाती है। यह बताने की आवश्यकता नहीं कि समकालीन संदर्भों में जाति, वर्ण, धर्म, संप्रदाय एवं दलगत तनाव व विषमताग्रस्त अंतर्विरोधों के बीच कबीर आकांक्षित मानव धर्म की महती आवश्यकता है। उस मानव धर्म की जिसके मूल में मनुष्य मात्र के प्रति समानता का भाव, प्रेमयुक्त व शोषण–विषमता से मुक्त सह–अस्तित्व की प्रेरणा हो।

धर्म और सत्ता की प्रवृत्तियां मिथ्याडंबरों पर चोट करने वाले मानवीय मूल्यों के अन्वेषकों को हर युग में प्रताड़ित करती रही हैं। कबीर को भी धर्म व सत्ता की सांप्रदायिक, शोषक एवं अधिनायकवादी शक्तियों के खिलाफ संघर्ष करना पड़ा। अपनी आंतरिक प्रखरता के साथ कबीर का दृढ़ निश्चयी मन इस संघर्ष में डटा रहा। भारतीय इतिहास के मध्ययुग में पांच सौ साल पहले व्याप्त धर्माडंबरों, सामाजिक कुरीतियों, मिथ्या धारणाओं, जाति–धर्म के आधार पर विभाजित सामाजिक अंतर्विरोधों के खिलाफ अथक संघर्ष करने वाला दृढ़ व निर्भीक किरदार कबीर आज भी एक स्थाई और प्रेरक मूल्य के रूप में जनमानस को आंदोलित करता है। ऐसा इसलिए है, क्योंकि कबीरयुगीन सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक जीवन में व्याप्त संकीर्णताएं, मजहबी, धर्मांधता, सामाजिक विकृतियां, सियासी तानाशाही और निम्न वर्ग के शोषण की प्रवृत्तियां आज की भी प्रत्यक्ष स्थितियां हैं। कबीर के युग ने जो भोगा, जिनके विरुद्ध कबीर ने लड़ाई लड़ी; वे सभी सामाजिक समस्याएं तथा

जाति–धर्म–संप्रदाय आधारित पारस्परिक अंतर्विरोध, विषमता और शोषण से ग्रस्त मानवीय प्रश्न आज भी विद्यमान हैं।

कबीर का किसी ऐसे दीन–धर्म में विश्वास नहीं था जो मनुष्य को आपस में पृथक करता हो, परस्पर दुश्मन बनाता हो। हिन्दू और मुसलमान में भेद करने वाले मजहब का त्याग कर देने वाले कबीर इंसानियत के विश्वासी हैं, मानव को केवल इन्सान के रूप में देखने के अभिप्सु। 'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक में भीष्म साहनी ने अन्याय, शोषण और बाह्याडंबरों के विरुद्ध संघर्षरत मध्यकालीन संत कवि कबीर के तेजस्वी व्यक्तित्व का चित्रण किया है जो अपनी संदर्भ सापेक्षता में वर्तमान में संप्रदायवाद, प्रांतीयता, धार्मिक–सामाजिक संकीर्णताओं, जातिवाद आदि आधारों पर लड़ते–भिड़ते समाज की विषमताओं की प्रतिरोधी शक्तियों का मिथकीय संकेत देकर अपनी युगीन सार्थकता को प्रमाणित करता है।

'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक के प्रतिपाद्य को निम्नांकित बिंदुओं के तहत समझा जा सकता है–

• कबीर को पारंपरिक दृष्टिकोण से न देखकर सामयिक यथार्थता में देखना

छोटे–बड़े कुल मिलाकर नौ दृश्यों वाला नाटक 'कबिरा खड़ा बजार में' तीन अंकीय है। कबीरकालीन परिवेश और नाटककार द्वारा निर्मित पात्रानुकूल दृश्यों–चरित्रों से युक्त संवाद–योजना इस नाटक की पृष्ठभूमि निर्मित करती है। कबीर काल में व्याप्त आडंबर, पाखंड, दंभ, शोषण, संघर्ष की नाटक के नायक कबीर ने कटु आलोचना की है।

सहज और विचारणीय सवाल यह उठता है कि आखिर हिन्दी साहित्य जगत में कबीर को लेकर इतने नाटक क्यों हैं? तुलसी, सूर या अन्यों पर क्यों नहीं? तुलसी तो रामलीला मंडली के निर्माता–भ्रमणशील लोकनाट्य सर्जक थे। कबीर पर नाट्य सृजन का कारण यह है कि सामाजिक वैषम्य, धार्मिक अंधत्व, सियासती षड्यंत्र के विरुद्ध कबीर की दो–टूक, मुंहफट वाणी ने एक क्रांति पैदा कर दी थी। मध्यकालीन उस दौर में हिन्दू–मुस्लिम दोनों धर्मों की विकृत मान्यताओं को चुनौती देना भी सरल काम नहीं था।

कबीर में जो तेवर है, जो प्रत्यक्ष जीवंतता है, जो जनवाणी है– वह नाट्य लेखन और रंगमंच दोनों को अभिप्रेरित करती है। हिन्दी साहित्य में कबीर का व्यक्तित्व संघर्ष, विद्रोह, पौरुष, यथार्थ की पक्षधरता का और मानवीय मूल्यों की स्थापना का क्रांतिकारी व्यक्तित्व रहा है। एक ऐसा व्यक्तित्व जिसने मानवीय संवेदना, समानता आधारित दर्शन एवं प्रगतिशील चेतना को प्रतिष्ठित किया और निर्भीकता से जटिलतम प्राचीन समस्याओं, रूढ़ियों, अंधविश्वासों, पाखंड, सांप्रदायिकता का खुला विरोध किया। संभवतः इसीलिए कबीर कई नाटकों के आधार–स्तंभ बने।

भीष्म साहनी ने 'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक में कबीर को पारंपरिक संत के दृष्टिकोण से परे तात्कालिक यथार्थता के दर्पण में देखने का यत्न किया है। फलतः इस नाटक में नायक एक संत अथवा गायक की चारित्रिक भव्यता के बदले समग्र यथार्थ वाली स्थितियों से जूझता दिखाई देता है। नाटक को आम नागरिक की वेदना का प्रतिपादक भी कहा जा सकता है। यह निम्नवर्गीय जीवन व सामाजिक दरज्जों से निष्पन्न है, सत्ता की दमनवृत्ति से निष्पन्न है और समाज के हर स्तर के बाह्याचार से भी। इस प्रकार वेदनाएं

नाटक में छा जाती है और कबीर की संतमयी दिव्यता–भव्यता पीछे छूट जाती है। अंधविश्वास, तानाशाही वृत्ति, बाह्याचार, धर्मांधताजनित जड़ता तथा मिथ्या धारणाओं के खिलाफ विद्रोह करता कबीर का चरित्र नाटक में बहु–स्तरीय मानवीय संवेदनाओं की सृष्टि करता है। भीष्म साहनी ने कबीर के विद्रोहात्मक रवैए को अपेक्षाकृत अल्प मात्रा में बताकर, संवेदनाओं को अधिक व्यापक रूप में उकेरा है।

ईश्वर और सृष्टि विषयक सत्य का साक्षात्कारकर्ता कबीर धर्म के रखवालों की अंध भक्ति को चरमसीमा तक उघाड़ता है। प्रसंगवश होने वाली कोतवाल (मुसलमान) और कायस्थ (हिन्दू) की वार्ता के दौरान कोतवाल कहता है– "सुना है हिन्दू देवताओं की मूर्ति मुसलमान बनाते हैं।" कायस्थ अपना मत देता है– "जी! पर स्थापित करने से पहले उन पर गंगाजल छिड़ककर उन्हें पवित्र कर लिया जाता है। प्राण–प्रतिष्ठा तो बाद में होती है। प्राण–प्रतिष्ठा के बाद मूर्ति देवता बन जाती है, उसके पहले तो पत्थर है।"

घटनाक्रम के अनुसार इस दौरान हाथ में बड़ा–सा चाबुक धारण किए एक जटाधारी साधु उपस्थित होता है। निकलने वाली धार्मिक झांकी की सवारी से पहले उपस्थित हुए उस जटाधारी के बारे में जब कोतवाल पूछता है तब कायस्थ कहता है– "यह नीच जात के लोगों को रास्ते से हटाने के लिए मालिक। झांकी पर किसी कमीन का साया नहीं पड़ना चाहिए।"

घटना स्थल का उक्त संवाद धर्म के रखवालों–ठेकेदारों का अंधविश्वास प्रत्यक्ष करता है। मुस्लिम द्वारा गढ़ी मूर्ति को जल छिड़ककर पवित्र करना, जिसे खुद का प्राण 'प्राणेश्वर' से मिला है, जो किसी मृत इंसान में प्राण नहीं डाल सकता उसके द्वारा मूर्ति में प्राण–प्रतिष्ठा कर उसको देवता–भगवान बना देने की बात करना, ऐसी सारी कथित पवित्रताओं, क्षमताओं के बीच नीच और कमीन जाति के लोगों को दूर रखना; वह भी निर्मम अत्याचार करके। इस धार्मिक–सामाजिक अंधत्व की पराकाष्ठा तो तब होती है जब जनता भी इन्हें सहज स्वीकार लेती है।

अमूमन स्वांत सुखाय की आबोहवा में डूबे पारंपरिक संतों को ऐसे विषयों से कोई मतलब नहीं होता; लेकिन कबीर यथार्थ से आंख नहीं मूंदते। वे अगर इस प्रकार हिन्दू धर्म की अविधायी जड़ता पर प्रहार करते हैं तो इस्लाम धर्म की धर्मांधता को भी अपना विषय बनाते हैं। भीष्म साहनी कोतवाल से मौलवी के संवाद का सृजन कर इस यथार्थता को प्रत्यक्ष करते हैं।

इस्लाम का सर्वेसर्वा बना मौलवी कबीर के संदर्भ में कोतवाल से कहता है– "लाहौल वला कुव्वत, आप क्या कह रहे हैं? मस्जिद शरीफ की सीढ़ियों पर खड़ा होकर वह दीन की तौहीन करता रहा है। लाहौल वला कुव्वत! आप की अमलदारी में यह कहर ढाया जा रहा है और आप खामोश हैं।... इसका मुंह तो बंद कराइये। लाहौल वला कुव्वत, लोग क्या कहेंगे कि आप एक खबती से डर गये। आपके रहते किसकी मजाल कि दीन की तौहीन करे? आप यहां पर दिल्ली के शाहनशाह के ही नुमाइन्दा नहीं हैं, आप दीन के भी नुमाइन्दा है, आप चुप रहेंगे तो लोग कहेंगे कि यहां का राजा चूंकि हिन्दू है इसलिए दीन के खिलाफ कोई कुछ भी कह ले, कोतवाल कुछ नहीं कर सकता। इस आदमी के शेयर और काफिये

लोगों की जबान पर चढ़ते जाते हैं। जहां खड़ा होता है, मजमा इकट्ठा कर लेता है। छोटे लोगों को इश्तआल दे रहा है।"

अंततः मस्जिद की सीढ़ियों पर कबीर का कवित्त गाने वाले उस दृष्टिहीन युवान को बुलाकर उसे मौत के घाट उतार दिया जाता है। मध्यकालीन सामयिक यथार्थ का प्रतिपाद्य नाटक में बखूबी प्रयोग हुआ है। समाज को सुचारू रूप से संचालित करने के प्रयोजन से स्थापित धर्म शोषकों–षड्यंत्रकारियों के हाथ का खिलौना बन गया है।

एक अन्य प्रसंग में कबीर की सत्संग मंडली जब काशी के चौराहे पर सत्संग आयोजित करने की तैयारी कर रही होती है तब वहां जुटे कथित नीच जाति के लोग सामाजिक दशाओं से जन्मी विद्रूपता–वेदना की अभिव्यक्ति करते हैं। एक व्यक्ति, दूसरे व्यक्ति से कहता है–

"हमारे गांव में साधु–महात्मा पधारे। बहुत पहुंचे हुए हैं। हमने सोचा, चलो साधु–महात्मा के पास अपना शंका–समाधान कर आवें। हम हाथ बांधकर उनके सामने जा खड़े हुए। हमने कहा, महाराज, योग–साधना करने वाले को घर–गिरस्ती छोड़ देना चाहिए? मेरी ओर यों देखकर बोले, कौन जात? हमने कहा, भगवान मैं आपका सेवक हूं। वह फिर तेवर चढ़ा कर बोले, कौन जात? हमने कहा, कम–जात, बद–जात, नीच जात। हम चमार हैं मालिक। इस पर साधु महाराज ने डण्डा उठा लिया और हम वहां से चले आये।"

यहां निम्न जातियों के संत एवं अनुयाइयों की वेदना उभरकर सामने आई है। सिर्फ जाति के आधार पर धर्म के दरवाजों को खोलना कहां तक उचित है? शायद इसलिए नाटक में एक प्रसंग में कबीर कह उठता है कि, "तब तो आपकी (ब्राह्मण की) धमनियों में अमृत बहता होगा। बहता है ना? मां के पेट से निकले होंगे तो माथे पर तिलक लगाकर निकले होंगे। सुन ब्राह्मण–

'एकै बूंद एकै मलमूतर, एक चाम, एक गुदा।
एक जाति है सब उत्पन्न, को ब्राह्मण, को सूदा।।'

धार्मिक अंधत्व की ऐसी तीखी व पैनी अभिव्यक्ति से ऐतराज हर वर्ग को है, चाहे वह हिन्दू हो या मुस्लिम। इस तथ्य को वशीरा और सत्संगियों के बीच के संवाद का यह अंश भी साकार करता है–

"अब तिमूर लंग बड़ा मजहबी बादशाह था। अल्लाह का नाम लेकर तलवार उठाता था। अल्लाह का नाम लेकर ही उसने एक लाख बाशिन्दों को अगले जहान पहुंचा दिया।" धर्म के रखवाले बन बैठे मौलवी भी कबीर की मुस्लिम धर्म के बाह्याचार विरोधी बातें सुनकर बौखला जाते हैं। सिर्फ कबीर के पालक पिता एक जुलाहा हैं इसीलिए अब तक चुप हैं। वे कबीर से कहते हैं, "तेरी खैर नहीं। तेरे बाप नूरे की वजह से हम अब तक चुप हैं। अब तक तुम्हें जिन्दा गाड़ दिया होता। वही हाथ जोड़ता, गिड़गिड़ाता फिरता है और हमें रहम आ जाता है। मगर अब तुम बचकर नहीं जाओगे।"

कबीर चूंकि मुस्लिम हैं, ऐसा मौलवी मानते हैं। यह धार्मिक भेदभावपूर्ण सहनशक्ति मौलवियों को शोभा नहीं देती।

• सत्ता के फासिज्म का प्रत्यक्षीकरण

मध्ययुग में व्याप्त सामाजिक धर्मांधता की चरमसीमा को साकार नाटक 'कबिरा खड़ा बजार में' करता है तो सियासती शतरंजी बिसात से भी अपनी आंखें नहीं मूंदता। अपनी–अपनी खिचड़ी पकाने के लिए जघन्य से जघन्यतम कार्य करने में न हिचकिचाने वाले पंडितों–मौलवियों के नग्न यथार्थ के प्रतिपादन के साथ ही यह नाटक कबीर को राजसत्ता से जूझते हुए भी दिखाता है।

कहना न होगा कि धर्मसत्ता और राजसत्ता में हमेशा एक तरह का ऐक्य बना रहता है। या यहूं कहें कि धर्मसत्ता ही राजसत्ता पर हावी होती रही है। आपसी वैमनस्य सत्ता परिवर्तन का कारण बन जाता है। ऐसे में यदा–कदा मजबूरन धर्मसत्ता की दरमयानगिरी राजसत्ता को सहनी पड़ती है। इस क्रूर सत्य का प्रत्यक्षीकरण भी भीष्म साहनी ने अपने इस नाटक के जरिये किया है। फासिज्म के तहत राजसत्ता के जनता के साथ होने वाले व्यवहारों का दृश्य प्रजा के साथ शासक के मानस पटल पर भी छाया रहता है। शासक हमेशा क्रूर व निर्दय तरीके अपनाकर अवाम को नियंत्रण में रखना चाहते हैं। प्रजा में दहशत भरने व उसे अंकुश में रखने के लिए निष्ठुर व कठोर लोगों को अहम पदों पर रखे जाने की परंपरा रही है। दुःशासन के प्रतीक स्वरूप उभरे कोतवाल के बारे में 'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक में भीष्म साहनी के शब्द हैं–

"कोतवाल तो ऐसा आदमी है कि जिन्दा गाड़ देता है। पहला कोतवाल सीलदार आदमी था, भला मानुस था, बक्स देता था। मगर इस कोतवाल का कोई भरोसा नहीं। सुनते हैं इसका दादा तैमूर लंग की फौज के साथ आया था। दिल्ली के खून–खराबे में उसने खूब हाथ रंगे थे।"

अवसर पड़ने पर सत्तात्मक तानाशाही का दमनचक्र धर्म को भी नहीं बख्शता है। नाटक के एक प्रसंग में महंत अपनी भूमि के सामने पड़ने वाली मुस्लिम बस्ती को खाली कराने के लिए कोतवाल को रिश्वत की पेशकश करता है। वह लेता भी है और यह अनुचित काम भी करता है।

महंत– "जिस दिन हमने काशी में प्रवेश किया, तभी से हमारी इच्छा थी कि आपके दर्शन करें।"

(महंत रिश्वत देने के लिए कोतवाल के आदमी की ओर बढ़ता है।)

इस दृश्य से सामना करने वाले आम–अवाम की दशा का अंदाजा लगाया जा सकता है।

दूसरी तरफ एक प्रसंग में धर्म के प्रतिनिधि मौलवी और सत्ता के प्रतिनिधि कोतवाल इस विषय पर वार्ता करने के दौरान उलझ जाते हैं कि धर्म को कौन कायम रखता है। अंततः मौलवी को कोतवाल दो–टूक सुनाता है– "दीन की खिदमत मुल्ला–मौलवी इतनी नहीं करते जितनी हाकिम करता है, यह बात गांठ बांध लो।... लेकिन अगर मजहब की खिदमत उन्हीं लोगों तक रहती तो कोई भी मजहब आगे नहीं बढ़ पाता। मजहब के नाम पर सल्तनतें बनती हैं और सल्तनतों के साये में मजहब पनपते हैं, हाकिम की तलवार दीन की खिदमत करती है। क्या समझे? यह बड़ी फलसफे की बातें हैं।"

वस्तुतः अहं और दंभ से परिपूर्ण तानाशाह यही समझते हैं कि धर्म के वास्तविक रखवाले वे ही हैं। स्पष्ट है कि सत्ता किसी को भी अपना सगा नहीं मानती। इसकी क्रूरता का शिकार साधारण या विशेष किसी भी वर्ग का व्यक्ति बन सकता है। नाटककार के शब्द कोतवाल के मुख से सामने आते हैं–

"हाकिम अपने अजीज से अजीज दोस्त को भी फांसी के तख्ते पर चढ़ा सकता है। खूबसूरत से खूबसूरत औरत को भी जिंदा दफना सकता है। इस तरह मजहब और कौम की सबसे बड़ी खिदमत हाकिम करता है, जो जज्बाती नहीं होता।"

हृदयहीन–संवेदनाशून्य और अहंकारी स्वाभिमान से पूर्ण सत्ता की प्रकृति का एक उदाहरण देखिए–

"कोतवाल : कल बड़े चौक में, हमारे हुक्म से कितने आदमियों को हाथी के पैरों के नीचे कुचलवाया था?

मुसाहिब : तीन राहजन थे हुजूर।

कोतवाल : क्यों उनमें से कोई जिन्दा बचा था?

मुसाहिब : बच कैसे सकता था, हुजूर! अभी भी तीनों की लाशें चौक में पड़ी हैं।

कोतवाल : क्या कबीरदास जुलाहे को खत्म करना हमारे लिए मुश्किल काम है?"

क्रूरतापूर्ण दमन से मौत देना और फिर उसके जीवंत प्रदर्शन द्वारा अवाम में दहशत बनाए रखना तानाशाही की विशिष्टता रही है। नाटक में कोड़े की असह्य मार से जब भिखारी मर जाता है तब उसकी लाश से भी सत्ता खुद को मजबूत करने के नुस्खे खोजती है–

"इससे सभी को कान हो जाएंगे। जब इसकी लाश गली–गली में जायेगी और साथ में सरकारी आदमी होगा तो अपने आप दहशत फैलेगी...।"

ऐसे दृश्य से कठोर व्यक्ति का हृदय भी पसीज जाता है लेकिन सत्ता अट्टहास करती है। फासिज्म के इस क्रूर मजाक की खिलवाड़ बनी कबीर के पद गायक भिखारी की दृष्टिहीन मां विलाप करती हुई कबीर से कहती है–

"इतनी चिड़ी–सी तो उसकी जान थी। कोड़ों की मार सहने के लिए सकत कहां से लाता।... जो कोड़े नन्दू की पीठ पर पड़े थे, वह मेरी ही पीठ पर पड़े थे बेटा। बच्चे पर पड़नेवाले कोड़े मां की ही पीठ पर पड़ते हैं, पर मैं मरी नहीं, नन्दू मर गया। मैं सह लूंगी कबीरा। नन्दू का मरना सह लिया तो कोड़े न सहूंगी। मैं गली–गली गाती फिरूंगी। अब मैं गाऊंगी और वह सुनेगा। जहां पर भी है, सुनेगा। सुनेगा ना, कबीरा?"

कोतवाल के इस आतंकी कदम से जख्मी मां की वेदना का प्रत्यक्षीकरण भीष्म साहनी ने बखूबी किया है।

सत्ता अवाम में धर्म–जाति के नाम पर फूट डालने के लिए भी प्रख्यात है। सत्तासीन लोग अपना उल्लू सीधा करने के लिए धर्म के नुमाइंदों को भड़काते हैं और फिर वे आम अवाम को मानवीयता की राह से भटकाने के लिए हर युक्ति का सहारा लेते हैं। कबीर

पंथियों की आयोजित सत्संग मंडली को बिखेरने के लिए एक कायस्थ किस प्रकार भय का माहौल सृजित करता है, इसकी एक बानगी देखिए–

"सुनो कबीरदास, यह काशी है। लोग तुम्हें कुचल देंगे। यहां का राजा हिन्दू है, पर कोतवाल तुर्क है। लोदी बादशाह की अमलदारी है। और तुम खुद मामूली जुलाहे हो।"

साधारण लोगों और इष्ट के बीच योग की कड़ी बनने के बजाय धर्म के रखवाले सत्ता के इशारे पर इसी प्रकार रोड़ा बनते हैं।

'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक में भीष्म साहनी ने ऐतिहासिक पहलुओं का आश्रय लेकर भी शासन और सत्ता के दमन तथा जनसाधारण की वेदना को वाणी दी है। युद्ध और आतंक से भरे हुए कबीर काल के संदर्भ में वे कहते हैं–

"इस समय दिल्ली के तख्त पर लोदी वंश का शासन था। ये मुसलमान शासक थे, जिनकी संस्कृति सर्वथा भिन्न थी। तलवार के बल पर साम्राज्य विस्तार तथा मुस्लिम धर्म का प्रसार करना उनके जीवन का उद्देश्य बन गया था। धर्म के प्रति कट्टरता उनका स्वभाव था। स्वतंत्रता, समता, सहिष्णुता तथा धार्मिक–सामाजिक उदारता के प्रति ये शासक उदासीन थे। कबीर के समय सिकंदर लोदी दिल्ली का बादशाह था, जो कट्टरता के लिए बदनाम था। कबीर काशी के रहने वाले थे। वहां का राजा हिन्दू था परंतु शहर कोतवाल मुसलमान था। काशी का शहर कोतवाल बादशाह सिकन्दर लोदी का नुमाइन्दा था। सारे देश में जो धार्मिक वैमनस्य बढ़ चुका था, उसकी कुछ छाया काशी के वातावरण में भी पायी जाती है। अपने धर्म के प्रति सचेत रहकर दूसरे धर्म से घृणा करने का कार्य प्रायः दोनों धर्मों द्वारा किया जा रहा था। बिहार प्रांत पर कब्जा कर दिल्ली लौटते समय सिकन्दर लोदी कुछ समय के लिए काशी रुका था। उसी वक्त सिकन्दर लोदी की कबीर से मुलाकात हुई।"

'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक में हुए रेखांकन के अनुसार बादशाह सिकन्दर लोदी का लाव–लश्कर जिस शहर से होकर गुजरता, वहां मनमानी व लूटपाट करना सिपाही अपना हक समझते थे। जन–शिकायतों पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता था। नाटक में शासक वर्ग का प्रतिनिधित्व करता सिकन्दर लोदी एक धर्मांध शासक व तानाशाह के रूप में चित्रित है। अन्य राजाओं को आपस में लड़ाकर तमाशा देखना, उन्हें परास्त कर कब्जा जमाना, अपने कौम की, अपने दीन की खिदमत करना उसका काम था।

कबीर सरीखा सत्यान्वेषी साधक जब मजहब का वास्तविक स्वरूप, इबादत का असली अर्थ सिकन्दर लोदी के समक्ष व्यक्त करता है तो वह सह नहीं पाता–

"इस आदमी पर कड़ी नजर रखो और हमें इत्तला करते रहो। उठ कबीर, आज के बाद कभी मुझे शिकायत मिली कि तूने दीन की तौहीन की है तो मैं तेरी टांगें चीर दूंगा।"

• बाह्याडंबरों के प्रतिरोध से स्वस्थ समाज–निर्माण पर बल

भीष्म साहनी ने 'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक में कबीर युगीन समाज में फैली धर्मांधता, मजहबी कट्टरता जनित बाह्याचारों का प्रतिरोध कर स्वस्थ समाज निर्माण पर जोर दिया है। धर्म के ठेकेदारों द्वारा कट्टरता व बाह्याचारों में घसीटी जा रही जनता को देखकर

कबीर का हृदय द्रवित हो उठा था। इसीलिए उनकी वाणी में हिन्दू–मुस्लिम दोनों में व्याप्त विकृतियों पर कुठाराघात होता है। नाटककार ने तात्कालिक धर्मांधता, अनाचार, तानाशाही आदि के सामाजिक परिप्रेक्ष्य में कबीर के निर्भीक, प्रखर, सत्यान्वेषी व्यक्तित्व को चित्रित किया है।

कबीर को अपने इस व्यक्तित्व के कारण कई मुश्किलों से गुजरना पड़ा, अनेक संकटों का सामना करना पड़ा। गनीमत है कि वे मार नहीं दिए गए। आज तो ऐसा करने वाला मार दिया जाएगा, जबकि अब के हालात तब से बेहतर हैं। आए दिन किसी न किसी का सिर कलम करने के लिए करोड़ों के इनाम की घोषणा कट्टर लोग कर रहे हैं। कबीर को पीड़ा पहुंचाई गई पर यह मस्तमौला किरदार खुशमिजाज बने रहकर अपना काम करता रहा। अलबत्ता उनके माता–पिता व अनुयायी वेदनाग्रस्त हो जाते थे। इस वेदना का वर्णन नाटक में बखूबी किया गया है। आज भी हमारे समाज में कबीर सामाजिक विद्रूपताओं, मिथ्याडंबरों, बाह्याचारों के खिलाफ संघर्षरत एक स्थाई एवं प्रेरक जीवन–मूल्य के रूप में मौजूद है। 'कबिरा खड़ा बजार में' का एक प्रसंग देखिए–

"कभी वे गरीब, मूक प्राणियों की हत्या देख कातर हो उठते हैं, कभी धर्म के नाम पर मनुष्य को खेमों में बंटते देख दुःखी होते हैं, कभी मनुष्य को मनुष्य के साथ पशु की तरह पेश आते देख विद्रोह कर उठते हैं।"

हिन्दू–मुस्लिम दोनों की जड़ताजनित मूर्खता पर उन्होंने कटाक्ष किया–

"माला फेरी, तिलक लगाया लम्बी जटा बढ़ाता है।
अंदर तेरे कुफर कटारी, दो नहीं साहिब मिलता है।"

और–

"दिन भर रोजा रहत है, रात हनत है गाय।
यह तो खून–वह बंदगी, कैसे खुशी खुदाय।"

अपनी मंडली के रैदास, बशीरा, पीपा, सेना आदि सदस्यों के साथ कबीर सत्संग के लिए जिस चौराहे को चुनते हैं; धर्म के ठेकेदार और उनके नुमाइंदे उस दौरान उधर से गुजरना बंद कर देते हैं। रैदास कहता है– "ब्राम्हणों को पता चलेगा कि छोटी जात वाले लोग इधर बैठते हैं तो वे अपना रास्ता बदल लेंगे।" निम्न जाति के प्रति होने वाला ऐसा व्यवहार सामाजिक रुग्णता का ही प्रतीक है। दूसरी तरफ धर्म के रक्षक बने बैठे साधु–संतों का चरित्र कैसा है?–"शोभायात्रा पर जितने साधु निकलते हैं, सभी भांग–धतूरा पीकर निकलते हैं। ऐसे आदमियों के साथ उलझना नहीं चाहिए।" यह आम जनता की धारणा है, जो साधु–संतों के किस तरह के नकारात्मक प्रभाव की निष्पत्ति है, यह समझा जा सकता है।

एक साधु अपनी श्रेष्ठता का दंभ भरते हुए कबीर से उलझता है। तब कबीर को कहना पड़ता है–

"एकै बूंद एकै मल मूतर, एक चाम, एक गुदा,
एक जाति है सब उत्पन्ना, को बाम्हण, को सूदा।"

इतना ही नहीं साधु ब्राह्मणों में भी अपने आपको सर्वश्रेष्ठ मानते हुए कहता है–

साधु : तुम्हें नजर नहीं आता? हम गौड़ बाम्हण हैं।
बाम्हणों की 108 जात में सबसे ऊंचे।

कबीर : क्या सच? (हंसकर)
तब तो आपकी धमनियों में अमृत बहता होगा। बहता है ना? मां के पेट से निकले होंगे तो माथे पर तिलक लगाकर निकले होंगे?

ऐसी सपाट बयानी के कारण कट्टरपंथी कबीर को ही नहीं, उनके सहयोगियों को भी आड़े हाथों लेते थे। कबीर की जड़ता–मूढ़ता विरोध–वृत्ति के कारण जो स्थिति बनती थी वह वेदनात्मक ही होती थी। कबीर के पद गाने वाले ही नहीं, उनके अनुयायी भी कबीर की भांति पाखंडियों के कोपभाजन बनते थे। विरोध का जो अदम्य साहस और खरा तर्क कबीर में मिलता है; रूढ़िवाद, अंधविश्वास, विकृत सामाजिक रिवाजों–कर्मकांडों, सत्ता की क्रूरता एवं दमनकारी प्रवृत्तियों के प्रति जो आक्रामक शक्ति–युक्त प्रतिक्रिया उनमें मिलती है वह आज भी सर्वाधिक प्रेरक स्रोत है 'कबिरा खड़ा बजार में' की प्रासंगिकता का।

कबीर की यथार्थपरक दृष्टि धर्म को जोड़ने वाली नहीं, तोड़ने वाली शक्ति के रूप में दिखाती है। उसमें समष्टिवाद से विमुख व्यक्तिवाद की तुच्छता दिखाई देती है। पाखंडी धार्मिकों द्वारा धर्म की मूल देशना को हाशिए पर रख दिया जाना सामने आता है। अर्थात अर्थवत्ता से परे, आचरण से रहित, प्रतीकात्मक व पाखंड प्रधान धर्म जो तमाम समस्याओं की जड़ है।

नाटक के एक प्रसंग में मौलवी की अजान सुनने के उपरांत ऊंची आवाज में कहता है–

"थोड़ा और ऊंचा मुल्ला जी, यह आवाज सातवें आसमान पर नहीं पहुंचेगी।... अल्लाह ताला भी कुछ ऊंचा सुनने लगे हैं क्या? वाह वाह मुल्लाजी, जरा और ऊंचा।

कांकर पाथर जोर करि मस्जिद लयी चुनाय
ता चढ़ मुल्ला बांग दे क्या बहरो भयो खुदाय?... (सामने आकर)

खुदा सब सुनता है, मौलवी साहिब, उसे अजान देकर सुनाने की जरूरत नहीं।

चींटी के पग नेवर बाजे
सो भी साहिब सुनता है।"

• आर्थिक दैन्यता के विरुद्ध संवेदना का प्रतिस्थापन

कबीर आर्थिक दैन्यता की पीड़ा के भुक्तभोगी हैं। उनका लौकिक जीवन पूरी तरह वेदना ग्रस्त है। वे रहस्यदर्शी संत हैं, पहुंचे हुए फकीर हैं; विपन्न परिवार में भी दैन्यता से अप्रभावित हैं। कबीर को छोड़कर कबीर का परिवार दुखी है। स्वयं कबीर से भी दुखी है, उनकी सुधारवादी विद्रोही प्रवृत्ति के चलते।

कबीर को साधारण, फटे हुए चिथड़ों में देखकर सिकन्दर जब उनकी हंसी उड़ता है, तब वे उससे कहते हैं–

"जुलाहों की यही खूबी है बादशाह सलामत, लोगों को कपड़े पहनाते हैं, खुद चिथड़ों में घूमते हैं। जुलाहों को चिथड़े भी नसीब हो जाए, गनीमत है।"

यहां समाज व्यवस्था की वास्तविक बानगी कबीर ने सिकन्दर के समक्ष प्रस्तुत कर दी है। यह अलग बात है कि शासन की ओर से इस दिशा में कोई प्रयास होने की संभावना कम है किंतु कबीर की हाजिरजवाबी में यहां नाटककार ने कोई कोर–कसर नहीं छोड़ी है। आर्थिक विपन्नता के बादल इन पर हमेशा छाए रहते हैं। कबीर के पालनकर्ता जिन जुलाहों की बस्ती में रहते थे, वे सूत पकाकर–बूककर कुछ पोत–थान तैयार करते थे लेकिन उनके लिए क्रेता तो चाहिए?

"जुलाहा : सभी दुकानदार कहते हैं अभी पहला ही माल नहीं बिका तो और माल लेकर क्या करेंगे।

नूरा : कुछ तो कमा कर लाये होंगे।

जुलाहा : एक फूटी कौड़ी नहीं मिली; इसरार करो तो कहते हैं, तुम्हारा माल धरा है, उठाकर ले जाओ, हमें नहीं बेचना है। ऐसी मन्दी आयी है कुछ पूछो नहीं, बाजार में उल्लू बोल रहे हैं।"

कबीर परहित में अपने थान का उपयोग कर खाली हाथ लौटता है तो माता–पिता खुशी से झूम उठते हैं– यह सोचकर कि थान बिक गया। नीमा कहती है– "आ इधर बैठ जा। मैं सत्तू बना लाती हूं तेरे लिए।"

भोले–भाले लोगों की धूप–छांव से तर ये खुशियां संवेदित करती हैं। घर–परिवार के काम तक सीमित न रहकर, कबीर समाजहित व सत्संगादि विषयक गतिविधियों में लगा रहता है। नूरा कबीर से ऊबकर अपनी पत्नी नीमा से कहता है– "घर में खाने को अन्न का दाना नहीं, इधर लड़का आवारा हो गया। हमारी जान लेकर रहेगा।"

ऐसी स्थिति नाटक के दूसरे अंक में भी दर्शनीय है। लोई को ब्याह कर लाते ही कबीर अपने घर की यथार्थता बेझिझक उसके सामने रखते हुए कहते हैं–

"जब मैं तुझे लिवाने गया तो मां बड़े हौसले से कहने लगी, मुझे बाजार से थोड़ा अलसी का तेल लाकर दे, दुल्हन घर आयेगी तो मैं चौखटों–दरवाजों पर तेल लगाऊंगी। मैंने कहा, मां, यहां दरवाजे हीं नहीं हैं, तू तेल कहां लगायेगी? और फिर लोई से क्या छिपा होगा? क्या वह जली हुई झोंपड़ी नहीं देखेगी?... कल बशीरा और कुछ और लोग आएंगे। झोंपड़े में नये थाम–थूनी लगा देंगे और फूस मिल गया तो छप्पर भी डाल देंगे।"

हम जानते हैं कि इस तरह बिना कोई परदा रखे, सब कुछ खुलकर बता देना नवविवाहितों के लिए असंभव जैसा कठिन होता है। कबीर सत्संगी, त्यागी–विरागी, तपस्वी, विचारक हैं किंतु लोई के लिए इसका कोई अर्थ नहीं है। इसलिए कि वह एक साधारण इन्सान है आम अवाम की तरह। कबीर को छोड़ देने की उसकी इच्छा के मूल में कुछ हद तक कबीर की आर्थिक दैन्यता ही है।

बरसात में झोंपड़े की छत से पानी टपकता है तब लोई की पीड़ा हद पार कर जाती है। (छत की ओर देखती है। सिर झटक देती है। बादल फिर गरजते हैं।) वह कहती है–

"न घर न दुवार, बापू ने हमें कहां लाकर झोंक दिया? एक पगलेट साधू के पास! अंधरा गए थे, न घर देखा न वर।"

इस प्रकार भीष्म साहनी ने 'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक में चित्रित पात्र–सृष्टि की आर्थिक दशाओं को लेकर संवेदना के अनेक स्तर खड़े किए हैं। निचले तबके के भोजन–वस्त्र–आवास और उनकी सामाजिक स्थिति का जो नग्न स्तर प्रकाश में आता है वह पाठक–दर्शक के अंतस को छू लेता है।

3.4 'कबिरा खड़ा बजार में' का समीक्षात्मक अवलोकन

कबीर की साहित्यिकता सामाजिक जड़ता को तोड़ने का ही एक माध्यम थी। अनेकानेक मोर्चों पर इसके सहारे उन्होंने संघर्ष किया। भारतीय इतिहास के मध्यकाल में यानी पांच शताब्दी पूर्व व्याप्त मिथ्या धारणाओं, सामाजिक कुरीतियों, धर्माडंबरों एवं जाति–मजहब के आधार पर विभाजित समाज के अंतर्विरोधों के खिलाफ अथक संघर्ष करने वाले कबीर आज भी स्थाई व प्रेरक मूल्य स्वरूप सामाजिक चेतना को जागृत करते हैं। भारतीय जन–मन एवं उसकी चेतना को कबीर का औघड़–विद्रोही व्यक्तित्व अब भी प्रभावित किए हुए है।

कबीर की रचनाएं प्रायः दृश्य को अर्थ भी देती हैं और एक मोड़ भी। उनमें मानवीय संवेदना है और व्यंग्य भी। 'कबिरा खड़ा बजार में' अपनी कल्पना शक्ति, सृजन और कला में हिन्दी के रचनात्मक–समसामयिक नाटकों की श्रेणी में आता है। भीष्म साहनी की दृष्टि में कबीर की आध्यात्मिक दृष्टि और सामाजिक चेतना में कोई दूरी या विरोध नहीं है। वे पूरक हैं और परस्पर अभिन्न रूप से संबद्ध हैं। नाटककार ने खड़ी बोली, भोजपुरी व अवधी का मिला–जुला रूप प्रस्तुत किया है, क्योंकि ऐसा होने से ही बात बन सकती थी।

शिल्पगत कोई वैशिष्ट्य अथवा प्रयोग करना भीष्म साहनी का स्वभाव नहीं है। उन्होंने नाटक लेखन में अपने तत्संदर्भित कर्तव्य की इतिश्री न मानकर रंगमंचीयता पर भी प्रभावी ध्यान दिया। उन्होंने निर्देशक के साथ मिलकर उसके मंचीय प्रभावों को बढ़ाने की पूरी कोशिश की और एतदर्थ जरूरी बदलाव व प्रयोगों को आत्मसात भी किया। प्रथम बार नाटक का मंचन अप्रैल 1981 में, त्रिवेणी के खुले नाटकगृह (दिल्ली) में, एम.के. रैना के कुशल निर्देशन में हुआ। इस मंचन में निर्देशक की इच्छाओं को रेखांकित करते हुए साहनी जी ने लिखा है कि, "रैना की मंशा थी कि नाटक में कबीर के पद अधिक रखे जाएं और इस तरह नाटक में संगीत का अंश बढ़ा दिया जाए। चुनांचे मूल नाटक में जहां दस पद थे, मंचन में वे सत्रह बन गए। अनेक पदों का चयन श्री रैना ने स्वयं कर लिया।"

मंचन में अनेक जगह पर छोटी–मोटी जोड़–तोड़ भी की गई, जैसे दो दृश्यों को मिलाकर एक लंबा दृश्य बना दिया गया। इसी तरह पहले अंक के दूसरे दृश्य में कोतवाल और कायस्थ के प्रकट होने से पहले, प्रभात वेला की एक छोटी–सी झांकी प्रस्तुत की गई, जिसमें प्रभात वेला में सड़क पर सोने–बसने वाले काशी के दरिद्र नागरिक, अंधा भिखारी, साधारण स्त्री–पुरुष, भंगी–भिश्ती आदि उठ–उठकर अपने–अपने काम पर निकलते हैं, और नेपथ्य में मंदिरों की घंटियां और घड़ियाल और मस्जिदों की

अजान आदि सुनाई पड़ते हैं। इससे काशी का वातावरण तैयार करने में बड़ी मदद मिली। नाटक की भाषा में भी, जो खड़ी बोली में लिखा गया है, उसमें भोजपुरी का पुट देने का प्रयास किया गया। रैना जी के सुझाव पर ही नाटक का नाम भी 'कबीरदास' न रखकर 'कबिरा खड़ा बजार में' रखा गया।

आलोचनात्मक सवाल यह उठता है कि नाटक कबीर के अध्यात्म पक्ष की उपेक्षा क्यों करता है, जबकि यह कबीर का अहम पक्ष है और आज पर्याप्त तौर पर ग्राह्य भी है। यह सवाल नाटककार से भी हुआ है। जवाब में साहनी जी लिखते हैं– "मेरी समझ में कबीर का अध्यात्म मूलतः उनकी मनुष्य–मात्र के प्रति समदृष्टि, प्रेमभाव, भक्तिभाव और व्यापक 'धर्मेतर' दृष्टि से ही पनपकर निकला है। उनके बाह्याचार विरोधी पद, भक्तिभाव के पद और आध्यात्मिक पद एक ही भूमि से उत्पन्न हुए हैं, एक ही मूल दृष्टि की उपज हैं, इस तरह वे एक–दूसरे से अलग न होकर, एक–दूसरे से अभिन्न रूप से जुड़े हुए हैं। जो साधक अंतरिक्ष को छूते हैं, वे धरती पर से उठकर ही अंतरिक्ष तक पहुंचते हैं। कबीर की मान्यता कि हिन्दू और तुर्क 'एक ही माटी के भांडे हैं' तथा उनका बाह्याचार विरोध और सहज समाधि के मार्ग का निर्देश और अनहद नाद में लीन होना, एक ही व्यक्तित्व की रचनात्मक दृष्टि की उपज है।"

वे आगे लिखते हैं– "हमारे यहां एक ऐसी प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया जाता है, जहां हम किसी महापुरुष को उसके काल और स्थान के संदर्भ से काटकर, उसकी सामाजिक भूमिका को गौण बनाते उसे अध्यात्म के आकाश में विचरते दिखाना चाहते हैं। ऐसा गांधी जी के संबंध में भी जान–बूझकर किया जाता रहा है। देश के स्वतंत्रता–संग्राम में उनकी विराट भूमिका पर बल न देकर जिसमें उन्होंने संसार की सबसे शक्तिशाली साम्राज्यवादी सरकार के विरुद्ध देश के लाखों–लाख लोगों को खड़ा कर दिया, और देशवासियों में एक रूह फूंक दी, उनकी सत्य और अहिंसा संबंधी मान्यताओं को देश और काल से काटकर प्रमुखता देते हुए उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करने की औपचारिकता निभायी जाती है। यह गांधी जी के प्रति घोर अन्याय है। कबीर के साथ भी ऐसा ही करने की प्रवृत्ति पायी जाती है, जो हाल ही में कबीर जयन्ती के समय प्रस्तुत रेडियो और टेलीविजन के कार्यक्रमों में लक्षित हुई। अपने काल के यथार्थ से और उस यथार्थ के विरुद्ध उनके विकट संघर्ष को न दिखाकर कबीर को ब्रह्म में लीन अध्यात्म के गायक संत के रूप में दिखाना कबीर के साथ भी अन्याय करना ही है।"

त्रिअंकीय इस नाटक में नाटककार ने कबीर के पारिवारिक पक्ष को भी रेखांकित किया है और धार्मिक–सामाजिक–राजनैतिक परिवेश को भी। दरअसल यह हमारी सोच कहो या अपेक्षा : हम हर किसी महापुरुष या नायक, महाकवि या संत आदि को अमूमन उनकी समकालीनता में नहीं देखते, अपितु उन सारी यथार्थताओं से काटकर उसे एक पृथक वैशिष्ट्य के संदर्भ में देखते हैं। लेखक का यत्न इस यथार्थता की ओर है कि हम कबीर को एक आदमी में देखने का प्रयास करें। एक जुलाहे से नूरा कबीर के संदर्भ में बात करते हुए कहता है–

"हमारी कहां सुनता है। दो बार घर से भाग चुका है। एक बार तो कहां हरिद्वार के पास से पकड़ कर लाये थे। सच पूछो तो मैं तो उसे लिवाने भी नहीं ... लेकिन उसकी

मां रो–रोकर आधी हुई जा रही थी। आठ पार (पहर) का रोना कौन सुने। मैं जंगलों में खाक छानता, मिन्नत करके उसे लौटा लाया तो सात महीने बाद फिर भाग खड़ा हुआ। अब उसे रस्सियों से बांधकर तो नहीं रखा जा सकता न! कहीं बांधे गांव बसा है।"

यहां न केवल कबीर की वैयक्तिक आदतें आकार पाती हैं वरन् नूरा और नीमा के प्रति दयाभाव भी उभरता है। वे संतानहीन थे। कबीर उन्हें कहीं पड़े मिले थे। नूरा हताश होकर कहता है– "न जाने किसको उठा लाई। तब तो बड़ी मोहगर बनी थी, अब किए पर भुगतो। यह तो सांप पालते रहे। न दीन के रहे, न जहान के।"

'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक कबीर के इर्द–गिर्द घूमने–फिरने वाले पात्रों से संबंधित होने के बावजूद पिछड़े वर्ग के पारिवारिक–सामाजिक–आर्थिक वातावरण को पूर्णतः प्रकट करते हुए मानवीय संवेदना के विविध आयामों की सृष्टि करता है।

समीक्षक अमूमन महापुरुषों को उनकी युगीनता से पृथक कर उन्हें सिद्धि व उपयोगिता के परिप्रेक्ष्य में देखते हैं। यह हमेशा होता रहा है। आलोचकों ने कबीर के साथ भी यह अन्याय किया है। भीष्म साहनी के लिए कबीर की आध्यात्मिक अवहेलना अभीष्ट थी क्योंकि वे कबीर को अधिकतर उनके जमाने के परिवेश में देखते हैं। भीष्म साहनी ने कबीर को संत–गायक–गुरु के रूप में नहीं, एक समकालीन युग–पुरुष, लोक–आदर्श के रूप में चित्रित किया है।

नूरा से कहा गया नीमा का यह कथन कबीर की गुण–वृत्ति को बयान करता है– "हमजोलियों के साथ उठता–बैठता है न, उसमें बेजा क्या है? भांग–धतूरा तो नहीं पीता, जुआ तो नहीं खेलता।" नीमा ममतावश पुत्र के गुणों को देखती है, आनंदित होती है। पिता नूरा कबीर को कमाऊ, सर्वथा उपयोगी न होने के कारण अफसोस व्यक्त करते हैं। निम्नवर्ग में व्यसन उतना बुरा नहीं माना जाता, जितना बुरा अर्थोपार्जन की दृष्टि से निकम्मापन माना जाता है। नूरा नीमा को जवाब देते हुए कहता है– "भांग–धतूरा उतना बुरा नहीं है, जितना यह सास्तरार्थ (धर्मोपदेश)! यह तो कभी छूटता ही नहीं, घरों के घर तबाह हो जाते हैं।" यह कथन उस समय पिछड़े वर्ग में व्याप्त धर्म के प्रति दृष्टिकोण को भी स्पष्ट करता है।

तमाम मौलवी–महंतों के कबीर के दुश्मन बन जाने पर नीमा कबीर से कहती है– "मैं तुझे घर से निकालूंगी। किसी दूसरे शहर में रहेगा तो आराम से रहेगा। तुझे कोड़े तो नहीं पड़ेंगे। तू चला जा....।" ये स्थितियां बताती हैं कि कबीर का जीवन किसी आम इंसान से किंचित भी हटकर नहीं है। कबीर किसी धर्म–जाति से आबद्ध नहीं। उनकी कठोर वाणी भी सभी के लिए और कोमल वाणी भी सभी के लिए।

कबीर का अध्यात्म विषयक ज्ञान यानी तत्वज्ञान मनुष्य के जीवनोपयोगी कर्म से अलग नहीं है। उनके कुछ अध्यात्मिक विचार तत्कालीन आवश्यकता के परिणामस्वरूप भी जीवनचक्र से जुड़े हुए नजर आते हैं। उनके वेदनामय पारिवारिक जीवन के बारे में पीपा बयान करता है–

"कल मैं तुम्हारे घर गया था, कबीरा। पर तुम्हारे अब्बा ने बाहर से ही चलता कर दिया। बोले, कोई नहीं है कबीर इधर। इधर मत आया करो।" कबीर के कारण उत्पन्न इन संवेदित स्थितियों के बावजूद भी कबीर के ढंग में कोई बदलाव नहीं आया। वे अपने कार्य

में प्रवृत्त रहे और अनुयाइयों से विचार–विमर्श करते रहे। धर्म को वे जोड़ने का व्यवहार बताते हैं तोड़ने का नहीं। कथित धर्मों के संदर्भ में वे कहते हैं– "कोई ऐसा धर्माचार नहीं जो इन्सान को इन्सान के साथ जोड़े, सभी इन्सान को इन्सान से अलग करते हैं, एक को दूसरे के दुश्मन बनाते हैं।"

यह कबीर की मानव जाति के लिए व्यक्त होने वाली चिंता है, वेदना है, संवेदना है। लोई के प्रति कबीर का दायित्व भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। प्रारंभ में वे लोई से पीछा छुड़ाना चाहते थे, पर नाटक के अंत में वे इस बात को स्वीकार करते हैं। वे कहते हैं– "तब मैं बहुत बेचैन था। अंधेरे में भटक रहा था। पर अब मैं जान गया हूं कि घर में रहकर ही सच्ची भगती हो सकती है।"

जोग, तप, अपने इकतारे पर ही भरोसा रखकर कबीर धर्म की ध्वजा लहराते हैं, उन्हें धर्म के नाम पर शस्त्र रखने वालों पर नफरत है। वे कहते भी हैं, "महन्तों के पास गोला–बारुद है और मस्जिदवालों के पास तलवारें हैं, हाथी–घोड़े हैं, भाले–नेजे हैं। मेरे पास तो मेरा यह इकतारा है साहिब, मेरे रहते झगड़ा किस बात का?"

3.5 सारांश

भीष्म साहनी की प्रथम नाट्य कृति 'हानूश' (1977) है। हानूश के बाद 'कबिरा खड़ा बजार में' (1981), 'माधवी' (1984) एवं 'मुआवजे' (1993) लिखकर आपने जहां नाटक की दुनिया में अपना अहम योगदान दिया, वहीं रंगमंच और रंगदर्शन को सफल कृतियां भी भेंट कीं।

एक नाटककार के रूप में भीष्म साहनी की दूसरी प्रस्तुति है– 'कबिरा खड़ा बजार में'। यह एक ऐसी अहम नाट्य कृति है, जिसमें वे एक स्तर पर कबीर के तत्कालीन समाज, उस समाज में उनके निर्भय, सत्यभाषी एवं अन्याय के खिलाफ लड़ने वाले प्रखर व्यक्तित्व की पुनर्रचना करते हैं तो दूसरे स्तर पर वह हमारे समकालीन समाज, उसमें युद्धरत संप्रदाय विरोधी, फासिज्म व बाह्याडंबर विरोधी ताकतों की अहम भूमिका का संकेत भी देते हैं।

'कबिरा खड़ा बजार में' की कथावस्तु यूं तो कबीर के समूचे जीवन पर आधारित है किंतु भीष्म साहनी को एक सफल नाटककार सिद्ध करता है उनका रचना कौशल। नाटक का पात्र दिल्ली का शहंशाह सिकन्दर लोधी है जो वर्तमान की निरंकुशता व तानाशाही पूर्ण सत्ता का प्रतीक है। अंधा भिखारी आधुनिक आम जनों का प्रतीक है जो आए दिन किसी न किसी तरह का जोर–जुल्म झेलता है। नाटक वर्तमान की भी उन्हीं चुनौतियों को प्रस्तुत करता है जिनका मुकाबला सच्चे ईमानदार, पाखंड विरोधी, सहज–स्वाभाविक, फकीर व्यक्ति को करना पड़ा था।

नाटक में कबीर, रैदास, सेना, पीपा, वशीरा की टोली ऐसे आधुनिक प्रतिबद्ध और प्रगतिशील लोगों के अग्रिम दस्ते की ओर हमारा ध्यान खींचती है जो सबकुछ दांव पर लगाकर मौजूदा व्यवस्था को संपूर्ण पाखंड व शोषण तंत्र का भंडाफोड़ करने हेतु कटिबद्ध है। यह नाटक ऐतिहासिक होकर भी अत्यंत आधुनिक है। यह भीष्म साहनी के अप्रतिम

नाटककार के व्यक्तित्व का प्रमाण है। यह नाटक समाज के फलक पर और व्यक्ति के मन में चल रहे द्वंद्वों–अंतर्विरोधों की कलात्मक और अर्थपूर्ण अभिव्यक्ति का एक सशक्त और अत्यंत प्रासंगिक दस्तावेज है।

समय व परिवेशगत सत्य तथा संवेदना का समावेश करते हुए भीष्म साहनी अपने नाटकों में संघर्ष बोध की सृष्टि करते हैं। भीष्म साहनी ने 'हानूश' और 'कबिरा खड़ा बजार में' सन्निहित किए गए सामयिक संदर्भों का संकेत स्वयं दिया है। उनके अनुसार, "कभी–कभी हमें कोई मध्ययुगीन स्थिति ज्यादा आकृष्ट करती है, साथ ही उस आकर्षण के पीछे हमारे अपने अवचेतन से जुड़ती आज के जीवन की समस्याएं भी होती हैं। 'हानूश' और 'कबिरा खड़ा बजार में' की परिस्थिति आज की परिस्थिति से भी जुड़ती है।"

भीष्म साहनी के नाटकों में हमारे समय व परिवेश के सत्य व संवेदना का समायोजन स्वतः तथा सहजतः हुआ है। लेखक ने समकालीन नाटककारों की तरह मिथक–ऐतिहासिक प्रसंगों पर आधुनिकता तथा युग–यथार्थ आरोपण का कोई आग्रहशील प्रयास नहीं किया है। इस नाट्य कला में भीष्म साहनी की वास्तविक शक्ति निहित है और यही उनके नाटकों की सहजता व सरलता भी है।

रूढ़िवादी दृष्टि अंधविश्वासों, धार्मिक आडंबर, सामाजिक परंपराओं और कर्मकांड आदि को लेकर राजनीतिक क्रूर ताकतों, सत्तावादी मानसिकता और दमनकारी प्रवृत्तियों के प्रति जो तीखी प्रतिक्रिया और आक्रामक शक्ति मिलती है, वह प्रेरक स्रोत है कबीर की सघनता और पौरुष को स्थापित करने का। नाटक की भाषा और रंगभाषा दोनों के मुहावरे को ढालने की क्षमता उनमें है।

'कबिरा खड़ा बजार में' में नाटककार के संवेदनात्मक शिल्प के कई स्तर हैं, जैसे– युगीन समाज की धर्मांधता के कारण उत्पन्न संवेदना, सत्ता की तानाशाही के कारण उत्पन्न संवेदना, बाह्याचार की विरोध वृत्ति से उत्पन्न संवेदना, आर्थिक दैन्यता से निष्पन्न संवेदना, प्रासंगिकता संदर्भित कबीर की संवेदना आदि। कबीर के विलक्षण व्यक्तित्व को मुखरित करते हुए भीष्म साहनी ने सहजीवियों की संवेदनाओं को बखूबी साकार किया है। कबीर–सा मुंहफट एवं दो–टूक बात करने वाला दूसरा संत कवि मध्ययुग में नहीं हुआ। हिन्दू–मुस्लिम धर्मांधता के परिणामस्वरूप व्याप्त विरोध वृत्ति से संबंधित अनेक संवेदनाएं नाटक–प्रसंगों में उपलब्ध हैं।

धर्म और राजनीति की संयुक्त स्थापित सत्ता निष्कासित होने पर भी कबीर की विचार–चेतना एवं उदात्त मानवीय भावनाओं–संवेदनाओं का दमन संभव नहीं होता। भीष्म साहनी ने 'कबिरा खड़ा बजार में' के अंतिम दृश्य में इसका स्पष्टीकरण किया है। मध्यकालीन सामाजिक चेतना में विद्रोही उद्घोषक बने कबीर की वाणी आज भी उतनी ही प्रासंगिक है जितनी तब थी। व्यवस्थापन में धर्म व सत्ता के खोखलेपन एवं आंतक के खिलाफ कबीर के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलने वाले रैदास, बशीरा, पीपा पीड़ित–शोषित किंतु प्रतिबद्ध जनशक्ति का संकेत देते हैं।

कबीर का किसी ऐसे दीन–धर्म में विश्वास नहीं था जो मनुष्य को आपस में पृथक करता हो, परस्पर दुश्मन बनाता हो। हिन्दू और मुसलमान में भेद करने वाले मजहब का

त्याग कर देने वाले कबीर इंसानियत के विश्वासी हैं, मानव को केवल इन्सान के रूप में देखने के अभिप्सु। 'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक में भीष्म साहनी ने अन्याय, शोषण और बाह्याडंबरों के विरुद्ध संघर्षरत मध्यकालीन संत कवि कबीर के तेजस्वी व्यक्तित्व का चित्रण किया है जो अपनी संदर्भ सापेक्षता में वर्तमान में संप्रदायवाद, प्रांतीयता, धार्मिक–सामाजिक संकीर्णताओं, जातिवाद आदि आधारों पर लड़ते–भिड़ते समाज की विषमताओं की प्रतिरोधी शक्तियों का मिथकीय संकेत देकर अपनी युगीन सार्थकता को प्रमाणित करता है।

कबीर में जो तेवर है, जो प्रत्यक्ष जीवंतता है, जो जनवाणी है– वह नाट्य लेखन और रंगमंच दोनों को अभिप्रेरित करती है। हिन्दी साहित्य में कबीर का व्यक्तित्व संघर्ष, विद्रोह, पौरुष, यथार्थ की पक्षधरता का और मानवीय मूल्यों की स्थापना का क्रांतिकारी व्यक्तित्व रहा है। एक ऐसा व्यक्तित्व जिसमें मानवीय संवेदना, समानता आधारित दर्शन एवं प्रगतिशील चेतना को प्रतिष्ठित किया और निर्भीकता से जटिलतम प्राचीन समस्याओं, रूढ़ियों, अंधविश्वासों, पाखंड, सांप्रदायिकता का खुला विरोध किया। संभवतः इसीलिए कबीर कई नाटकों के आधार–स्तंभ बने।

मध्ययुग में व्याप्त सामाजिक धर्मांधता की चरमसीमा को साकार 'कबिरा खड़ा बजार में' करता है तो सियासती शतरंजी बिसात से भी अपनी आंखें नहीं मूंदता। अपनी–अपनी खिचड़ी पकाने के लिए जघन्य से जघन्यतम कार्य करने में न हिचकिचाने वाले पंडितों–मौलवियों के नग्न यथार्थ के प्रतिपादन के साथ ही यह नाटक कबीर को राजसत्ता से जूझते हुए भी दिखाता है।

भीष्म साहनी ने 'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक में कबीर युगीन समाज में फैली धर्मांधता, मजहबी कट्टरता जनित बाह्याचारों का प्रतिरोध कर स्वस्थ समाज निर्माण पर जोर दिया है। धर्म के ठेकेदारों द्वारा कट्टरता व बाह्याचारों में घसीटी जा रही जनता को देखकर कबीर का हृदय द्रवित हो उठा था। इसीलिए उनकी वाणी में हिन्दू–मुस्लिम दोनों में व्याप्त विकृतियों पर कुठाराघात होता है। नाटककार ने तात्कालिक धर्मांधता, अनाचार, तानाशाही आदि के सामाजिक परिप्रेक्ष्य में कबीर के निर्भीक, प्रखर, सत्यान्वेषी व्यक्तित्व को चित्रित किया है।

कबीर की रचनाएं प्रायः दृश्य को अर्थ भी देती हैं और एक मोड़ भी। उनमें मानवीय संवेदना है और व्यंग्य भी। 'कबिरा खड़ा बजार में' अपनी कल्पना शक्ति, सृजन और कला में हिन्दी के रचनात्मक–समसामयिक नाटकों की श्रेणी में आता है। भीष्म साहनी की दृष्टि में कबीर की आध्यात्मिक दृष्टि और सामाजिक चेतना कोई दूरी या विरोध नहीं है। वे पूरक हैं और परस्पर अभिन्न रूप से संबद्ध हैं। नाटककार ने खड़ी बोली, भोजपुरी व अवधी का मिला–जुला रूप प्रस्तुत किया है, क्योंकि ऐसा होने से ही बात बन सकती थी।

3.6 मुख्य शब्दावली

- **नेजा** : तराजू।
- **परिवेश** : वातावरण।
- **यथार्थता** : सच्चाई।

- **प्रभात** : सुबह।
- **मिथ्या** : झूठा।
- **तबका** : वर्ग।
- **आडंबर** : दिखावा।
- **बूककर** : पीस कर।
- **जड़ता** : मूर्खता।
- **अवाम** : जनता।
- **अंकुश** : नियंत्रण।

3.7 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1. हानूश (1977 में)
2. कबीर के समूचे जीवन पर
3. (क) सही, (ख) गलत
4. कबीर कालीन भी है और समकालीन भी
5. अन्याय, शोषण और बाह्याडंबरों के विरुद्ध संत कबीर के तेजस्वी व्यक्तित्व को।
6. (क) सही, (ख) गलत
7. रचनात्मक–समसामयिक नाटकों की श्रेणी में।
8. खड़ी बोली, भोजपुरी व अवधी का मिला–जुला रूप।
9. (क) गलत, (ख) सही

3.8 अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. भीष्म साहनी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर संक्षिप्त में प्रकाश डालिए।
2. एक नाटककार के रूप में भीष्म साहनी की विशेषताएं बताइए।
3. 'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक का सार–तत्व लिखिए।
4. 'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक में किन–किन कुरीतियों का वर्णन किया गया है?
5. प्रस्तुत नाटक में किस भाषा शैली का प्रयोग हुआ है? स्पष्ट कीजिए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. भीष्म साहनी की नाट्य कला का विस्तार से वर्णन कीजिए।
2. 'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक के प्रतिपाद्य को व्याख्यायित कीजिए।

3. 'कबिरा खड़ा बजार में' नाटक का समीक्षात्मक विश्लेषण कीजिए।

4. सामाजिक परिप्रेक्ष्य में कबीर की भूमिका को स्पष्ट कीजिए।

5. वर्तमान परिप्रेक्ष्य में 'कबिरा खड़ा बजार में' की प्रासंगिकता पर प्रकाश डालिए।

3.9 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1. विवेक द्विवेदी, *भीष्म साहनी : उपन्यास साहित्य,* वाणी प्रकाशन, दिल्ली।

2. भीष्म साहनी, *कबीर खड़ा बजार में,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

3. डॉ. के. अजिता, *नाटककार भीष्म साहनी,* जवाहर पुस्तकालय, मथुरा।

4. डॉ. सुरैया शेख, *नाटककार भीष्म साहनी,* विनय प्रकाशन, कानपुर।

इकाई 4 : कहानी – II

4.0 परिचय

हिन्दी साहित्य की सर्वाधिक लोकप्रिय विधा कहानी है। यद्यपि कहानी अपने आधुनिक रूप में पश्चिम की देन है किंतु कथा–कहानी की परंपरा प्रत्येक देश में बड़ी पुरानी है। मनोरंजन एवं उपदेश इन दो तत्वों को केंद्रित करके कहानी आदिम काल से ही कही सुनी जाती रही है। इसका संबंध अंग्रेजी की छोटी कहानी से बताया गया है। हिन्दी कहानी के उद्‌गम के स्रोत–'वेदों,' 'पुराणों', 'रामायण', 'महाभारत', 'जैन गाथाओं, 'जातक कथाओं', 'हितोपदेश', 'पंचतंत्र–कथाओं', 'वेताल–पंचविंशति', 'सिंहासनद्वात्रिंशिका', 'शुक–सप्तति', 'बृहत–कथा', 'कथा सरित सागर' में मिलते हैं। वस्तुतः हिन्दी कहानी के निर्माण में एक ओर भारतीय आख्यायिकाओं की परंपरा सहायक एवं प्रेरणा–स्रोत के रूप में कार्य करती है, दूसरी ओर पाश्चात्य रूप–विधान का उस पर पूरा प्रभाव परिलक्षित होता है। हिन्दी कहानियों का प्रारंभ अंग्रेजी और बांग्ला के प्रभाव एवं माध्यम से हुआ है। वाशिंगटन इरविंग, अलेक्जेंडर पुश्किन, एडगर एलेन पो, किपलिंग, गाल्सवर्दी, एच.जी.वेल्स, अरनाल्ड बेनेट, मोपासां, चेखव आदि पाश्चात्य कहानीकारों का प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रभाव हिन्दी कहानी के विकास में सहायक हुआ है।

इस इकाई में हिन्दी की कुछ सर्वश्रेष्ठ कहानियों जैसे– जयशंकर प्रसाद कृत 'पुरस्कार', प्रेमचंद की 'पूस की रात', यशपाल द्वारा रचित 'परदा' और उषा प्रियंवदा की 'वापसी' के मूल पाठ के सहित समीक्षात्मक विश्लेषण किया गया है।

4.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- जयशंकर प्रसाद की कालजयी रचना 'पुरस्कार' का विश्लेषणात्मक अध्ययन कर पाएंगे;
- यथार्थवादी लेखक प्रेमचंद द्वारा रचित कहानी 'पूस की रात' पर मनोवैज्ञानिक रूप से विचार कर पाएंगे;
- मध्यमवर्गीय परिवार के सत्य को दर्शाती यशपाल कृत मार्मिक कहानी 'परदा' की मूल संवेदना की समीक्षा कर पाएंगे;
- उषा प्रियंवदा द्वारा रचित कहानी 'वापसी' के विभिन्न पहलुओं को समझ पाएंगे।

4.4 परदा : यशपाल

यशपाल जी आधुनिक हिन्दी कहानी साहित्य में प्रगतिवादी खेमे के प्रतिनिधि कहानीकार माने जाते हैं। वे मार्क्स के विचारों से सर्वाधिक प्रभावित रहे हैं इसीलिए वे समाजवादी दृष्टिकोण के पोषक हैं। उन्होंने कहानी के केवल अपने विचारों का संवाहक माना है। अतः उनकी कहानियां लक्ष्यात्मक एवं सोद्देश्य लिखी गई हैं। उन्होंने वर्षों तक अनवरत साहित्य साधना एवं सेवा की है और बहुत कुछ लिखा है। वे 'समष्टि हित' में 'व्यक्तिहित' के सिद्धांत के नीति सम्मत मानते हैं इसी कारण उनकी कहानियों में सामाजिक प्रतिबद्धता अधिक दिखाई देती है।

यशपाल जी प्रेमचंदोत्तर युगीन प्रमुख कहानीकार हैं जिन्होंने हिन्दी कहानी को राजनैतिक चिन्तन का धरातल और अर्थ तान्त्रिक व्यवस्था के प्रति एक जाग्रत दृष्टिकोण प्रदान किया है और पूंजीवाद व हर प्रकार के शोषण के विरोध में प्रेमचंद से भी आगे बढ़कर खुला विद्रोह किया है। उनका उपन्यास 'झूठा सच' विश्व के उत्कृष्टतम उपन्यासों में से एक माना जाता है।

4.4.1 व्यक्तित्व एवं कृतित्व

यथार्थवादी कहानीकारों में प्रेमचंद के बाद यशपाल का नाम हिन्दी कहानी की विकास यात्रा में आदरपूर्वक लिया जाता है। यशपाल का जन्म सन् 1903 में कांगड़ा के पहाड़ी प्रदेश में हुआ था। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा कांगडी गुरुकुल में हुई थी। वे लाहौर के डी.ए.वी. स्कूल में पढ़े। बी.ए. परीक्षा उत्तीर्ण की। इनकी माता आर्य समाजी विचारधारा से प्रभावित थीं। वे चाहती थीं, पुत्र भी इसी विचारधारा का पोषक बने इसलिए उन्होंने बालक यशपाल को शिक्षा के लिए गुरुकुल कांगड़ी भेज दिया। उनके अन्तर्मन में वैचारिक संघर्ष की शुरुआत आर्य समाज में हुई। गुरुकुल कांगड़ी में रहते हुए विदेशी दासता के विरुद्ध तीव्र आक्रोश और उसे उखाड़ फेंकने की चिनगारी यहीं उपजी। स्वाधीनता आन्दोलन के तत्कालीन आंदोलन के प्रभाव ने उनके मन में उपजी क्रान्ति की चिनगारी को हवा देकर प्रज्वलित करने का कार्य किया।

अंग्रेजी साम्राज्यवाद के विरुद्ध गांधी जी के असहयोग आन्दोलन से वे कुछ दिन जुड़े रहे लेकिन आर्य समाजी वातावरण और गांधीजी की अहिंसावादी विचारधारा उन्हें अधिक न बांध सके। लाहौर के नेशनल कॉलेज में प्रवेश करने के पश्चात् भगतसिंह और सुखदेव आदि क्रान्तिकारियों के सान्निध्य में आने पर मन में उपजी क्रान्ति की चिनगारी ज्वाला का रूप ग्रहण करती चली गई। सन् 1921 के बाद वे सशस्त्र क्रान्तिकारी आन्दोलन में भागीदारी निभाने लगे थे।

जेल से मुक्त होने के बाद उन्होंने 'विप्लव' नामक मासिक पत्र निकालना शुरू कर दिया। इसके अतिरिक्त उन्होंने 'खताश' और 'नया पथ' का भी सम्पादन किया।

अपनी रचनाओं के मूलभूत सूत्र के विषय में कहते हैं–"व्यक्ति और समाज का जीवन परम्परागत नैतिक धारणाओं और मान्यताओं का अनुसरण करने के लिए नहीं है, समाज की नैतिक मान्यताओं का प्रयोजन सामाजिक व्यवस्था में और समाज के उत्तरोत्तर विकास में सहायक होना है। समाज की परिस्थितियों और जीवन–निर्वाह के तरीकों में परिवर्तन स्वीकार करके अतीत में स्वीकृत मान्यताओं को अपरिवर्तनीय मानने का आग्रह संभव नहीं हो सकता।"

26 दिसम्बर, 1976 को लखनऊ में उनका निधन हो गया।

कृतित्व

यशपाल जी ने साहित्य सृजन की शुरुआत कहानी के रूप में की थी। यशपाल ने सन् 1938 से मृत्युपर्यंत तक लगभग 40 वर्षों तक साहित्य–सेवा की और लगभग 200 से भी अधिक कहानियां लिखीं। इसकी सभी कहानियां सामाजिक समस्याओं पर ही आधारित हैं, अतः इनकी कहानियों में सामाजिक चेतना जागरूक है। इनकी कहानियां चार श्रेणी में रखी जा सकती हैं–

1. सामाजिक,
2. आर्थिक,
3. वैयक्तिक
4. राजनीतिक।

सामाजिक कहानियों के अन्तर्गत व्यक्ति–स्वातन्त्र्य, विधवा–विवाह समस्या, प्रेम और विवाह, मुक्त यौन सम्पर्क, परिवार नियोजन आदि आती है। अर्थ वैषम्य के अन्तर्गत मुनाफा खोरी, चोरबाजारी, बेरोजगारी, आदि का चित्रण करते हुए समाजवादी व्यवस्था में ही इनका समाधान बताते हैं।

डॉ. लक्ष्मण दत्त गौतम के अनुसार–"यशपाल यह मानकर चलते हैं कि नारी दरअसल समाज की संयोजक और व्यवस्थापक है। पुरुष समाज–निर्माण और सुव्यवस्था के लिए आभारी है।" उन्होंने नारी स्वातन्त्र्य को आवश्यक माना है। उनकी दृष्टि में विवाह पवित्र बन्धन नहीं, बल्कि एक आदर्श मित्र व प्रेमी का सम्बन्ध है। यशपाल ने अपनी रचनाओं में बहुविवाह, वृद्ध विवाह और अनमेल विवाह की घोर निन्दा की है।

आर्थिक विषमता को उद्घाटित करने वाली इनकी कहानियां हैं–'फूल की चोरी', 'चार आने', 'कर्म–फल', अभिशप्त आदि। 'खच्चर और आदमी' इनकी अनूठी और अनोखी कहानी है जिसमें धार्मिक पाखंडीपन और अंधविश्वास पर कटु व्यंग्य है।

यशपाल की कहानियों में राष्ट्र के राजनीतिक, सामाजिक व वैयक्तिक जीवन का सुस्पष्ट अंकन हुआ है और इस प्रकार यथार्थता के धरातल पर सामाजिक चेतना का सशक्त व सजीव चित्रण सम्भव हो सका है।

अपनी रचनाओं में इन्होंने जीवन की ठोस वास्तविकताओं, जटिलताओं, काल्पनिकता तथा विचारधारा का समन्वय प्रस्तुत करते हुए कहानियों का निर्माण किया। आगे चलकर यशपाल जी उपन्यासकार के रूप में बहुचर्चित हुए। 'झूठा सच' उपन्यास उनकी कृति का आधारस्तम्भ बना और हिन्दी साहित्य ही नहीं, पाश्चात्य जगत के उपन्यासों में ख्याति अर्जित किया। औपन्यासिक विधान में यशपाल जी का चिन्तन क्रान्तिकारी विचार तीव्र प्रखरता के साथ उभरकर सामने अपने चिन्तन को विचारधारा को प्रकट करने के लिए ही उन्होंने निबन्ध लेखन की विधा को स्वीकार कर लिया। इनकी कहानियों की सूची लम्बी है, जैसा कि यह पहले ही बुलाया जा चुका है कि इनकी कहानियों को चार श्रेणी में रखा गया है।

यशपाल जी का समूचा कहानी लेखन समकालीन विसंगतियों, विकृतियों और दुरभिसंधियों के विरुद्ध लड़ाई के हथियार की तरह सामने आया है। उनके कथा साहित्य की घटनाएं जड़, सांस्कृतिक–सामाजिक परम्पराओं और भ्रष्ट व्यवस्था की पोल खोलती हैं। समूची घटनाएं सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक अन्तर्विरोधों के परिपार्श्व में उभरती हैं। व्यवस्था–विरोधी शक्तियों से उनका साहित्य लड़ता–सा प्रतीत होता है।

4.4.2 परदा : मूलपाठ

चौधरी पीरबख्श के दादा चुंगी के महकमे में दरोगा थे। आमदनी अच्छी थी। एक, छोटा, पर पक्का मकान भी उन्होंने बनवा लिया। लड़कों को पूरी तालीम दी। दोनों लड़के एण्ट्रेन्स पास कर रेलवे और डाकखाने में बाबू हो गये। चौधरी साहब की जिंदगी में लड़कों के ब्याह और बाल–बच्चे भी हुए, लेकिन ओहदे में खास तरक्की न हुई, वही तीस और चालीस रुपये माहवार का दर्जा।

अपने जमाने की याद कर चौधरी साहब कहते– 'वे भी क्या वक्त थे! लोग मिडिल पास कर डिप्टी–कलक्टरी करते थे और आजकल की तालीम है कि एण्ट्रेन्स तक अंग्रेजी पढ़कर भी लड़के बीस–चालीस से आगे नहीं बढ़ पाते।' बेटे को ऊंचे ओहदों पर देखने का अरमान लिए ही उन्होंने आंखें मूंद लीं।

माशा–अल्लाह, चौधरी साहब के कुनबे में बरक्कत हुई। चौधरी फजलकुरबान रेलवे में काम करते थे। अल्लाह ने उन्हें चार बेटे और तीन बेटियां दीं। चौधरी इलाहीबख्श डाकखाने में थे। उन्हें भी अल्लाह ने चार बेटे और दो लड़कियां बख्शीं।

चौधरी खानदान अपने मकान को हवेली पुकारता था। नाम बड़ा देने पर भी जगह तंग ही रही। दरोगा साहब के जमाने में जनान भीतर था और बाहर बैठक में मोढ़े पर बैठ नैचा गुड़गुड़ाया करते। जगह की तंगी की वजह से उनके बाद बैठक भी जनाने में शामिल हो गई और घर की ड्योढी पर परदा लटक गया। बैठक न रहने पर भी घर की इज्जत का ख्याल था, इसलिए पर्दा बोरी के टाट का नहीं, बढ़िया किस्म का रहता।

जाहिरा दोनों भाइयों के बाल–बच्चे एक ही मकान में रहने पर भी भीतर सब अलग–अलग था। ड्योढ़ी का पर्दा कौन भाई लाये? इस समस्या का हल इस तरह हुआ कि दरोगा साहब के जमाने की पलंग की नई दरियां एक के बाद एक ड्योढ़ी में लटकाई जाने लगीं।

तीसरी पीढ़ी के ब्याह–शादी होने लगे। आखिर चौधरी खानदान की औलाद को हवेली छोड़कर दूसरी जगहें तलाश करनी पड़ीं। चौधरी इलाहीबख्श के बड़े साहबजादे एण्ट्रेन्स पास कर डाकखाने में बीस रुपये की क्लर्की पा गये। दूसरे साहबजादे मिडिल पास कर अस्पताल में कम्पाउण्डर बन गये। ज्यों–ज्यों जमाना गुजरता जाता, तालीम और नौकरी दोनों मुश्किल होती जातीं। तीसरे बेटे होनहार थे। उन्होंने वजीफा पाया। जैसे–तैसे मिडिल कर स्कूल में मुदर्रिस हो देहात चले गये।

चौथे लड़के पीरबख्श प्राइमरी से आगे न बढ़ सके। आजकल की तालीम मां–बाप पर खर्च के बोझ के सिवाय और है क्या? स्कूल की फीस हर महीने और किताबों, नक्शों के लिए रुपये–ही–रुपये।

चौधरी पीरबख्श का भी ब्याह हो गया। मौला के करम से बीवी की गोद भी जल्दी ही भरी। पीरबख्श ने रोजगार के तौर पर खानदान की इज्जत के ख्याल से एक तेल की मिल में मुंशीगिरी कर ली। तालीम ज्यादा नहीं तो क्या, सफेदपोश खानदान की इज्जत का पास तो था। मजदूरी और दस्तकारी उनके करने की चीजें न थीं। चौकी पर बैठते। कलम–दवात का काम था।

बारह रुपया महीना अधिक नहीं होता। चौधरी पीरबख्श को मकान सितवा की कच्ची बस्ती में लेना पड़ा। मकान का किराया दो रुपये था। आसपास गरीब और कमीने लोगों की बस्ती थी। कच्ची गली के बीचोंबीच, गली के मुहाने पर लगे कमेटी के नल से टपकते पानी की काली धार बहती रहती, जिसके किनारे घास उग आई थी। नाली पर मच्छरों और मक्खियों के बादल उमड़ते रहते। सामने रमजानी धोबी की भट्ठी थी, जिसमें से धुआं और सज्जी मिले उबलते कपड़ों की गंध उड़ती रहती। दायीं और बीकानेरी मोचियों के घर थे। बायीं ओर वर्क–शाप में काम करने वाले कुली रहते।

इस सारी बस्ती में चौधरी पीरबख्श ही पढ़े–लिखे सफेदपोश थे। सिर्फ उनके ही घर की ड्योढ़ी पर पर्दा था। सब लोग उन्हें चौधरीजी, मुंशीजी कहकर सलाम करते। उनके घर की औरतों को कभी किसी ने गली में नहीं देखा। लड़कियां चार–पांच बरस तक किसी काम–काज से बाहर निकलतीं और फिर घर की आबरू के ख्याल से उनका बाहर निकलना मुनासिब न था। पीरबख्श खुद ही मुस्कुराते हुए सुबह–शाम कमेटी के नल से घड़े भर लाते।

चौधरी की तनख्वाह पन्द्रह वर्ष में बारह से अट्ठारह हो गई। खुदा की बरक्कत होती है, तो रुपये–पैसे की शक्ल में नहीं, आस–औलाद की शक्ल में होती है। पन्द्रह वर्ष में पांच बच्चे हुए। पहले तीन लड़कियां बाद में दो लड़के।

दूसरी लड़की होने को थी तो पीरबख्श की वाल्दा मदद के लिए आईं। वालिद साहब का इन्तकाल हो चुका था। दूसरा कोई भाई वाल्दा की फिक्र करने आया नहीं, वे छोटे लड़के के ही यहां रहने लगीं।

जहां बाल–बच्चे और घर–बाहर होता है, सौ किस्म की झंझटें होती ही हैं। कभी बच्चे को तकलीफ है, तो कभी जच्चा को। ऐसे वक्त में कर्ज की जरूरत कैसे न हो? घर–बार हो, तो कर्ज भी होगा ही।

मिल की नौकरी का कायदा पक्का होता है। हर महीने की सात तारीख को गिनकर तनख्वाह मिल जाती है। पेशगी से मालिक को चिढ़ है। कभी बहुत जरूरत पर ही मेहरबानी करते। जरूरत पड़ने पर चौधरी घर की कोई छोटी–मोटी चीज गिरवी रखकर उधार ले आते। गिरवी रखने से रुपये के बारह आने ही मिलते। ब्याज मिलाकर सोलह आने हो जाते और फिर चीज के घर लौटकर आने की सम्भावना न रहती।

मोहल्ले में चौधसी पीरबख्श की इज्जत थी। इज्जत का आधार था घर के दरवाजे पर लटका पर्दा। भीतर जो हो, पर्दा सलामत रहता। कभी बच्चों की खींच–खांच या बेदर्द हवा के झौंकों से उसमें छेद हो जाते, तो परदे की आड़ से जनाने हाथ सुई–धागा ले उसकी मरम्मत कर देते।

दिनों का खेल! मकान की ड्योढी के किवाड़ गलते–गलते बिल्कुल गल गये। कई दफे कसे जाने से पेच टूट गये और सुराख ढीले पड़ गये। मकान–मालिक सुरजू पाण्डे को उसकी फिक्र न थी। चौधरी कभी जाकर कहते–सुनते तो उत्तर मिलता– 'कौन बड़ी रकम थमा देते हो? दो रूपल्ली किराया और वह भी छः–छः महीने का बकाया। जानते हो लकड़ी का क्या भाव है। न हो मकान छोड़ जाओ।' आखिर किवाड़ गिर गये। रात में चौधरी उन्हें जैसे–तैसे चौखट से टिका देते। रात–भर दहशत रहती कि कहीं कोई चोर न आ जाये।

मोहल्ले में सफेदपोशी और इज्जत होने पर भी चोर के लिए घर में कुछ न था। शायद एक भी साबित कपड़ा या बरतन चोर को ले जाने के लिए न मिलता। पर चोर तो चोर है। छीनने के लिए कुछ भी न हो, तो भी चोर का डर तो होता ही है। वह चोर जो ठहरा!

चोर से ज्यादा फिक्र थी आबरू की। किवाड़ रहने पर पर्दा ही आबरू का रखवारा था। वह पर्दा भी तार–तार होते–होते एक रात आंधी में किसी भी हालत में लटकने लायक न रह गया। दूसरे दिन घर की एकमात्र पुश्तैनी दरी दरवाजे पर लटक गई। मोहल्ले वालों ने देखा

और चौधरी को सलाह दी–'अरे चौधरी, इस जमाने में दरी को यों काहे खराब करोगे? बाजार से लाकर टाट का टुकड़ा न लटका दो!' पीरबख्श टाट की कीमत भी आते–जाते कई दफा पूछ चुके थे। दो गज टाट आठ आने से कम में न मिलता था। हंसकर बोले– 'होने दो, क्या है? हमारे यहां पक्की हवेली में भी ड्योढ़ी पर दरी का ही पर्दा रहता था।'

कपड़े की महंगी के इस जमाने में घर की पांचों औरतों के शरीर से कपड़े जीर्ण होकर यों गिर रहे थे, जैसे पेड़ अपनी छाल बदलते हैं; पर चौधरी साहब की आमदनी से दिन में एक दफे किसी तरह पेट भर सकने के लिए आटे के अलावा कपड़े की गुंजाइश कहां? खुद उन्हें नौकरी पर जाना होता। पायजामे में जब पैबन्द संभालने की ताब न रही, मारकीन का एक कुर्त्ता–पायजामा जरूर हो गया, पर लाचार थे।

गिरवी रखने के लिए घर में जब कुछ भी न हो, गरीब का एकमात्र सहायक है पंजाबी खान। रहने की जगह भर देखकर ही वह रुपया उधार दे सकता है। दस महीने पहले गोद के लड़के बरकत के जन्म के समय पीरबख्श को रुपये की जरूरत आ पड़ी। कहीं और कोई प्रबन्ध न हो सकने के कारण उन्होंने पंजाबी खान बबर अलीखां से चार रुपये उधार ले लिए थे।

बबर अलीखां का रोजगार सितवा के उस कच्चे मुहल्ले में अच्छा–खासा चलता था। बीकानेरी मोची, वर्कशाप के मजदूर और कभी–कभी रमजानी धोबी सभी बबर मियां से कर्ज लेते रहते। कई दफे चौधरी पीरबख्श ने बबरअली को कर्ज और सूद की किश्त न मिलने पर अपने हाथ के डण्डे से ऋणी का दरवाजा पीटते देखा था। खान को वे शैतान समझते थे, लेकिन लाचार हो जाने पर उसी की शरण लेनी पड़ी। चार आना रुपया महीना पर चार रुपया कर्ज लिया। शरीफ खानदानी, मुसलमान भाई का ख्याल कर बबरअली ने एक रुपया माहवार की किश्त मान ली। आठ महीने में कर्ज अदा होना तय हुआ।

खान की किश्त न दे सकने की हालत में अपने घर के दरवाजे पर फजीहत हो जाने की बात का ख्याल कर चौधरी के रोएं खड़े हो जाते। सात महीने फाका करके भी वे किसी तरह से किश्त देते चले गये; लेकिन जब सावन में बरसात पिछड़ गयी और बाजरा भी रुपये का तीन सेर मिलने लगा, किश्त देना संभव न रहा। खान सात तारीख की शाम को ही आया। चौधरी पीरबख्श ने खान की दाढ़ी छू और अल्ला की कसम खा एक महीने की मुआफी चाही। अगले महीने एक का सवा देने का वायदा किया। खान टल गया।

भादों में हालत और भी परेशानी की हो गई। बच्चों को मां की तबीयत रोज–रोज गिरती जा रही थी। खाया–पिया उसके पेट में न ठहरता। पथ्य के लिए उसको गेहूं की रोटी देना जरूरी हो गया। गेहूं मुश्किल से रुपये का सिर्फ़ ढाई सेर मिलता। बीमार का जी ठहरा, कभी प्याज के टुकड़े या धनिये की खुशबू के लिए ही मचल जाता। कभी पैसे की सौंफ, अजवायन, काले नमक की ही जरूरत हो, तो पैसे की कोई चीज मिलती ही नहीं। बाजार में तांबे का नाम ही नहीं रह गया। नाहक इकन्नी निकल जाती है। चौधरी को दो रुपये महंगाई–भत्ते के मिले; पर पेशगी लेते–लेते तनख्वाह के दिन केवल चार ही रुपये हिसाब में निकले।

बच्चे पिछले हफ्ते लगभग फाके से थे। चौधरी कभी गली से दो पैसे की चौराई खरीद लाते, कभी बाजरा उबाल सब लोग कटोरा–कटोरा भर पी लेते। बड़ी कठिनता से मिले चार रुपये में से सवा रुपया खान के हाथ में घर देने की हिम्मत चौधरी की न हुई।

मिल से घर लौटते समय वे मंडी की ओर टहल गये। दो घण्टे बाद जब समझा, खान टल गया होगा तो अनाज की गठरी ले वे घर पहुंचे। खान के भय से दिल डूब रहा था, लेकिन दूसरी ओर चार भूखे बच्चों, उनकी मां, दूध न उतर सकने के कारण सूखकर कांटा हो रहे गोद के बच्चे और चलने–फिरने से लाचार अपनी जईफ मां की भूख से बिलबिलाती सूरतें आंखों के सामने नाच जातीं। धड़कते हुए हृदय से वे कहते जाते–'मौला सब देखता है, खैर करेगा।'

सात तारीख की शाम को असफल हो खान आठ की सुबह खूब तड़के चौधरी के मिल चले जाने से पहले ही अपना डन्डा हाथ में लिए दरवाजे पर मौजूद हुआ।

रात भर सोच–सोचकर चौधरी ने खान के लिए बयान तैयार किया– मिल के मालिक लालाजी चार रोज के लिए बाहर गये हैं। उनके दस्तखत के बिना किसी को भी तनख्वाह नहीं मिल सकी। तनख्वाह मिलते ही वह सवा रुपया हाजिर करेगा। माकूल वजह बताने पर भी खान बहुत देर तक गुर्राता रहा– 'अम वतन चोड़ के परदेश में पड़ा है, ऐसे रुपिया चोड़ देने के वास्ते अम यहां नहीं आया है, अमारा भी बाल–बच्चा है। चार रोज में रुपिया नई देगा, तो अम तुमारा...कर देगा।'

पांचवें दिन रुपया कहां से आ जाता! तनख्वाह मिले अभी हफ्ता भी नहीं हुआ। मालिक ने पेशगी देने से साफ इनकार कर दिया। छठे दिन किस्मत से इतवार था। मिल में छुट्टी रहने पर भी चौधरी खान के डर से सुबह ही बाहर निकल गये। इधर–उधर की बातचीत कर वे कहते– 'अरे भाई, हो तो बीस आने पैसे तो दो– एक रोज के लिए देना। ऐसे ही जरूरत आ पड़ी है।'

उत्तर मिला– 'मियां पैसे कहां इस जमाने में! पैसे का मोल कोई नहीं रह गया। हाथ में आने से पहले ही उधार में उठ गया तमाम।'

दोपहर हो गई। खान आया भी होगा, तो इस वक्त तक बैठा नहीं रहेगा– चौधरी ने सोचा और घर की तरफ चल दिये। घर पहुंचने पर सुना खान आया था और घण्टे–भर तक ड्यौढ़ी पर लटके दरी के परदे को डंडे से ठेल–ठेलकर गाली देता रहा है। परदे की आड़ से खड़ी बी के बार–बार खुदा की कसम खा यकीन दिलाने पर कि चौधरी बाहर गये हैं, रुपया लेने गये हैं, खान गाली देकर कहता– 'नई, बदजात चोर बीतर में चिपा है! अम चार घण्टे में फिर आता है। रुपिया लेकर जायेगा। रुपिया नई देगा, तो उसका खाल उताकर बाजार में बेच देगा।...हमारा रुपिया क्या हराम का है?'

चार घण्टे से पहले ही खान की पुकार सुनाई दी– 'चौधरी!' पीरबख्श के शरीर में बिजली–सी दौड़ गयी और वे बिलकुल निस्सत्त्व हो गये, हाथ–पैर सुन्न और गला खुश्क।

गाली दे, परदे को ठेलकर खान के दुबारा पुकारने पर चौधरी का शरीर निर्जीव–प्राय होने पर भी निश्चेष्ट न रह सका। वे उठकर बाहर आ गये। खान आगबबूला हो रहा था– 'पैसा नहीं देने का वास्ते चिपता है।...' एक–से–एक बढ़ती हुई तीन गालियां एक साथ खान के मुंह से पीरबख्श के पुरखों–पीरों के नाम निकल गयीं। इस भयंकर आघात से पीरबख्श का खानदानी रक्त भड़क उठने के बजाय और भी निर्जीव हो गया। खान के घुटने छू अपनी मुसीबत बता वे मुआफी के लिए खुशामद करने लगे।

खान की तेजी बढ़ गयी। उसके ऊंचे स्वर से पड़ोस के मोची और मजदूर चौधरी के दरवाज़े के सामने इकट्ठे हो गये। खान क्रोध में डंडा फटकारकर कह रहा था– 'पैसा नहीं देना था, लिया क्यों? तनख्वाह किदर में जाता? अरामी अमारा पैसा मारेगा। अम तुमारा खाल खींच लेगा। पैसा नई है, तो घर पर परदा लटका के शरीफजादा कैसे बनता?...तुम अमको बीबी का गैना दो, बर्तन दो, कुछ तो भी दो, अम ऐसे नई जायेगा।'

बिलकुल बेबस और लाचारी में दोनों हाथ उठा खुदा से खान के लिए दुआ मांग पीरबख्श ने कसम खायी– एक पैसा भी घर में नहीं, बर्तन भी नहीं, कपड़ा भी नहीं; खान चाहे तो बेशक उसकी खाल उतारकर बेच ले।

खान और आग हो गया– 'अम तुमारा दुआ क्या करेगा? तुमारा खाल क्या करेगा? उसका तो जूता भी नई बनेगा। तुमारा खाल से तो यह टाट अच्चा।' खान ने ड्योढ़ी पर लटका दरी का पर्दा झपट लिया। ड्योढ़ी से परदा हटने के साथ ही, जैसे चौधरी के जीवन की डोर टूट गयी। वह डगमगाकर जमीन पर गिर पड़े।

इस दृश्य को देख सकने की ताब चौधरी में न थी, परन्तु द्वार पर खड़ी भीड़ ने देखा– घर की लड़कियां और औरतें परदे के दूसरी ओर घटती घटना के आतंक से आंगन के बीचों–बीच इकट्ठी हो खड़ी कांप रही थीं। सहसा परदा हट जाने से औरतें ऐसे सिकुड़ गयीं, जैसे उनके शरीर का वस्त्र खींच लिया गया हो। वह परदा ही तो घर–भर की औरतों के शरीर का वस्त्र था। उनके शरीर पर बचे चीथड़े उनके एक–तिहाई अंग ढंकने में भी असमर्थ थे।

जाहिल भीड़ ने घृणा और शरम से आंखें फेर लीं। उस नग्नता की झलक से खान की कठोरता भी पिघल गयी। ग्लानि से थूक, परदे को आंगन में वापिस फेंक, क्रुद्ध निराशा में उसने 'लाहौल बिला...' कहा और असफल लौट गया।

भय से चीखकर ओट में हो जाने के लिए भागती हुई औरतों पर दया कर भीड़ छंट गयी। चौधरी बे–सुध पड़े थे। जब उन्हें होश आया, ड्योढ़ी का परदा आंगन में सामने पड़ा था; परन्तु उसे उठाकर फिर से लटका देने का सामर्थ्य उनमें शेष न था। शायद अब इसकी आवश्यकता भी न रही थी। परदा जिस भावना का अवलम्ब था, वह मर चुकी थी।

4.4.3 कथासार

इस कहानी का वैशिष्ट्य उसका यथार्थ चित्रण है। एक निम्न–मध्यमवर्गीय मुस्लिम परिवार की आर्थिक बदहाली का जो चित्रण किया है वह अत्यंत मार्मिक तथा भयावह है। यह वस्तुतः व्यंग्यात्मक कहानी है जिसमें समाज में गरीब होने के कटु यथार्थ को परदे के माध्यम से स्पष्ट किया है।

यशपाल द्वारा लिखित कहानी मध्य वर्ग के परिवार की कहानी है। इसमें कर्ज के मारे चौधरी खानदान के मुखिया की आज की माली हालत का वर्णन बड़े ही प्रभावी ढंग से किया गया है। कर्ज में डूबे चौधरी की मानसिकता और अंतर्द्वंद्व का बड़ा ही लाचारी का चित्र खींचा गया है। घरेलू परेशानियों को भी प्रभावी ढंग से व्यक्त किया गया है। कहानी में परदे की उपयोगिता का बड़ा ही प्रभावी वर्णन किया गया है।

चौधरी पीरबख्श घर के दरवाजे पर लटकते परदे के द्वारा उसके पीछे छिपी परिवार की दयनीय स्थिति को अपनी झूठी प्रतिष्ठा के द्वारा छिपाने का लगातार प्रयास करते हैं। चौधरी पीरबख्श के दादा चुंगी विभाग में दारोगा थे जिस कारण उन्हें अपने परिवार की प्रतिष्ठा बहुत प्रिय थी। टूटे–फूटे अपने एक कमरे के मकान को हवेली कहने वाले चौधरी पीरबख्श की मात्र बारह रुपये की आमदनी थी। सभी उन्हें 'मुंशी जी' कहकर सलाम किया करते थे। परिवार के आठ लोगों का लालन–पोषण करने के लिए उन्हें घर का सामान तक गिरवी रखना पड़ता था। फिर भी अपनी प्रतिष्ठा को झूठ का परदा पहनाए वह बहुत ही गौरवान्वित महसूस करते हैं।

यशपाल ने पीरबख्श के माध्यम से एक परिवार के चीथड़े होते उस व्यंग्यात्मक स्वरूप को चित्रित किया है जिसमें एक परिवार धीरे–धीरे गरीब हो रहा है और टूट रहा है, फिर भी वह अपनी स्थिति को स्वीकार नहीं कर पाया है। यह वर्ग अपनी स्थिति की वास्तविकता से बचने का प्रयास कर रहा है। यहां निम्न मध्यवर्ग की आर्थिक विषमता एक तरह से प्रतिष्ठा के बोझ वतले दबी नजर आती है। जिसे अंत में अपमान ही सहना पड़ता है। उधार लिए रुपये न चुका सकने के कारण पंजाबी खान जब पीरबख्श के घर की आबरू को ढकता एकमात्र परदा भी झटक कर चला जाता है तो पीरबख्श का वह झूठा गौरव भी मिट्टी में मिल जाता है।

समय आदमी को क्या–से–क्या बना देता है– यही इस कहानी का सार बतलाता है। चौधरी खानदान, भरा–पूरा खानदान होता है। कभी नाक पर मक्खी तक भी नहीं बैठने देते थे और आज वक्त ने घर की औरतों तक के परदे को बेपरदा करके रख दिया।

4.4.4 मुख्य अवतरणों की व्याख्या

- अपने जमाने की याद कर चौधरी साहब कहते– 'वे भी क्या वक्त थे! लोग मिडिल पास कर डिप्टी–कलक्टरी करते थे और आजकल की तालीम है कि एण्ट्रेन्स तक अंग्रेजी पढ़कर भी लड़के बीस–चालीस से आगे नहीं बढ़ पाते।' बेटे को ऊंचे ओहदों पर देखने का अरमान लिए ही उन्होंने आंखें मूंद लीं।

संदर्भ– ये पंक्तियां यशपाल द्वारा रचित 'परदा' कहानी से ली गई हैं।

प्रसंग– चौधरी पीरबख्श के दादा चुंगी के महकमे में दरोगा हुआ करते थे। आमदनी अच्छी होने पर उस समय उन्होंने एक पक्का मकान बनवाया था। लड़कों को शिक्षा भी दिला दी थी– सो दोनों लड़के रेलवे और डाकखाने में अच्छी नौकरी पा गए थे। बच्चों की शादी–ब्याह भी किए। सारी जिम्मेदारियां भी निभाईं। मगर नौकरी में तरक्की न हो पाई। उसी समय को चौधरी साहब याद करते रहते हैं।

व्याख्या– चौधरी साहब याद करते हुए कहते हैं कि उस समय में मिडिल पास करके लोग डिप्टी–कलक्टरी की नौकरी पा जाते थे। और आज का दौर ये है कि एन्ट्रेंस तक अंग्रेजी पढ़कर भी खास बड़ी नौकरी नहीं मिल पाती। ये ही सब सोचते–सोचते, परेशान होते–होते महंगाई के मारे बेचारे चौधरी साहब इस दुनिया से चल बसे। कारण, घर की हालत, महंगाई की मार और सीमित आय से बद से बदतर होती जा रही थी।

- इस सारी बस्ती में चौधरी पीरबख्श ही . ` लिखे सफेदपोश । सिर्फ उनके ही घर की ड्योढ़ी पर पर्दा था। सब लोग उन्हें चौधरीजी, मुंशीजी कहकर सलाम करते। उनके घर की औरतों को कभी किसी ने गली में नहीं देखा। लड़कियां चार–पांच बरस तक किसी काम–काज से बाहर निकलतीं और फिर घर की आबरू के ख्याल से उनका बाहर निकलना मुनासिब न था। पीरबख्श खुद ही मुस्कुराते हुए सुबह–शाम कमेटी के नल से घड़े भर लाते।

संदर्भ– पूर्ववत।

प्रसंग– चौधरी पीरबख्श ज्यादा पढ़े–लिखे नहीं थे। सो, एक तेल की मिल में मुंशीगिरी करके घर चलाने पर मजबूर थे।

व्याख्या– चौथे बेटे पीरबख्श प्राइमरी शिक्षा प्राप्त थे। इसीलए मुंशीगिरी की नौकरी पा गए थे। इस सारी बस्ती में वे ही बस पढ़े–लिखे थे। सफेदपोश भी रहते थे। उन्हीं के घर की ड्योढ़ी पर परदा होता था। वरना तो पूरे घर के दरवाजे ही दिखलाई पड़ते थे। बस्ती के लोग उन्हें इज्जत से चौधरी जी, मुंशी जी कहते थे। सलाम बजाते थे। मजाल कि उनके घर की जनानियों को किसी ने गली तक में भी कभी कहीं देखा हो। लड़कियां जब तक चार–पांच बरस की होतीं, तभी तक कामकाज से बाहर निकलती थी, उसके बाद उनको घर की आबरू मानते हुए घर से बाहर जाने की पूरी मनाही होती थीं। ऐसे में चौधरी पीरबख्श ही सुबह–शाम कमेंटी के नल से पानी भर लाते थे। कारण, घर में औरतों का जमावड़ा अधिक था। और उनको घर से बाहर निकलने पर पाबंदी थी। बाकी घर के बाहरी काम भी वे खुद–ब–खुद ही करते थे। चौधरी साहब ने यह मकान दो रुपये किराये पर लिया था। यह सतना की कच्ची बस्ती में था।

- मोहल्ले में चौधरी पीरबख्श की इज्जत थी। इज्जत का आधार था घर के दरवाजे पर लटका पर्दा। भीतर जो हो, पर्दा सलामत रहता। कभी बच्चों की खींच–खांच या बेदर्द हवा के झौंकों से उसमें छेद हो जाते, तो परदे की आड़ से जनाने हाथ सुई–धागा ले उसकी मरम्मत कर देते।

संदर्भ– पूर्ववत।

प्रसंग– इन पंक्तियों में चौधरी साहब की बस्ती में इज्जत होने का कारण बतलाया गया है।

व्याख्या– कहते हैं दबा–ढका अच्छा रहता है। बंद मुट्ठी लाख की, खुल गई तो ख़ाक की। चौधरी साहब की बस्ती में बहुत इज्जत थी। इसका सबसे बड़ा कारण उनके दरवाजे पर लटका परदा सबसे बड़ा कारण था। पूरी बस्ती में और किसी दरवाजे पर परदा नहीं देखने में आता था। यह परदा सब पर भारी पड़ता था। इज्जत आबरू का प्रतीक यह परदा ही तो था। परदा पुराना था। सो यदि बच्चों की खींचतान से या फिर हवा के तेज झोंकों से परदे में छेद आदि हो जाते तो अंदर से ही जनाने हाथ सुई धागे से ठीक करके परदे को परदा ही रहने देते थे। वे हाथ भी परदे की अहमियत को समझते थे।

- गिरवी रखने के लिए घर में जब कुछ भी न हो, गरीब का एकमात्र सहायक है पंजाबी खान। रहने की जगह भर देखकर ही वह रुपया उधार दे सकता है। दस

महीने पहले गोद के लड़के बरकत के जन्म के समय पीरबख्श को रुपये की जरूरत आ पड़ी। कहीं और कोई प्रबन्ध न हो सकने के कारण उन्होंने पंजाबी खान बबर अलीखां से चार रुपये उधार ले लिए थे।

संदर्भ– पूर्ववत।

प्रसंग– कच्ची बस्तियों में जिस प्रकार कर्ज देने वाले दबंग लोग होते हैं, उसी प्रकार सतवा की कच्ची बस्ती में भी पंजाबी खान कर्ज देता था– उसका नाम था– बबर अलीखां। जरूरत पड़ने पर बस्ती के लोग खान से ही कर्ज लेते थे। उसी का वर्णन इन पंक्तियों में है।

व्याख्या– महंगाई के जमाने में सभी का हाथ तंग रहता है– इस बात को पंजाबी खान खूब समझता है। उसी मजबूरी का फायदा उठाता हुआ वह भारी ब्याज पर कर्ज देता है। लेकिन वह जमू रहने वाले आदमी को ही कर्ज देता है– चलते–फिरते आदमी को कर्ज नहीं देता है। दस माह पहले गोद के लड़के के जन्म के समय पीरबख्श को भी पैसे की जरूरत पड़ गई। सो, वे खान के यहां जा पहुंचे और पंजाबी खान से चार रुपये का उधार ले आए। ले तो आए कर्ज लेकिन वे खान की क्रूरता से भी भली भांति परिचित थे। लेकिन मजबूरी भी भारी थी। इसीलिए खान से रुपये कर्ज लेने पड़े।

- गाली दे, परदे को ठेलकर खान के दुबारा पुकारने पर चौधरी का शरीर निर्जीव–प्राय होने पर भी निश्चेष्ट न रह सका। वे उठकर बाहर आ गये। खान आगबबूला हो रहा था– 'पैसा नहीं देने का वास्ते चिपता है।...' एक–से–एक बढ़ती हुई तीन गालियां एक साथ खान के मुंह से पीरबख्श के पुरखों–पीरों के नाम निकल गयीं। इस भयंकर आघात से पीरबख्श का खानदानी रक्त भड़क उठने के बजाय और भी निर्जीव हो गया। खान के घुटने छू, अपनी मुसीबत बता वे मुआफी के लिए खुशामद करने लगे।

संदर्भ– पूर्ववत।

प्रसंग– चौधरी पीरबख्श जब समय पर पंजाबी खान का कर्जा न उतार पाए, तब आए दिन तरह–तरह के बहाने बनाने लगे। लेकिन, एक दिन परेशान होकर खान अवसर देखकर आग बबूला होता हुआ चौधरी की ड्योढ़ी पर आ धमका, अब आगे–

व्याख्या– अनेक बार खान चौधरी के दरवाजे पर आता और खाली हाथों लौट जाता। वह घर की औरतों को चेतावनी दे जाता। लेकिन वे बेचारी क्या करती। उधर चौधरी आंख–मिचौली कर–करके परेशान हो गए। उनकी भी जान पर बन आयी। एक दिन खान गाली देता हुआ आ धमका और दरवाजे को ठेलकर चौधरी को बाहर आने को ललकारने लगा। दूसरी बार में चौधरी मिमयाते हुए कांपते हुए बाहर आए। खान उन पर पूरी तरह बरस रहे थे। चौधरी की जान पर बनी थी। खान, चौधरी के पुरखों–पीरो तक को खरी–खोटी सुनाने से भी नहीं चूक रहा था। इस भयंकर आघात को पीरबख्श सहन नहीं कर पाए और बेजान से हो गए। अन्दर से बिल्कुल टूट–से गए। वे झुके और खान के घुटने छूकर उनसे अपनी मजबूरी जाहिर करने लगे। उसकी मिन्नत करने लगे। कर्ज न चुकाने के लिए गिड़गिड़ाकर क्षमा–याचना करने लगे।

4.4.5 कहानी के तत्वों के आधार पर 'परदा' की समीक्षा

यशपाल की कहानियों में पहाड़ी संस्कृति और पहाड़ों का वर्णन किसी–न–किसी रूप में अवश्य आता है।

कथानक– कथानक की दृष्टि से 'परदा' कहानी एक सशक्त कहानी बन पड़ी है। 'परदा' शब्द को विभिन्न दृष्टिकोणों से व्यक्त किया गया है। परदा है तो सब कुछ है और यदि परदा नहीं तो कुछ भी नहीं। परदे के पीछे बहुत कुछ दबा–ढका–छिपा रहता है। इज्जत–आबरू और वास्तविकता आदि भी। इस कहानी के शीर्षक द्वारा यही सब कुछ दर्शाया गया है।

चरित्र–चित्रण– चरित्र–चित्रण की दृष्टि से कहानी अत्यन्त प्रभावी बन पड़ी है। 'परदा' कहानी में चौधरी खानदान का कभी डंका बजता था, लेकिन वक्त के साथ–साथ सब कुछ सिमट कर परदे की आड़ में आ गया और जब परिस्थितिवश या फिर मुफलिसी के चलते परदा भी हट गया तो चौधरी खानदान की आज की असलियत भी जग जाहिर ऐसी हुई कि जाहिल भीड़ ने घृणा और शरम से आंखें ही फेर लीं।

इस कहानी के सभी पात्र अपने–अपने चरित्र को जीते प्रतीत होते हैं।

कथोपकथन– इस 'परदा' कहानी के कथोपकथन में चौधरी खानदान की असलियत मजबूरन सामने आती दिखायी गई है। कथोपकथन उत्तम कोटि का बन पड़ा है।

देशकाल और वातावरण योजना– देशकाल और वातावरण इस कहानी के प्राण हैं। समय के चलते वातावरण का अच्छा योजना–चित्र तैयार किया गया है।

इन पंक्तियों में वातावरण योजना का कमाल देखा जा सकता है–

खान और आग हो गया– 'अम तुमारा दुआ क्या करेगा? तुमारा खाल क्या करेगा? उसका तो जूता भी नई बनेगा। तुमारा खाल से तो यह टाट अच्चा।' खान ने ड्योढ़ी पर लटका दरी का पर्दा झपट लिया। ड्योढ़ी से परदा हटने के साथ ही, जैसे चौधरी के जीवन की डोर टूट गयी। वह डगमगाकर जमीन पर गिर पड़े।

इस दृश्य को देख सकने की ताब चौधरी में न थी, परन्तु द्वार पर खड़ी भीड़ ने देखा– घर की लड़कियां और औरतें परदे के दूसरी ओर घटती घटना के आतंक से आंगन के बीचों–बीच इकट्ठी हो खड़ी कांप रही थीं। सहसा परदा हट जाने से औरतें ऐसे सिकुड़ गयीं, जैसे उनके शरीर का वस्त्र खींच लिया गया हो। वह परदा ही तो घर–भर की औरतों के शरीर का वस्त्र था। उनके शरीर पर बचे चीथड़े उनके एक–तिहाई अंग ढंकने में भी असमर्थ थे।

जाहिल भीड़ ने घृणा और शरम से आंखें फेर लीं। उस नग्नता की झलक से खान की कठोरता भी पिघल गयी। ग्लानि से थूक, परदे को आंगन में वापिस फेंक, क्रुद्ध निराशा में उसने 'लाहौल बिला...' कहा और असफल लौट गया।

भय से चीखकर ओट में हो जाने के लिए भागती हुई औरतों पर दया कर भीड़ छंट गयी। चौधरी बे–सुध पड़े थे। जब उन्हें होश आया, ड्योढ़ी का परदा आंगन में सामने पड़ा था; परन्तु उसे उठाकर फिर से लटका देने का सामर्थ्य उनमें शेष न थी। शायद अब इसकी आवश्यकता भी न रही थी। परदा जिस भावना का अवलम्ब था, वह मर चुकी थी।

भाषा शैली– कहानी की भाषा शैली देशकाल और वातावरण के अनुरूप बन पड़ी है।

रात भर सोच–सोचकर चौधरी ने खान के लिए बयान तैयार किया– मिल के मालिक लालाजी चार रोज के लिए बाहर गये हैं। उनके दस्तखत के बिना किसी को भी तनख्वाह नहीं मिल सकी। तनख्वाह मिलते ही वह सवा रुपया हाजिर करेगा। माकूल वजह बताने पर भी खान बहुत देर तक गुर्राता रहा– 'अम वतन चोड़ के परदेश में पड़ा है, ऐसे रुपिया चोड़ देने के वास्ते अम यहां नहीं आया है, अमारा भी बाल–बच्चा है। चार रोज में रुपिया नई देगा, तो अम तुमारा...कर देगा।'

भाषा शैली– कहानी की मांग के अनुसार ही सहज, सरल और प्रवाहपूर्ण प्रयुक्त हुई है।

उद्देश्य– 'परदा' कहानी के माध्यम् से जो कहानीकार कहलाना चाहता है– वह कहलाने में वह पूर्णरूपेण सफल रहा है। कहीं भी कहानी अपने उद्देश्य से भटकी नहीं है।

4.5 वापसी : उषा प्रियंवदा

हिन्दी साहित्य में उषा प्रियवंदा भी अपना एक विशेष स्थान रखती हैं। इनकी गणना हिन्दी के उन कथा–कहानीकारों में रही है जिन्होंने अपनी रचनाओं में आधुनिक जीवन को अधिक चित्रित किया। उषा प्रियवंदा ने अपनी रचनाओं में आधुनिक जीवन की छटपटाहट, बौखलाहट, संत्रास और अकेलेपन को अत्यन्त प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया है। इसीलिए भी शायद आधुनिक कथा–कहानीकारों में उषा जी का विशेष स्थान माना जाता रहा है। उनकी रचनाओं के पात्र आधुनिकता के वातावरण में जीवन जीते हुए जिन–जिन परिस्थितियों से जूझते रहते हैं–उन परिस्थितियों को प्रियवंदा जी ने अपनी रचनाओं में जीवंत कर दिखाया है। पाठक उस वातावरण से कहीं–न–कहीं स्वयं को जुड़ा पाता है–यही प्रियवंदा जी की लेखनी की विशेष विशेषता बन जाती है। इनकी चर्चित कहानी हैं–वापसी। उषा जी प्रवासी हिन्दी साहित्यकार हैं। उषा जी के कथा–साहित्य में छठे एवं सातवें दशक के शहरी परिवारों का संवेदनापूर्ण चित्रण मिलता है। उस समय शहरी जीवन में बढ़ती उदासी अकेलेपन, ऊब आदि का आकलन करने में उन्होंने बहुत ही गहरे यथार्थबोध का परिचय दिया है।

4.5.1 व्यक्तित्व एवं कृतित्व

उषा प्रियंवदा का जन्म 24 दिसम्बर, 1930 को कानपुर (उ.प्र.) में हुआ था। इन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से उच्च शिक्षा ग्रहण करने के बाद रिसर्च करने के लिए अमेरिका गईं। उनका ज्यादातर जीवन विदेशी धरती पर बीता। शुरुआती दिनों में वे इलाहाबाद विश्वविद्यालय और दिल्ली विश्वविद्यालय के लेडी श्रीराम कॉलेज में अध्यापन किया। यूरोप के कई विश्वविद्यालयों में अध्यापन कार्य के बाद सेवानिवृत्त हुईं।

उषा प्रियंवदा स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हिन्दी कहानी क्षेत्र में उदित एक प्रमुख कहानीकार हैं। हिन्दी कहानी के वर्ग विभाजन की दृष्टि से 'नई कहानी' की लेखिका हैं।

इनकी कहानियां गहन यथार्थ बोध की परिचायक हैं। जिनमें सामाजिक रूढ़ियों, मृत परंपराओं, जड़ मान्यताओं पर मीठे–मीठे व्यंग्य हैं। उनमें जीवन की ऊब और उदासी उभरी है। आत्मीयता और करुणा के स्वर फूटे हैं और तटस्थ दृष्टि, गहन चिंतन के साथ व्यंग्य और कलात्मक संयम का सुंदर समन्वय हुआ है। इनकी कहानियों में भारतीय पारिवारिक परिवेश यथार्थ के साथ उभरा है जिसमें आधुनिक जीवन का अकेलापन प्रभावपूर्ण ढंग से उभरा है। कथन–शैली में भावुकता है। अलंकरण और चमत्कार–प्रदर्शन इनकी कहानियों में प्रायः नहीं है। विषय–वस्तु के प्रति तटस्थता इनकी कहानी–कला की एक महत्वपूर्ण विशेषता है और इसी में उनकी कला का मूल सौंदर्य छिपा दिखाई देता है।

कृतित्व

आपके कथा संग्रह हैं–'जिंदगी और गुलाब', 'बसंत फिर आयेगा', 'एक कोई दूसरा', 'मेरी प्रिय कहानियां', इनकी लगभग 100 कहानियों में कुछ तो बहुत ही चर्चित कहानियां हैं जिनमें से कुछ हैं–'मछलियां', 'जिंदगी और गुलाब के फूल', 'मोहबंध', 'जाले', 'कच्चे धागे' आदि।

नई कहानी आंदोलन में उषा प्रियंवदा ने की सशक्त उपस्थिति दर्ज करवायी थी। 'वापसी' कहानी ने इन्हें शीर्ष कथाकारों की सूची में विशिष्ट बना दिया। इनकी ज्यादातर कहानियों में मध्यवर्गीय जीवन–स्थितियों का व्यापक चित्रण मार्मिक ढंग से अभिव्यक्त होता है। 'जिन्दगी और गुलाब के फूल', 'छुट्टी का दिन', 'मोहबंध', 'कोई दूसरा नहीं' और 'मछलियां' चर्चित कहानियां हैं। उषा प्रियंवदा ने कई उपन्यास भी लिखे हैं 'पचपन खम्भे लाल दीवारें', 'रुकोगी नहीं राधिका' और 'शेष यात्रा' चर्चित उपन्यास हैं। इन उपन्यासों मध्यवर्गीय मनःस्थितियों के अतिरिक्त प्रवासी जीवन–बोध की अभिव्यक्ति हुई है। अपनी धरती से दूर विस्थापन का दर्द झेलते हुए प्रवासी उषा प्रियंवदा के उपन्यासों में मूल विषय बनकर उभरा है।

अपने सरल और सहज कथा–शिल्प के कारण इनकी कहानियां पाठकों के बीच काफी लोकप्रिय रहीं। आधुनिकता और सामाजिक बदलाव के कारण जीवन में आयी जटिलताएं और बेबसी इनकी कहानियों का मुख्य विषय बना। आधुनिक जीवन की निराशा, कुण्ठा, अकेलापन, निरर्थकताबोध की अभिव्यक्ति उषा प्रियंवदा की कहानियों की विशिष्टता है।

4.5.2 वापसी : मूलपाठ

गजाधर बाबू ने कमरे में जमा सामान पर एक नजर दौड़ाई– दो बक्से, डोलची, बालटी– यह डिब्बा कैसा है, गनेशी? उन्होंने पूछा। गनेशी बिस्तर बांधता हुआ, कुछ गर्व, कुछ दुःख, कुछ लज्जा से बोला, घरवाली ने साथ को कुछ बेसन के लड्डू रख दिए हैं। कहा, बाबूजी को पसन्द थे, अब कहां हम गरीब लोग आपकी कुछ खातिर कर पाएंगे। घर जाने की खुशी में भी गजाधर बाबू ने एक विषाद का अनुभव किया जैसे एक परिचित, स्नेह, आदरमय, सहज संसार से उनका नाता टूट रहा था। कभी–कभी हम लोगों की भी खबर लेते रहिएगा। गनेशी बिस्तर में रस्सी बांधते हुआ बोला।

कभी कुछ जरूरत हो तो लिखना गनेशी! इस अगहन तक बिटिया की शादी कर दो।

गनेशी ने अंगोछे के छोर से आंखे पोछी, अब आप लोग सहारा न देंगे तो कौन देगा! आप यहां रहते तो शादी में कुछ हौसला रहता।

गजाधर बाबू चलने को तैयार बैठे थे। रेलवे क्वार्टर का वह कमरा, जिसमें उन्होंने कितने वर्ष बिताए थे, उनका सामान हट जाने से कुरूप और नग्न लग रहा था। आंगन में रोपे पौधे भी जान पहचान के लोग ले गए थे और जगह–जगह मिट्टी बिखरी हुई थी। पर पत्नी, बाल–बच्चों के साथ रहने की कल्पना में यह बिछोह एक दुर्बल लहर की तरह उठ कर विलीन हो गया।

गजाधर बाबू खुश थे, बहुत खुश। पैंतीस साल की नौकरी के बाद वह रिटायर हो कर जा रहे थे। इन वर्षों में अधिकांश समय उन्होंने अकेले रह कर काटा था। उन अकेले क्षणों में उन्होंने इसी समय की कल्पना की थी, जब वह अपने परिवार के साथ रह सकेंगे। इसी आशा के सहारे वह अपने अभाव का बोझ ढो रहे थे। संसार की दृष्टि से उनका जीवन सफल कहा जा सकता था। उन्होंने शहर में एक मकान बनवा लिया था, बड़े लड़के अमर और लड़की कान्ति की शादियां कर दी थीं, दो बच्चे ऊंची कक्षाओं में पढ़ रहे थे। गजाधर बाबू नौकरी के कारण प्रायः छोटे स्टेशनों पर रहे और उनके बच्चे तथा पत्नी शहर में, जिससे पढ़ाई में बाधा न हो। गजाधर बाबू स्वभाव से बहुत स्नेही व्यक्ति थे और स्नेह के आकांक्षी भी। जब परिवार साथ था, ड्यूटी से लौट कर बच्चों से हंसते–खेलते, पत्नी से कुछ मनोविनोद करते – उन सबके चले जाने से उनके जीवन में गहन सूनापन भर उठा। खाली क्षणों में उनसे घर में टिका न जाता। कवि प्रकृति के न होने पर भी उन्हें पत्नी की स्नेहपूर्ण बातें याद आती रहतीं। दोपहर में गर्मी होने पर भी दो बजे तक आग जलाए रहती और मना करने पर भी थोड़ा–सा कुछ और थाली में परोस देती और बड़े प्यार से आग्रह करती। जब वह थके–हारे बाहर से आते, तो उनकी आहट पा वह रसोई के द्वार पर निकल आती और उनकी सलज्ज आंखें मुस्करा उठतीं। गजाधर बाबू को तब हर छोटी बात भी याद आती और उदास हो उठते। अब कितने वर्षों बाद वह अवसर आया था जब वह फिर उसी स्नेह और आदर के मध्य रहने जा रहे थे।

टोपी उतार कर गजाधर बाबू ने चारपाई पर रख दी, जूते खोल कर नीचे खिसका दिए, अन्दर से रह–रह कर कहकहों की आवाज आ रही थी, इतवार का दिन था और उनके सब बच्चे इकठ्ठे हो कर नाश्ता कर रहे थे। गजाधर बाबू के सूखे होठों पर स्निग्ध मुस्कान आ गई, उसी तरह मुस्कुराते हुए वह बिना खांसे अन्दर चले आए। उन्होंने देखा कि नरेन्द्र कमर पर हाथ रखे शायद रात की फिल्म में देखे गए किसी नृत्य की नकल कर रहा था और बसन्ती हंस–हंस कर दुहरी हो रही थी। अमर की बहू को अपने तन–बदन, आंचल या घूंघट का कोई होश न था और वह उन्मुक्त रूप से हंस रही थी। गजाधर बाबू को देखते ही नरेंद्र धप–से बैठ गया और चाय का प्याला उठा कर मुंह से लगा लिया। बहू को होश आया और उसने झट से माथा ढक लिया, केवल बसन्ती का शरीर रह–रह कर हंसी दबाने के प्रयत्न में हिलता रहा।

गजाधर बाबू ने मुस्कराते हुए उन लोगों को देखा। फिर कहा, क्यों नरेन्द्र, क्या नकल हो रही थी?

कुछ नहीं बाबू जी। नरेन्द्र ने सिर फिराकर कहा। गजाधर बाबू ने चाहा था कि वह भी इस मनो–विनोद में भाग लेते, पर उनके आते ही जैसे सब कुण्ठित हो चुप हो गए, उसे उनके मन में थोड़ी–सी खिन्नता उपज आई। बैठते हुए बोले, बसन्ती, चाय मुझे भी देना। तुम्हारी अम्मा की पूजा अभी चल रही है क्या?

बसन्ती ने मां की कोठरी की ओर देखा, अभी आती ही होंगी और प्याले में उनके लिए चाय छानने लगी। बहू चुपचाप पहले ही चली गई थी, अब नरेन्द्र भी चाय का आखिरी घूंट पी कर उठ खड़ा हुआ। केवल बसन्ती पिता के लिहाज में, चौके में बैठी मां की राह देखने लगी। गजाधर बाबू ने एक घूंट चाय पी, फिर कहा, बिट्टी – चाय तो फीकी है।

लाइए, चीनी और डाल दूं। बसन्ती बोली।

रहने दो, तुम्हारी अम्मा जब आएगी, तभी पी लूंगा।

थोड़ी देर में उनकी पत्नी हाथ में अर्घ्य का लोटा लिए निकली और अशुद्ध स्तुति कहते हुए तुलसी को डाल दिया। उन्हें देखते ही बसन्ती भी उठ गई। पत्नी ने आकर गजाधर बाबू को देखा और कहा, अरे आप अकेले बैठें हैं– ये सब कहां गए? गजाधर बाबू के मन में फांस–सी कसक उठी, अपने–अपने काम में लग गए हैं– आखिर बच्चे ही हैं।

पत्नी आकर चौके में बैठ गई, उन्होंने नाक–भौं चढ़ाकर चारों ओर जूठे बर्तनों को देखा। फिर कहा, सारे में जूठे बर्तन पड़े हैं। इस घर में धरम–करम कुछ है नहीं। पूजा करके सीधे चौंके में घुसो। फिर उन्होंने नौकर को पुकारा, जब उत्तर न मिला तो एक बार और उच्च स्वर में फिर पति की ओर देख कर बोलीं, बहू ने भेजा होगा बाजार। और एक लम्बी सांस ले कर चुप हो रहीं।

गजाधर बाबू बैठ कर चाय और नाश्ते का इन्तजार करते रहे। उन्हें अचानक गनेशी की याद आ गई। रोज सुबह, पॅसेंजर आने से पहले यह गरम–गरम पूरियां और जलेबियां और चाय लाकर रख देता था। चाय भी कितनी बढ़िया, कांच के गिलास में उपर तक भरी लबालब, पूरे ढ़ाई चम्मच चीनी और गाढ़ी मलाई। पैसेंजर भले ही रानीपुर लेट पहुंचे, गनेशी ने चाय पहुंचाने में कभी देर नहीं की। क्या मजाल कि कभी उससे कुछ कहना पड़े।

पत्नी का शिकायत भरा स्वर सुन उनके विचारों में व्याघात पहुंचा। वह कह रही थी, सारा दिन इसी खिच–खिच में निकल जाता है। इस गृहस्थी का धन्धा पीटते–पीटते उमर बीत गई। कोई जरा हाथ भी नहीं बटाता।

बहू क्या किया करती है? गजाधर बाबू ने पूछा।

पड़ी रहती है। बसन्ती को तो, फिर कहो कि कॉलेज जाना होता है।

गजाधर बाबू ने जोश में आकर बसन्ती को आवाज दी। बसन्ती भाभी के कमरे से निकली तो गजाधर बाबू ने कहा, बसन्ती, आज से शाम का खाना बनाने की जिम्मेदारी तुम पर है। सुबह का भोजन तुम्हारी भाभी बनाएगी। बसन्ती मुंह लटका कर बोली, बाबू जी, पढ़ना भी तो होता है।

गजाधर बाबू ने प्यार से समझाया, तुम सुबह पढ़ लिया करो। तुम्हारी मां बूढ़ी हुई, अब वह शक्ति नहीं बची हैं। तुम हो, तुम्हारी भाभी हैं, दोनों को मिलकर काम में हाथ बंटाना चाहिए।

बसन्ती चुप रह गई। उसके जाने के बाद उसकी मां ने धीरे से कहा, पढ़ने का तो बहाना है। कभी जी ही नहीं लगता, लगे कैसे? शीला से ही फुरसत नहीं, बड़े–बड़े लड़के है उस घर में, हर वक्त वहां घुसा रहना मुझे नहीं सुहाता। मना करूं तो सुनती नहीं।

नाश्ता कर गजाधर बाबू बैठक में चले गए। घर लौटा था और ऐसी व्यवस्था हो चुकी थी कि उसमें गजाधर बाबू के रहने के लिए कोई स्थान न बचा था। जैसे किसी मेहमान के लिए कुछ अस्थायी प्रबन्ध कर दिया जाता है, उसी प्रकार बैठक में कुरसियों को दीवार से सटाकर बीच में गजाधर बाबू के लिए पतली–सी चारपाई डाल दी गई थी। गजाधर बाबू उस कमरे में पड़े पड़े कभी–कभी अनायास ही इस अस्थायित्व का अनुभव करने लगते। उन्हें याद आती उन रेलगाड़ियों की जो आती और थोड़ी देर रुक कर किसी और लक्ष्य की ओर चली जाती।

घर छोटा होने के कारण बैठक में ही अब अपना प्रबन्ध किया था। उनकी पत्नी के पास अन्दर एक छोटा कमरा अवश्य था, पर वह एक ओर अचारों के मर्तबान, दाल, चावल के कनस्तर और घी के डिब्बों से घिरा था, दूसरी ओर पुरानी रजाइयां, दरियों में लिपटी और रस्सी से बांध रखी थी, उनके पास एक बड़े से टीन के बक्स में घर–भर के गरम कपड़े थे। बींच में एक अलगनी बंधी हुई थी, जिस पर प्रायः बसन्ती के कपड़े लापरवाही से पड़े रहते थे। वह भरसक उस कमरे में नहीं जाते थे। घर का दूसरा कमरा अमर और उसकी बहू के पास था, तीसरा कमरा, जो सामने की ओर था। गजाधर बाबू के आने से पहले उसमें अमर के ससुराल से आया बेंत का तीन कुरसियों का सेट पड़ा था, कुरसियों पर नीली गद्दियां और बहू के हाथों के कढ़े कुशन थे।

जब कभी उनकी पत्नी को कोई लम्बी शिकायत करनी होती, तो अपनी चटाई बैठक में डाल पड़ जाती थीं। वह एक दिन चटाई ले कर आ गई। गजाधर बाबू ने घर–गृहस्थी की बातें छेड़ी, वह घर का रवैय्या देख रहे थे। बहुत हलके से उन्होंने कहा कि अब हाथ में पैसा कम रहेगा, कुछ खर्चा कम करना चाहिए।

सभी खर्च तो वाजिब–वाजिब है, न मन का पहना, न ओढ़ा।

गजाधर बाबू ने आहत, विस्मित दृष्टि से पत्नी को देखा। उनसे अपनी हैसियत छिपी न थी। उनकी पत्नी तंगी का अनुभव कर उसका उल्लेख करतीं। यह स्वाभाविक था, लेकिन उनमें सहानुभूति का पूर्ण अभाव गजाधर बाबू को बहुत खटका। उनसे यदि राय–बात की जाती कि प्रबन्ध कैसे हो, तो उन्हें चिन्ता कम, संतोष अधिक होता लेकिन उनसे तो केवल शिकायत की जाती थी, जैसे परिवार की सब परेशानियों के लिए वही जिम्मेदार थे।

तुम्हे कमी किस बात की है अमर की मां– घर में बहू है, लड़के–बच्चे हैं, सिर्फ रुपए से ही आदमी अमीर नहीं होता। गजाधर बाबू ने कहा और कहने के साथ ही अनुभव किया। यह उनकी आन्तरिक अभिव्यक्ति थी– ऐसी कि उनकी पत्नी नहीं समझ सकती।

हां, बड़ा सुख है न बहू से। आज रसोई करने गई है, देखो क्या होता है? कहकर पत्नी ने आंखे मूंदी और सो गई। गजाधर बाबू बैठे हुए पत्नी को देखते रह गए। यही थी

क्या उनकी पत्नी, जिसके हाथों के कोमल स्पर्श, जिसकी मुस्कान की याद में उन्होंने सम्पूर्ण जीवन काट दिया था? उन्हें लगा कि वह लावण्यमयी युवती जीवन की राह में कहीं खो गई और उसकी जगह आज जो स्त्री है, वह उनके मन और प्राणों के लिए नितान्त अपरिचिता है। गाढ़ी नींद में डूबी उनकी पत्नी का भारी शरीर बहुत बेडौल और कुरूप लग रहा था, श्रीहीन और रूखा था। गजाधर बाबू देर तक निस्वंग दृष्टि से पत्नी को देखते रहे और फिर लेट कर छत की ओर ताकने लगे।

अन्दर कुछ गिरा दिया शायद, और वह अन्दर भागी। थोड़ी देर में लौट कर आई तो उनका मुंह फूला हुआ था। देखा बहू को, चौका खुला छोड़ आई, बिल्ली ने दाल की पतीली गिरा दी। सभी खाने को है, अब क्या खिलाऊंगी? वह सांस लेने को रुकी और बोली, एक तरकारी और चार पराठे बनाने में सारा डिब्बा घी उंडेल रख दिया। जरा–सा दर्द नहीं है, कमानेवाला हाड़ तोड़े और यहां चीजें लुटें। मुझे तो मालूम था कि यह सब काम किसी के बस का नहीं हैं। गजाधर बाबू को लगा कि पत्नी कुछ और रात का भोजन बसन्ती ने जान बूझ कर ऐसे बनाया था कि कौर तक निगला न जा सके।

गजाधर बाबू चुपचाप खा कर उठ गए पर नरेन्द्र थाली सरका कर उठ खड़ा हुआ और बोला, मैं ऐसा खाना नहीं खा सकता। बसन्ती तुनककर बोली, तो न खाओ, कौन तुम्हारी खुशामद कर रहा है।

तुमसे खाना बनाने को किसने कहा था? नरेंद्र चिल्लाया।

बाबू जी ने।

बाबू जी को बैठे–बैठे यही सूझता है।

बसन्ती को उठा कर मां ने नरेंद्र को मनाया और अपने हाथ से कुछ बना कर खिलाया। गजाधर बाबू ने बाद में पत्नी से कहा, इतनी बड़ी लड़की हो गई और उसे खाना बनाने तक का सहूर नहीं आया।

अरे आता सब कुछ है, क़रना नहीं चाहती। पत्नी ने उत्तर दिया। अगली शाम मां को रसोई में देख कपड़े बदल कर बसन्ती बाहर आई तो बैठक में गजाधर बाबू ने टोक दिया, कहां जा रही हो?

पड़ोस में शीला के घर। बसन्ती ने कहा।

कोई जरूरत नहीं हैं, अन्दर जा कर पढ़ो। गजाधर बाबू ने कड़े स्वर में कहा। कुछ देर अनिश्चित खड़े रह कर बसन्ती अन्दर चली गई। गजाधर बाबू शाम को रोज टहलने चले जाते थे, लौट कर आए तो पत्नी ने कहा, क्या कह दिया बसन्ती से? शाम से मुंह लपेटे पड़ी है। खाना भी नहीं खाया।

गजाधर बाबू खिन्न हो आए। पत्नी की बात का उन्होंने उत्तर नहीं दिया। उन्होंने मन में निश्चय कर लिया कि बसन्ती की शादी जल्दी ही कर देनी है। उस दिन के बाद बसन्ती पिता से बची–बची रहने लगी। जाना हो तो पिछवाड़े से जाती। गजाधर बाबू ने दो–एक बार पत्नी से पूछा तो उत्तर मिला, रूठी हुई है। गजाधर बाबू को और रोष हुआ। लड़की के इतने मिजाज, जाने को रोक दिया तो पिता से बोलेगी नहीं। फिर उनकी पत्नी ने ही सूचना दी कि अमर अलग होने की सोच रहा है।

क्यों? गजाधर बाबू ने चकित हो कर पूछा।

पत्नी ने साफ–साफ उत्तर नहीं दिया। अमर और उसकी बहू की शिकायतें बहुत थी। उनका कहना था कि गजाधर बाबू हमेशा बैठक में ही पड़े रहते हैं, कोई आने–जानेवाला हो तो कहीं बिठाने की जगह नहीं। अमर को अब भी वह छोटा–सा समझते थे और मौके–बेमौके टोक देते थे। बहू को काम करना पड़ता था और सास जब–तब फूहड़पन पर ताने देती रहती थीं।

हमारे आने के पहले भी कभी ऐसी बात हुई थी? गजाधर बाबू ने पूछा।

पत्नी ने सिर हिलाकर जताया कि नहीं, पहले अमर घर का मालिक बन कर रहता था, बहू को कोई रोक–टोक न थी, अमर के दोस्तों का प्रायः यहीं अड्डा जमा रहता था और अन्दर से चाय नाश्ता तैयार हो कर जाता था। बसन्ती को भी वही अच्छा लगता था। गजाघर बाबू ने बहुत धीरे से कहा, अमर से कहो, जल्दबाजी की कोई जरूरत नहीं है।

अगले दिन सुबह घूम कर लौटे तो उन्होंने पाया कि बैठक में उनकी चारपाई नहीं है। अन्दर आकर पूछने वाले ही थे कि उनकी दृष्टि रसोई के अन्दर बैठी पत्नी पर पड़ी। उन्होंने यह कहने को मुंह खोला कि बहू कहां है, पर कुछ याद कर चुप हो गए। पत्नी की कोठरी में झांका तो अचार, रजाइयों और कनस्तरों के मध्य अपनी चारपाई लगी पाई। गजाधर बाबू ने कोट उतारा और कहीं टांगने के लिए दीवार पर नजर दौड़ाई। फिर उस पर मोड़ कर अलगनी के कुछ कपड़े खिसका कर एक किनारे टांग दिया। कुछ खाए बिना ही अपनी चारपाई पर लेट गए। कुछ भी हो, तन आखिरकार बूढ़ा ही था। सुबह शाम कुछ दूर टहलने अवश्य चले जाते, पर आते–आते थक उठते थे। गजाधर बाबू को अपना बड़ा–सा, खुला हुआ क्वार्टर याद आ गया। निश्चित जीवन– सुबह पॅसेंजर ट्रेन आने पर स्टेशन पर की चहल–पहल, चिर–परिचित चेहरे और पटरी पर रेल के पहियों की खट्–खट् जो उनके लिए मधुर संगीत की तरह था। तूफान और डाक गाड़ी के इंजिनों की चिंघाड़ उनकी अकेली रातों की साथी थी। सेठ रामजीमल की मिल के कुछ लोग कभी–कभी पास आ बैठते, वह उनका दायरा था, वही उनके साथी। वह जीवन अब उन्हें खोई विधि–सा प्रतीत हुआ। उन्हें लगा कि वह जिन्दगी द्वारा ठगे गए हैं। उन्होंने जो कुछ चाहा उसमें से उन्हें एक बूंद भी न मिली।

लेटे हुए वह घर के अन्दर से आते विविध स्वरों को सुनते रहे। बहू और सास की छोटी–सी झड़प, बाल्टी पर खुले नल की आवाज, रसोई के बर्तनों की खटपट और उसी में गौरैयों का वार्तालाप – और अचानक ही उन्होंने निश्चय कर लिया कि अब घर की किसी बात में दखल न देंगे। यदि गृहस्वामी के लिए पूरे घर में एक चारपाई की जगह यहीं हैं, तो यहीं पड़े रहेंगे। अगर कहीं और डाल दी गई तो वहां चले जाएंगे।

यदि बच्चों के जीवन में उनके लिए कहीं स्थान नहीं, तो अपने ही घर में परदेसी की तरह पड़े रहेंगे। और उस दिन के बाद सचमुच गजाधर बाबू कुछ नहीं बोले। नरेंद्र मांगने आया तो उसे बिना कारण पूछे रुपए दे दिए बसन्ती काफी अंधेरा हो जाने के बाद भी पड़ोस में रही तो भी उन्होंने कुछ नहीं कहा – पर उन्हें सबसे बड़ा गम यह था कि उनकी पत्नी ने भी उनमें कुछ परिवर्तन लक्ष्य नहीं किया। वह मन ही मन कितना भार ढो रहे हैं, इससे वह अनजान बनी रहीं। बल्कि उन्हें पति के घर के मामले में हस्तक्षेप न करने के कारण

शान्ति ही थी। कभी–कभी कह भी उठती, ठीक ही हैं, आप बीच में न पड़ा कीजिए, बच्चे बड़े हो गए हैं, हमारा जो कर्तव्य था, कर रहें हैं। पढ़ा रहें हैं, शादी कर देंगे।

गजाधर बाबू ने आहत दृष्टि से पत्नी को देखा। उन्होंने अनुभव किया कि वह पत्नी व बच्चों के लिए केवल धनोपार्जन के निमित्तमात्र हैं। जिस व्यक्ति के अस्तित्व से पत्नी मांग में सिन्दूर डालने की अधिकारी हैं, समाज में उसकी प्रतिष्ठा है, उसके सामने वह दो वक्त का भोजन की थाली रख देने से सारे कर्तव्यों से छुट्टी पा जाती हैं। वह घी और चीनी के डब्बों में इतना रमी हुई हैं कि अब वही उनकी सम्पूर्ण दुनिया बन गई हैं। गजाधर बाबू उनके जीवन के केंद्र नहीं हो सकते, उन्हें तो अब बेटी की शादी के लिए भी उत्साह बुझ गया। किसी बात में हस्तक्षेप न करने के निश्चय के बाद भी उनका अस्तित्व उस वातावरण का एक भाग न बन सका। उनकी उपस्थिति उस घर में ऐसी असंगत लगने लगी थी, जैसे सजी हुई बैठक में उनकी चारपाई थी। उनकी सारी खुशी एक गहरी उदासीनता में डूब गई। इतने सब निश्चयों के बावजूद भी गजाधर बाबू एक दिन बीच में दखल दे बैठे। पत्नी स्वभावानुसार नौकर की शिकायत कर रही थी, कितना कामचोर है, बांजार की हर चीज में पैसा बनाता है, खाना खाने बैठता है तो खाता ही चला जाता हैं। गजाधर बाबू को बराबर यह महसूस होता रहता था कि उनके रहन सहन और खर्च उनकी हैसियत से कहीं ज्यादा हैं। पत्नी की बात सुन कर लगा कि नौकर का खर्च बिलकुल बेकार हैं। छोटा–मोटा काम हैं, घर में तीन मर्द हैं, कोई–न–कोई कर ही देगा। उन्होंने उसी दिन नौकर का हिसाब कर दिया। अमर दफ्तर से आया तो नौकर को पुकारने लगा। अमर की बहू बोली, बाबू जी ने नौकर छुड़ा दिया है।

क्यों?

कहते हैं, खर्च बहुत है।

यह वार्तालाप बहुत सीधा–सा था, पर जिस टोन में बहू बोली, गजाधर बाबू को खटक गया। उस दिन जी भारी होने के कारण गजाधर बाबू टहलने नहीं गए थे। आलस्य में उठ कर बत्ती भी नहीं जलाई – इस बात से बेखबर नरेन्द्र मां से कहने लगा, अम्मा, तुम बाबू जी से कहती क्यों नहीं? बैठे–बिठाए कुछ नहीं तो नौकर ही छुड़ा दिया। अगर बाबू जी यह समझें कि मैं साइकिल पर गेंहूं रख आटा पिसाने जाऊंगा तो मुझसे यह नहीं होगा।

हां अम्मा, बसन्ती का स्वर था, मैं कॉलेज भी जाऊं और लौट कर घर में झाड़ू भी लगाऊं, यह मेरे बस की बात नहीं हैं।

'बूढ़े आदमी हैं' अमर भुनभुनाया, चुपचाप पड़े रहें। हर चीज में दखल क्यों देते हैं? पत्नी ने बड़े व्यंग्य से कहा, और कुछ नहीं सूझा तो तुम्हारी बहू को ही चौके में भेज दिया। वह गई तो पंद्रह दिन का राशन पांच दिन में बना कर रख दिया। बहू कुछ कहे, इससे पहले वह चौके में घुस गई। कुछ देर में अपनी कोठरी में आई और बिजली जलाई तो गजाधर बाबू को लेटे देख बड़ी सिटपिटाई। गजाधर बाबू की मुखमुद्रा से वह उनके भावों का अनुमान न लगा सकी। वह चुप, आंखे बंद किए लेटे रहे।

गजाधर बाबू चिठ्ठी हाथ में लिए अन्दर आए और पत्नी को पुकारा। वह भीगे हाथ लिए निकलीं और आंचल से पोंछती हुई पास आ खड़ी हुई। गजाधर बाबू ने बिना किसी

भूमिका के कहा, "मुझे सेठ रामजीमल की चीनी मिल में नौकरी मिल गई है। खाली बैठे रहने से तो चार पैसे घर में आएं, वही अच्छा है। उन्होंने तो पहले ही कहा था, मैंने मना कर दिया था। फिर कुछ रुक कर, जैसी बुझी हुई आग में एक चिनगारी चमक उठे, उन्होंने धीमे स्वर में कहा, मैंने सोचा था, बरसों तुम सबसे अलग रहने के बाद, अवकाश पा कर परिवार के साथ रहूंगा। खैर, परसों जाना है। तुम भी चलोगी?" "मैं?" पत्नी ने सकपकाकर कहा, "मैं चलूंगी तो यहां क्या होगा? इतनी बड़ी गृहस्थी, फिर सयानी लड़की।"

बात बीच में काट कर गजाधर बाबू ने हताश स्वर में कहा, ठीक है, तुम यहीं रहो। मैंने तो ऐसे ही कहा था। और गहरे मौन में डूब गए।

नरेंद्र ने बड़ी तत्परता से बिस्तर बांधा और रिक्शा बुला लाया। गजाधर बाबू का टीन का बक्स और पतला–सा बिस्तर उस पर रख दिया गया। नाश्ते के लिए लड्डू और मठरी की डलिया हाथ में लिए गजाधर बाबू रिक्शे में बैठ गए। एक दृष्टि उन्होंने अपने परिवार पर डाली और फिर दूसरी ओर देखने लगे और रिक्शा चल पड़ा। उनके जाने के बाद सब अन्दर लौट आए, बहू ने अमर से पूछा, सिनेमा चलिएगा न?

बसन्ती ने उछल कर कहा, भैया, हमें भी।

गजाधर बाबू की पत्नी सीधे चौके में चली गई। बची हुई मठरियों को कटोरदान में रखकर अपने कमरे में लाई और कनस्तरों के पास रख दिया। फिर बाहर आ कर कहा, अरे नरेन्द्र, बाबू जी की चारपाई कमरे से निकाल दे, उसमें चलने तक को जगह नहीं हैं।

4.5.3 कथासार

'वापसी' कहानी के नायक गजाधर बाबू हैं। पैंतीस वर्ष रेलवे में अपनी सेवा देने के बाद रिटायर हुए हैं। वापस घर जाने, अपने परिवार के साथ समय गुजारने की बात मन में सोचकर ही वे खुश हैं। गजाधर बाबू ने जीवन का अधिकांश समय अकेले गुजारा है। ताउम्र छोटे छोटे जगहों पर रहकर नौकर की है, लेकिन परिवार के लिए शहर में घर बनवाया। ताकि बच्चों की पढ़ाई–लिखाई में कोई बाधा न आये। सारे बच्चे बड़े हो चुके हैं। ऊंची पढ़ाई पूरी कर ली है। ऐसा लगता है मानो गजाधर बाबू ने एक सफल जिन्दगी जी ली है।

जब परिवार साथ था, तब गजाधर बाबू बच्चों के साथ खूब हंसते–बोलते थे। पत्नी से भी हंसी मजाक कर लिया करते थे। पत्नी भी उनका बहुत ध्यान रखा करती थी। अकसर जब वे काम से लौटकर घर वापस आते, गर्म–गर्म रोटियां सेंकती, बड़े प्यार से खाना खिलाती। गजाधर बाबू के मना करने पर भी वह न मानती और थोड़ा और कहते हुए थाली में खाना परोसती जाती। इतना स्नेह और आदर के बीच रहकर गजाधर बाबू बेहद प्रसन्न थे। अब वर्षों बाद उन्हें यह मौका फिर से मिलने जा रहा है।

अपना समूचा बोरिया–बिस्तरा समेटकर वे अपने घर आ चुके हैं। लेकिन अब घर का माहौल बदल गया है। जिन बच्चों और पत्नी की कल्पना कर वे खुश हो उठते थे, वही घर पराया–सा महसूस होने लगा है। घर में इतना स्थान भी नहीं बचा है कि उनके लिए आराम से रहने के लिए कोई निश्चित व्यवस्था हो सके। जिस तरह से किसी मेहमान के आ जाने पर उनके सोने–बैठने के लिए एक अस्थायी प्रबंध कर दिया जाता है ठीक उसी तरह गजाधर बाबू के लिए बैठक में कुर्सियों को दीवार से सटा उनके लिए एक चारपाई बिछा

दी गई। अपने घर में स्थायित्व के बजाय वे अस्थायित्व महसूस करने लगे हैं। घर के प्रायः सभी हिस्सों में बेटे–बहू, बेटी और पत्नी का कब्जा हो चुका है।

एक दिन गजाधर बाबू ने अपनी पत्नी से कहा 'अब हाथ में पैसा कम रहेगा, खर्च कुछ कम होना चाहिए।' इस पर उनकी पत्नी बिफर उठती है– ''सभी खर्च तो वाजिब–वाजिब हैं, किसका पेट काटूं? यही जोड़–गांठ करते–करते बूढ़ी हो गई, न मन का पहना, न ओढ़ा।''

वास्तव में बाबू की पत्नी जीवन भर घर–गृहस्थी में जीवनभर उलझी रही। अपने लिए कुछ न सकी। गजाधर बाबू को इस तंगी का अहसास है लेकिन उनकी पत्नी ने इस बात को इतने रुखे तरीके से कहा था कि गजाधर बाबू को बुरी तरह से खटक गया। उन्हें अपनी पत्नी की उपेक्षा भाव समझने में देर न लगी। उन्होंने महसूस किया कि जिस लावण्यमयी युवती से विवाह किया था, वह कहीं खो गई है। आज जो स्त्री उनकी पत्नी है वह बिल्कुल अपरिचिता है।

गजाधर बाबू ने घर के काम का बंटवारा कर दिया था। रात के खाना बनाने की जिम्मेदारी अपनी बेटी बसन्ती को सौंप दिया और सुबह का नाश्ता बनाने की जिम्मेदारी बहू को दे दिया गया। इस बंटवारे से बसन्ती बिल्कुल खुश नहीं थी। रात का भोजन बसन्ती ने जान–बूझकर ऐसा बनाया कि एक को भी खा पाना मुश्किल था। फिर भी गजाधर बाबू चुपचाप खाना खाकर उठ जाते हैं। लेकिन उनके बेटे नरेन्द्र को बहुत गुस्सा आया था। उसने चिल्लाकर कहा 'तुमसे खाना बनाने किसने कहा था।' बसन्ती ने फट जवाब दिया–'बाबू जी ने।' बाबू जी ने इस निर्णय से नरेन्द्र झुंझला उठता है। 'बाबू जी को बैठे–बैठे यही सूझता है' उसकी प्रतिक्रिया थी।

गजाधर बाबू ने बसन्ती को एक बार बाहर जाने से भी मना कर दिया था, इस कारण वह कई दिनों तक मुंह फुलाए रही उनसे बातचीत करना बन्द कर दिया। बसन्ती को जब कभी बाहर जाना होता, तब वह पिछवाड़े से होकर जाती। गजाधर बाबू के सामने आने से वह कतराते लगी थी। उन्हें इस बात पर रोष हुआ कि कैसी लड़की है, बाहर जाने से रोक दिया तो वह पिता से बोलना बंद कर देगी। अगले दिन गजाधर बाबू की पत्नी उन्हें सूचना देती है कि अमर अपनी पत्नी के साथ अलग रहने की सोच रहा है। उन्हें यह बात भी अच्छी नहीं लगी थी। उनकी पत्नी ने उन्हें यह भी बताया कि अमर और उसकी पत्नी को उनसे बहुत शिकायतें हैं। उनका कहना है कि बैठक में दिन भर पड़े रहते हैं। हर मौके–बे मौके पर रोक–टोक करते हैं। यह सब उन्हें अच्छा नहीं लगता। गजाधर बाबू ने अपनी पत्नी से पूछा था कि ''क्या हमारे आने से पहले भी कभी ऐसी बात हुई थी।'' उनकी पत्नी ने 'न' में सिर हिला दिया था। दूसरे दिन सुबह जब गजाधर बाबू बाहर से टहलकर वापस घर आये तब उन्होंने देखा कि उनकी चारपाई आचार, रजाइयों और कनस्तरों के बीच रख दी गई है। वे उसी पर कुछ देर लेटे रहे और अपने पुराने दिनों में खो गए। उन्हें अपना रेलवे वाला खुला क्वार्टर याद आया। रेलगाड़ी की आवाजें उनके लिए मधुर संगीत की तरह थी। निश्चिंत जीवन उन्हें खोई सी निधि लगने लगी थी। उन्हें लगा था वे जिन्दगी के द्वारा ठगे गए हैं।

उन्होंने महसूस किया था कि यदि घर के गृहस्वामी के लिए एक चारपाई बिछने तक की जगह नहीं है तो यहीं पड़े रहेंगे। एक परदेशी की तरह बचे जीवन को काट लेंगे। अब

गजाधर बाबू ने तय कर लिया था कि घर के किसी मामले में दखल नहीं देंगे। घर के मामले में उन्होंने एकदम बोलना छोड़ दिया था। इस परिवर्तन को उनकी पत्नी ने भी लक्ष्य नहीं किया। बल्कि कहती है–''ठीक ही है, आप बीच में न पड़ा कीजिए, बच्चे बड़े हो गए हैं। हमारा जो कर्तव्य था, कर रहे हैं। पढ़ा रहे हैं, शादी कर देंगे।'' गजाधर बाबू को पत्नी ने इस तरह व्यवहार की उम्मीद न थी। वे उनकी इस बात से आहत थे। उनके मन में यह ख्याल आने लगे थे कि वे अपनी पत्नी और बच्चों के लिए मात्र धनोपार्जन के निमित्त मात्र थे। इन सभी बातों से वे गहरी उदासी में डूब गए।

उन्होंने निश्चिय कर लिया था कि कभी किसी मामले में हस्तक्षेप नहीं करेंगे। फिर भी एक दिन उनसे रहा नहीं गया और नौकर को काम से छुट्टी कर दी। इस बात से घर के सभी सदस्य बौखला गए। घर में कोई काम करने को राजी न था। वसन्ती का कहना था कि मैं कॉलेज से आकर घर में झांडू लगाऊं। यह मुझसे नहीं होगा। नरेन्द्र का कहना था कि 'अगर बाबूजी यह समझे कि मैं साइकिल पर गेहूं रख आटा पिसाने जाऊंगा तो मुझसे यह नहीं होगा।'' इस तरह की प्रतिक्रिया घर के प्रायः सभी सदस्यों की थी। गजाधर बाबू इस बात को भांप चुके थे।

एक दिन वे अपने हाथ में चिट्ठी लेकर अंदर गए और पत्नी से कहा कि 'मुझे एक चीनी मिल में नौकरी मिल गई है। खाली बैठने से अच्छा चार पैसे घर में आएं।' गजाधर बाबू ने यह भी कहा कि परसों जाना है, तुम भी चलोगी? उनकी पत्नी ने सकपका कर कहा मैं कैसे जा सकती हूं। घर–गृहस्थी, घर में जवान बेटी को छोड़कर। अपनी पत्नी की बात बीच में काट कर उन्होंने कहा 'ठीक है तुम यहीं रहो।'

इस उम्र में भी गजाधर बाबू के घर छोड़ने की खुशी सभी को थी। नरेन्द्र तत्परता से उनका बिस्तर बांध दिया और रिक्शा बुला लाया। वे उसमें बैठकर एक बार अपने परिवार की तरफ देखा। रिक्शा आगे चल पड़ा। उनके जाने के बाद बहू ने अमर से सिनेमा चलने को कहा। बसन्ती भी उछलकर साथ जाने को प्रचार हुई। पत्नी ने नरेन्द्र से कहा बाबू जी की चारपाई कमरे से निकाल दें। उसमें चलने की जगह तक नहीं है। कहानी इसी बिन्दु पर समाप्त हो जाती है।

4.5.4 मुख्य अवतरणों की व्याख्या

1. गजाधर बाबू बहुत खुश थे, बहुत खुश। पैंतीस साल की नौकरी के बाद वह रिटायर होकर जा रहे थे। इन वर्षों में अधिकांश समय उन्होंने अकेले रह कर काटा था। उन अकेले छणों में उन्होंने इसी समय की कल्पना की थी, जब वह अपने परिवार के साथ रह सकेंगे। इसी आशा के सहारे वह अपने अभाव का बोझ ढो रहे थे। संसार की दृष्टि में उनका जीवन सफल कहा जा सकता था। उन्होंने शहर में एक मकान बनवा लिया था। बड़े लड़के अमर और लकड़ी कांति की शादियां कर दी थीं, दो बच्चे ऊंची कक्षाओं में पढ़ रहे थे। गजाधर बाबू नौकरी के कारण प्रायः छोटे स्टेशनों पर रहे और उनके बच्चे और पत्नी शहर में जिससे पढ़ाई में बाधा न हो। गजाधर बाबू स्वभाव से बहुत स्नेही व्यक्ति थे और स्नेह के आकांक्षी भी। जब परिवार साथ था, ड्यूटी से लौट कर बच्चों से हंसते–बोलते, पत्नी से कुछ

मनोविनोद करते, उन सबके चले जाने से उनके जीवन में गहन सूनापन भर उठा। खाली क्षणों में उनसे घर में टिका न जाता। कवि प्रकृति के न होने पर भी उन्हें पानी की स्नेहपूर्ण बातें याद रहतीं।

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश सुप्रसिद्ध कहानी लेखिका उषा प्रियंवदा द्वारा लिखित कहानी 'वापसी' से उद्धृत है। लेखिका ने अपनी कहानियों में आधुनिक जीवन की निराशा कुंठा, अकेलापन, निरर्थकता बोध को ही मुख्य विषय बनाया है। प्रस्तुत कहानी भी इन्हीं समस्याओं को उजागर करती कहानी है। प्रस्तुत गद्यखंड में गजाधर बाबू जो परे सेवाकाल में रेलवे के कर्मचारी रहे हैं, उनके सेवा–समाप्ति के बाद अपने घर परिवार में वापिस जाने की खुशी, उल्लास का वर्णन है।

व्याख्या– प्रस्तुत गद्यखंड में लेखिका गजाधर बाबू के सेवानिवृत्त हो जाने पर उनको उनके परिवार में वापस जाने के समय का वर्णन करती हुई कहती हैं–आज गजाधर बाबू बहुत प्रयत्न हैं। उन्होंने पैंतीस साल तक परिवार संदूर रहकर छोटे–छोटे स्टेशनों पर रहते हुए अपना सेवाकालपूर्ण किया है इसी आशा से कि वे अपने परिवार के साथ रह सकेंगे। संसार की दृष्टि में उनका जीवन पूर्ण सफल जीवन है। अपने जीवन काल में ही उन्होंने शहर में एक मकान बनवा लिया है जिसमें उनके बच्चे पत्नी के साथ रह रहे हैं। बड़े लड़के अमर और पुत्री की शादी कर दी है। उनके दो बच्चे उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। इन्हीं बच्चों की पढ़ाई–लिखाई के लिए उन्होंने इतना बड़ा एकाकी जीवन व्यतीत किया है इस उम्मीद के साथ कि एक दिन वे अपने इसी हंसते–खेलते खुशहाल परिवार में आकर रहेंगे। गजाधर बाबू बहुत प्रेमी और सज्जन व्यक्ति हैं और इसी प्रकार के प्रेम और सज्जनता की दूसरों से आकांक्षा भी रखते हैं। जब परिवार उनके साथ था, ड्यूटी से लौटते तो अपने बच्चों से हंसते, बोलते, पत्नी से कुछ हंसी मजाक कर लेते। जब सभी लोग बाहर में रहने चले गए तो उनका जीवन शून्यता से भर गया था। वे एकदम अकेला महसूस करते किन्तु पुनः परिवार में उसी प्रकार हंसी–खुशी की कल्पना को हृदय में संजोये वे अपना पहाड़ सा समय काटा था। आज वह कल्पना साकार हो रही थी। अकेलेपन में वे ड्यूटी से वापस आकर घर में टिक नहीं जाते थे। यद्यपि वह स्वभाव से भावुक नहीं थे परन्तु फिर भी वे पत्नी की बातें याद करके प्रसन्न हो लेते थे।

2. नाश्ता कर गजाधर बाबू बैठक में चले गए। घर लौटा था और ऐसी व्यवस्था हो चुकी थी कि उसमें गजाधर बाबू के रहने के लिए कोई स्थान न बचा था। जैसे किसी मेहमान के लिए कुछ अस्थायी प्रबन्ध कर दिया जाता है, उसी प्रकार बैठक में कुरसियों को दीवार से सटाकर बीच में गजाधर बाबू के लिए पतली–सी चारपाई डाल दी गई थी। गजाधर बाबू उस कमरे में पड़े पड़े कभी–कभी अनायास ही इस अस्थायित्व का अनुभव करने लगते। उन्हें याद आती उन रेलगाड़ियों की जो आती और थोड़ी देर रुक कर किसी और लक्ष्य की ओर चली जाती।

प्रसंग– प्रस्तुत गद्यांश सुप्रसिद्ध कहानी लेखिका उषा प्रियंवदा द्वारा लिखित कहानी 'वापसी' शीर्षक से लिया गया है। प्रस्तुत गद्य खंड में लेखिका ने गजाधर बाबू के रूप में उन सभी लोगों की स्थिति को व्यक्त करने का प्रयास किया है जो सेवा निवृत्त होने के उपरांत अपने पूरे जीवन के एकाकीपन को दूर कर प्रसन्नतापूर्ण जीवन व्यतीत करने की तीव्र

लालसा को संजोये अपने घर–परिवार में पहुंचते हैं, और उन्हें घर में रहने तक के लिए स्थान नहीं मिलता, प्यार नहीं मिलता, आदर नहीं मिलता, उनसे जिनके लिए मनुष्य अपना पूरा जीवन एकाकी खपा देता है। इस गद्य खंड में गजाधर बाबू की भी वही स्थिति है।

व्याख्या– गजाधर बाबू अपने एकाकी जीवन का दंश और एक खूबसूरत भविष्य की कल्पना में झेलकर उस परिवार में पहुंचते हैं तो वहां उनका उस सहृदयता से कोई स्वागत नहीं करता। गजाधर बाबू के अपने बनाए मकान में एक छोटा–सा कमरा भी नहीं मिलता रहने को। उनके सोने की व्यवस्था ऐसी कर दी जाती है, जैसे घर आए किसी मेहमान की की जाती है। गजाधर बाबू को बैठक के कमरे में कुरसियां टाल कर एक चारपाई बिछा दी जाती है मानो आज ही आज की बात है, कल तो चले जाएंगे, तो चारपाई हटा दी जाएगी। गजाधर बाबू उस कमरे में पड़े–पड़े ऐसे ही अस्थायित्व की कल्पना करने लगते। उन्हें उन रेलगाड़ियों की याद आ जाती जो शोर मचाते हुए स्टेशन पर आकर दो मिनट ठहकर कर चली जातीं। स्टेशन फिर सूना का सूना। वैसे ही गजाधर बाबू को वही सन्नाटा महसूस होता जो उन्होंने पूरे जीवन जिया था।

4.5.5 कहानी के तत्वों के आधार पर 'वापसी' की समीक्षा

उषा प्रियंवदा ने खुद को नयी कहानी आंदोलन के नारों से अलग रखा था। इसके बावजूद उनकी कहानियों में 'नयी कहानी' का 'अकेलापन', 'अजनबीपन' और 'उदासी' घनीभूत रूप से दिखायी पड़ता है। उषा प्रियवंदा की कहानियों में पारिवारिक टूटन, घुटन, कुण्ठा आदि वृतियों का अंकन प्रभावी ढंग से अभिव्यक्त हुआ है। सामाजिक संबंधों की वास्तविक तस्वीर उषा प्रियंवदा की कहानियों में मुख्य रूप से सामने आता है। 'वापसी' कहानी में 'गजाधर बाबू' जिस तरह अपने परिवार में असंगत हो जाते हैं, यह आधुनिक भारतीय मध्यवर्ग के जीवन की त्रासदी है। 'वापसी' कहानी में गजाधर बाबू का अपने परिवार के बीच अकेला हो जाना, आज के जीवन की सबसे क्रूर सच्चाई है।

गजाधर बाबू जीवन भर अपने परिवार को एक बेहतर जीवन देने के लिए नौकरी करते हैं। उनके बच्चे सुरक्षित रहे। पढ़ने–लिखने और उनकी तरक्की में कोई बाधा न आये। इसके लिए वे शहर में घर बनवाते हैं। जबकि खुद रेलवे क्वार्टर में जीवन–भर अकेले रह जाते हैं। सेवानिवृत्त होने के बाद नौकरी छूटने का दुख नहीं है बल्कि खुशी इस बात की है कि वर्षों बाद अपने परिवार के साथ रहने का अवसर आ गया है। वे खुशी–खुशी अपना बोरिया–बिस्तरा समेटकर अपने घर पहुंचते हैं।

'अपने घर' में उन्हें जल्दी ही अहसास हो जाता है, यह घर उनका नहीं है। उनके अपने बच्चों का व्यवहार गजाधर बाबू के प्रति रुखा और असंवेदनशील है। उनके घर वापसी से घर का कोई सदस्य खुश नहीं है। दुर्भाग्य से उनकी पत्नी भी नहीं, "जिसके हाथों के कोमल स्पर्श, जिसकी मुसकान की याद में उन्होंने सम्पूर्ण जीवन काट दिया था।" गजाधर बाबू महसूस करते हैं कि उनकी पत्नी 'उनके मन और प्राणों के लिए नितान्त अपरिचिता है।' बच्चों के साथ–साथ पत्नी का बदला रवैया देख उनका मन विक्षोभ से भर जाता है। परिवार के सदस्यों से मिल रही उपेक्षा उनके लिए असहनीय है। जीवन भर अपने जिस परिवार की जरूरतों को वे पूरा करते रहे, उनके घर उन्हीं के लिए एक चारपाई तक बिछाने की जगह नहीं बची है।

गजाधर बाबू विचित्र तरह की यातना से गुजरने लगे हैं। एक व्यक्ति जीवन भर अपने परिवार के लिए धनोपर्जन करता है और अन्ततः उसे इस बात का भान हो जाए कि वह तो केवल अपने परिवार के लिए धनोपार्जन का माध्यम है। इसके अतिरिक्त हर नाता–रिश्ता छलावा भर है। गजाधर बाबू धीरे–धीरे टूट–बिखर रहे हैं। अनेकानेक बातें उनके मन में तूफान मचा रखा है। स्वभाव से हंसमुख और मिलनसार गजाधर बाबू के साथ बैठने, बात करने, अपना सुख–दुख साझा करने वाला परिवार का कोई सदस्य नहीं है। उषा प्रियंवदा ने गजाधर बाबू के अर्न्तद्वंद्व को बेहद मार्मिक ढंग से उजागर किया है। वे महसूस करते हैं कि उनके लिए अपने ही घर में रहने की कोई जगह नहीं बची है। घर का माहौल भी उनके अनुकूल नहीं रहा। कोई नहीं चाहता कि वे घर के किसी छोटे–बड़े मामले में हस्तक्षेप करें। बल्कि उनका किसी मामले में दखल देना नागवार लगता है। यह सब देखकर गजाधर बाबू गहरी उदासी में डूब जाते हैं।

गृह स्वामी की ऐसी उपेक्षा का चित्रण दुर्लभ है। गजाधर बाबू को लगने लगता है कि उनका पहले का जीवन ही ठीक था। अकेले रहकर अकेला हो जाना तकलीफदेह नहीं है लेकिन पूरे परिवार के बीच रहने पर अकेलेपन को झेलना, उसे महसूस करना घोर यातना से गुजरना है। गजाधर बाबू को अपने रेलवे क्वार्टर वाला जीवन 'खोयी सी निधि' मालूम पड़ती है। वे महसूस करते हैं कि 'वह जिन्दगी द्वारा ठगे गये हैं। उन्होंने जो कुछ चाहा, उसमें से एक बूंद भी न मिली।''

परिवार के लिए गजाधर बाबू की 'वापसी' अवांछनीय प्रतीत होती है। घरवालों की रवैया देखकर वे कुण्ठा से भर गए हैं। जीवन के अंतिम पड़ाव में पहुंचे गजाधर की निरर्थकताबोध किसी को भी हिलाकर दे। वे फिर 'वापसी' विवश है। पहली 'वापसी' से वे कितना खुश थे। कितना प्रसन्नचित। लेकिन वास्तविकता से पाला इतनी जल्दी–जल्दी पड़ जाएगा, यह उम्मीद उन्हें नहीं थी। गजाधर बाबू अपनी पत्नी से बताते हैं कि सेठ रामजीमल की चीनी मिल में उन्हें नौकरी मिल गई हैं 'तुम भी चलोगी?' साथ चलने के जिक्र भर से उनकी पत्नी सकपका जाती है। टालमटोल के अंदाज में अपना पक्ष रखती है कि इतनी बड़ी घर–गृहस्थी को छोड़कर कैसे चली जाये। गजाधर बाबू को समझते देर नहीं लगती। नरेन्द्र बड़ी तत्परता के साथ उनका बोरिया–बिस्तरा बांध दिया और फुर्ती के साथ रिक्शे वाले को बुला लाया था। उनके जाने से परिवार के सभी सदस्य खुश हैं। किसी से कोई आत्मीय रिश्ता नहीं। उनके चले जाने के बाद घर के बाकी सदस्यों को तनिक भी अफसोस नहीं होता। सभी अपनी दिनचर्या में मग्न हो जाता है। कहानी की अंतिम पंक्ति–''अरे नरेन्द्र, बाबूजी की चारपाई कमरे से निकाल दे। उसमें चलने तक की जगह नहीं है।'' यह भयंकर संवेदनहीनता का परिचायक है।

उषा प्रियंवदा ने अपनी अनेक कहानियों में 'अकेलापन' 'अजनबीपन' और 'उदासी' का चित्रण किया है लेकिन गजाधर बाबू की उदासीनता सबसे अलग है। यह किसी विवशता की वजह से नहीं है बल्कि भारतीय मध्यवर्गीय समाज की मानसिकता का अंकन है। घर के बूढ़े–बुजुर्ग इसी निरर्थकताबोध के साथ अपना बचा–खुचा जीवन व्यतीत करने के लिए अभिशप्त है। इस कहानी में अनेक पक्षों का उद्घाटन कहानीकार ने बड़ी सशक्त ढंग से किया है।

कथानक

कहानी में कथ्य का विशेष महत्व है। उषा प्रियंवदा कथ्य (विषय वस्तु) के प्रति तटस्थ है और इसी में उनकी कहानी कला का मूल सौंदर्य छिपा दिखायी देता है। एक विद्वान, समीक्षक के अनुसार उनकी विदेश प्रवास की कहानियों के कथानक भारतीय और पाश्चात्य जीवन में सामंजस्य स्थापित करने वाले वातावरण से ओत–प्रोत हैं। भारत में रहकर अनेक छात्र और बुद्धिजीवी विदेशों की एक अत्यंत मोहक कल्पना करते हैं। यह कल्पना उनमें कैसे द्वंद्व की सृष्टि करती है, इस द्वंद्व को लेखिका ने 'कितना बड़ा झूठ' की कहानियों का विषय बनाया है। वस्तुतः उनकी अधिकांश कहानियों में रूढ़ियों, भूत–परंपराओं और जड़–मान्यताओं पर मीठी चोटों की झनकार निकलती है। डॉ. पांडेय शशिभूषण 'शीतांशु' ने लिखा है कि–"उषा प्रियंवदा ने तो धीरे–धीरे मरने वाले प्रेम को जबरदस्त गवाही दे सकने वाली भाषा के सहारे भी प्रेम संबंधी कहानियों की ही खोज की है। पारदर्शिता के रहते हुए भी उनकी बीचों–बीच जैसे कांचिया भित्ति स्थिर खड़ी है। प्रेम का यह यथार्थ चित्रण पारस्परिक ठंडेपन और बेगानेपन का व्यक्तिकरण है। इसके मूल में पश्चिमी जीवन की उन्मुक्त, खुली, काम–कुंठा व प्रतिक्रिया भी स्वीकृत है, जिसे उपेक्षित नहीं किया जा सकता। प्रेम के यथार्थ चित्रात्मक प्रयोग की ये कहानियां सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संक्रमण के रूप में अर्जित हुई हैं।

चरित्र–चित्रण

कहानी में पात्रों का सही चयन उनका सही चित्रांकन अति आवश्यक है क्योंकि कहानी एक वनस्थली नहीं एक गुलदस्ता है और इसमें चरित्रांकन को अधिक अवकाश नहीं होता और न ही अधिक पात्र खप सकते हैं। इनकी कहानियों के पात्र जीवन से चुने गए हैं जिनमें नारी पात्रों की अधिकता है। अपने पात्रों की विभिन्न परिस्थितियों, समस्याओं की पैनी पकड़ उषा प्रियंवदा में है। इसलिए इन्होंने बदलती हुई परिस्थितियों, समस्याओं और भावनाओं को अंतर्द्वंद्व के माध्यम से अपने पात्रों में उभारा है। पात्रों का चरित्र–चित्रण भी इन्होंने बड़े मनोयोग से किया है। पात्र स्वाभाविक है, हमारे आस–पास के जीवन में छितराए हुए दिखाई देते हैं।

कथोपकथन

कथोपकथन की आवश्यकता कहानियों में सजीवता और यथार्थता को उभारने के लिए पड़ती है। कथोपकथन कहानी की जान है। इसके पात्र और प्लांट दोनों का सुंदर विकास होता है। परंतु कथोपकथन स्वाभाविक होना चाहिए। उषा जी की कहानियां संवाद की दृष्टि से पूर्णतः सफल हैं। उनकी कहानियों के संवाद प्रायः संक्षिप्त, मार्मिक तथा भावाभिव्यंजक हैं। वे पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं के उद्‌घाटन में भी पूर्ण सक्षम रहे हैं। 'वापसी' कहानी का यह संवाद गजाधर बाबू की विवशता का सही चित्र उभार देता है–

"बिट्‌टो, चाय तो फीकी है।"

'लाइए चीनी और डाल दूं।' बसंती बोली।

"रहने दो, तुम्हारी अम्मा जब आयेगी, तभी पी लूंगा।"

देशकाल और वातावरण योजन

कहानी में वातावरण इस प्रकार उभरना चाहिए कि कथानक के स्वाभाविक विकास में बाधा न पड़े, साथ ही उसका वर्णन भी आवश्यकता से अधिक न हो कि मुख्य कथा से ही ध्यान हट जाए। कहानी में लंबे प्रकृति–वर्णन तथा किसी वातावरण (स्थल आदि का) का सविस्तार वर्णन आवश्यक है। इससे कहानी का कलात्मक सौंदर्य बाधित हो जाता है। उषा प्रियंवदा की कहानियों में देशकाल तथा वातावरण की अनुपम सृष्टि हुई है। एक समीक्षक का कथन है–"आज के पारिवारिक वातावरण की यथार्थ अभिव्यक्ति करने में उषा जी का कोई प्रतिद्वंद्वी ही नहीं है। वस्तुतः प्रतिद्वंद्वी यथार्थ की पकड़ तो उनकी गहरी है ही, पारिवारिक जीवन में नित्य होने वाले परिवर्तनों, रूढ़ियों के तिरस्कार एवं नवीन मूल्यों में प्रवेश को उन्होंने अत्यंत जागरूक एवं खुली दृष्टि से देखा परखा है, जो कहानी में पूर्ण लेखकीय संवेदना के साथ उभरा है। डॉ. छविनाथ त्रिपाठी के अनुसार–"कहानियों की समस्याएं मनुष्य के मानसिक और बाध्य जीवन से संबंध रखती हैं और जीवित रूप में उपस्थित की गई हैं। एक सहज और स्वाभाविक नारी–सुलभ मर्यादा के कारण, दृष्टिकोण और उसकी कलात्मक, अभिव्यक्ति पर जो प्रभाव पड़ना चाहिए, उसका भी दर्शन होता है।

भाषा शैली

भावों की अभिव्यक्ति का माध्यम भाषा ही है और भावों की प्रभावपूर्ण एवं कलात्मक अभिव्यक्ति की पद्धति ही शैली है। कहानी में भाषा–शैली का विशेष महत्व है। उषा प्रियंवदा की भाषा सुंदर परिचित पारिवारिक भाषा है, वह परिनिष्ठित खड़ी बोली है। साथ ही प्रांजलता ने उसे दुरूह नहीं बनाया है। सर्वत्र एक सहज व्यावहारिकता का समावेश उनकी कहानियों की प्रमुख विशेषता रही है।

उनकी कहानियों का शिल्प परिपक्व है। वह भार विहीन और आकर्षक है। कहानियों को कथोपकथन शैली से विकसित करना लेखिका की कला है। जिसमें यत्र–तत्र सूक्ष्म व्यंग्य का समावेश कहानी लेखिका के बौद्धिक विकास का परिचायक है। डॉ. छविनाथ त्रिपाठी ने लिखा है कि "इनकी कहानियों की अभिव्यक्ति सहज और स्वाभाविक है तथा शैली और शिल्प की दृष्टि से उसमें किसी प्रकार की उलझन नहीं है। उन्मादपूर्ण भावुकता के अभाव में भी अनुभूति के छोटे–छोटे बिंब चित्र उपलब्ध होते हैं।"

उद्देश्य

उषा प्रियंवदा की कहानियों का उद्देश्य नारी मनोविज्ञान का चित्रण है। इसका विवेचन इस प्रकार किया जा सकता है–

(अ) **नयी नारी**– उषा प्रियंवदा की अधिकांश कहानियों का विषय आधुनिक परिवेश में उभरती नयी नारी है– ऐसी नारी जो शिक्षित है, प्रबुद्ध है और अपने अधिकारों को पहचान रही है। इन्होंने प्रायः स्कूल–कॉलेज की अध्यापिकाओं को अपनी कहानियों का केंद्र बनाया है, क्योंकि उसके माध्यम से ये आज की नारी की बहुत सी समस्याओं को हमारे सामने रख सकती हैं। हो सकता है कि इस दिशा में इनका ज्ञान अधिक हो; पर इसमें कोई संदेह नहीं कि आधुनिक नारी की सभी प्रकार की कुंठाओं का विश्लेषण लेखिका ने बिना किसी प्रकार की झिझक से किया है।

(आ) **जटिल स्वभाव का चित्रण**– अपनी रोमांटिक कहानियों में नारी के अत्यंत जटिल स्वभाव का विश्लेषण करते हुए उन्होंने उसके अकेलेपन को पकड़ने का सफल प्रयास किया है। इनके कुछ पुरुष पात्र भी प्रेम की मनोग्रंथि के कारण अजनबीपन, अलगाव और सूनेपन की भावना से ग्रस्त और पस्त हैं। इनके अनुसार भोग जीवन की वेदना को भुलाने का उपचार नहीं है। सुख के चरम क्षण के भीतर भी असफल प्रेम की स्मृति का स्पंदन बराबर बना रहता है। इस प्रकार की रचनाओं में 'कितना बड़ा झूठ', 'मोहबंध', 'पिघलती हुई बर्फ', 'टूटे हुए' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। देशी–विदेशी वातावरण में प्रस्तुत की गई ये कहानियां आज के प्राणी के मनोविज्ञान को गहराई से रेखांकित करती हैं।

उषा प्रियंवदा ने नारी हृदय के निगूढ़तम सत्य को सहज रूप से ग्रहण करके स्वाभाविक अभिव्यक्ति दी है। इनकी कहानियां केवल वहीं कम प्रभावशील हुई हैं जहां वे एक रेखाचित्र का रूप धारण कर लेती हैं पर जहां मूल संवेदना सशक्त है और ठीक से निर्मित हो पाई है वहां इनकी कहानी अलग चमक उठी है। इन कहानियों में 'वापसी' तो ऐसी है जो इन्हें सम–सामयिक साहित्य में सफलतम कहानीकारों की अग्रिम पंक्ति में खड़ा रख सकेगी।

यह कहा जा सकता है कि कोमल संवेदनाओं की व्यंजना के लिए रम्य प्राकृतिक दृश्यों, रंग गद्य के प्रसाधनों तथा उपयुक्त प्रतीकों का गुंफन, इनकी कला को दीप्ति प्रदान करता है।

4.6 सारांश

हिन्दी कहानी गद्य का रूप है। यह ऐसी विधा है जो जीवन को, परिस्थितियों को अपने में लेकर उलझी हुई समझ को सुलझा देती है। इसे उपन्यास का सूक्ष्मतम रूप कह सकते हैं क्योंकि इसमें पात्र हैं, संवाद हैं लेकिन उपन्यास की तरह विविधता, अनेकता नहीं है। कहानी जीवन के किसी अवसर विशेष का ही चित्र उपस्थित करती है। कहानी के विकास क्रम की पांच अवस्थाएं मानी जाती हैं–प्रारंभ, आरोह, चरमोत्कर्ष, अवरोह और अंत। अनेक कहानियां चरमोत्कर्ष पर ही खत्म हो जाती हैं। कहानियां अपने युग और परिवेश की पहचान होती हैं।

लगभग 1900 ई. में कहानी लेखन की शुरुआत मानी जाती है। हिन्दी साहित्य में कहानी का प्रवेश इसी दौरान हुआ। जीवन के किसी एक अंग या संवेदना की अभिव्यक्ति हम कहानी के माध्यम से कर सकते हैं। कम से कम शब्दों में तथ्यों की अभिव्यक्ति करना कहानी का मुख्य उद्देश्य होता है। जयशंकर प्रसाद कहानी विधा में युगीन कथाकार हैं। प्रसाद जी की कहानी कला का समय के साथ–साथ स्वतः ही विकास हुआ है। किसी भी साहित्यकार का मूल्यांकन उसकी सामाजिक प्रासंगिकता पर निर्भर होती है। जिन परिस्थितियों में प्रसाद जी पले–बढ़े और अपना जीवनयापन किया हम उसे नजरअंदाज नहीं कर सकते। जीवन के अंतर्द्वन्द से निकलकर वे बौद्ध धर्म की ओर आकृष्ट हुए।

प्रसाद जी ने अपनी कहानियों के द्वारा मानव मनोविज्ञान का चित्रण किया है। अपनी कहानियों में प्रसाद जी ने जीवन की सच्चाई को अभिव्यक्ति दी है। समय के साथ–साथ प्रसाद जी की कहानियों में कला का विकास निरंतर दिखाई देता है। इनकी कहानियों में भावुकता, कल्पना और सांस्कृतिक चेतना कूट–कूट कर भरी हुई हैं।

'पुरस्कार' विशेषरूपेण ध्यान आकर्षित करने वाली कहानी है। प्रसाद जी की श्रेष्ठ कहानियों का प्राणतत्त्व–अंतर्द्वंद्व और नाटकीयता लिये यह कहानी भावनात्मकता स्तर तक ले जाती है। हिन्दी कथाकारों में अनुभव वैविध्य की दृष्टि से प्रसाद जी का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

हिन्दी कथा साहित्य के क्षेत्र में प्रेमचंद–युग प्रवर्तक कहे जाते हैं। उन्होंने सुप्त जन–चेतना को जगा दिया। इन्होंने हिन्दी–जगत को कुल नौ कहानी–संग्रह दिए हैं। इन कहानियों में जन–जीवन की प्रगति, ग्राम्य जीवन की सुंदर झांकियां हैं। प्रेमचंद को जनजीवन की गहन अनुभूति थी। वे गांवों के सरल जीवन से अत्यंत प्रेरित थे किंतु उसकी दुर्दशा से दुखी भी थे। इसलिए उनके पात्र यथार्थ के अत्यंत समीप हैं। प्रेमचंद एक महान कथाकार थे। आज भी वे नवीन कथाकारों के प्रेरणास्रोत माने जाते हैं।

प्रेमचंद ने कहानीकार और उपन्यासकार दोनों रूपों में हिन्दी कथा साहित्य में युगान्तरकारी परिवर्तन पैदा किया। सत्य और असत्य का संघर्ष ही मूलतः उनके कथा साहित्य के आधार है। उनके कथा साहित्य में एक ओर भारतीय आदर्शवादी सोच है तो दूसरी ओर यथार्थवादी दृष्टिकोण भी जो समसामयिक जीवन की विषमताओं और विसंगतियों को पूरी तीव्रता के साथ उजागर करना चाहती हैं। कथानक की दृष्टि से प्रेमचंद का कथा–साहित्य बड़ी व्यापकता लिए हुए है। ऐतिहासिकता, सामाजिक,? धार्मिक, राजनैतिक सभी क्षेत्रों से उन्होंने अपनी कहानियों के कथानक लिए हैं। सामाजिक कहानियों में प्रेमचंद जी को विशेष रूप से सफलता मिली है। ऐसी कहानियों में उन्होंने समाज सुधार, ग्रामीण नागरिक और नारी जीवन की अनेक प्रकार की समस्याओं का चित्रण किया है।

प्रेमचंद की कहानियों के कथोपकथन भी बड़े स्वाभाविक और सजीव हैं। वे सर्वत्र, देश, काल, परिस्थिति, स्वभाव तथा रुचि के अनुकूल हैं। वह शिक्षित–अशिक्षित, राजा–रंक, सेठ–मजदूर सबके मुंह से मर्यादानुकूल उसी की भाषा में बातचीत कराते हैं। इसके साथ ही वह कथोपकथन की सुसंबद्धता, उसकी शृंखला और नियंत्रित स्वरूप का भी ध्यान रखते हैं।

प्रेमचंद की कहानियों में शैली के भी अनेक रूप होते हैं। उनकी शैली वर्णनात्मक, संकेतात्मक, चित्रात्मक, नाटकीय और हास्य–व्यंग्य का पुट लिए होती है। शिल्प विधान की दृष्टि से भी उन्होंने आत्म चरित्रात्मक, ऐतिहासिक, नाटकीय, पत्रात्मक व डायरी–शैली आदि का प्रयोग अपनी रचनाओं में आवश्यकता को देखते हुए किया है। वैसे ऐतिहासिक शैली उनकी प्रिय शैली रही है। इस शैली की कहानियां खासी चर्चित रही हैं।

यशपाल की रचनाओं में क्रांतिकारी दर्शन स्पष्ट तौर पर होते हैं। उन्होंने संघर्षरत व्यक्तियों को अपनी रचनाओं में आत्मीयता प्रदान की। उनकी कहानियां विभिन्न परिवेशों पर आधारित हैं। जिसमें राजनीतिक, आर्थिक व मनोवैज्ञानिक परिवेश पर आधारित

कहानियां प्रमुख हैं। पाठक के लिए सरलता से ग्राह्य भाषा का प्रयोग करते हुए उन्होंने संपूर्ण संवेदना को प्रदर्शित किया है।

यशपाल द्वारा लिखित कहानी मध्य वर्ग के परिवार की कहानी है। इसमें कर्ज के मारे चौधरी खानदान के मुखिया की आज की माली हालत का वर्णन बड़े ही प्रभावी ढंग से किया गया है। कर्ज में डूबे चौधरी की मानसिकता और अंतर्द्वंद्व का बड़ा ही लाचारी का चित्र खींचा गया है। घरेलू परेशानियों को भी प्रभावी ढंग से व्यक्त किया गया है। कहानी में परदे की उपयोगिता का बड़ा ही प्रभावी वर्णन किया गया है।

उषा प्रियंवदा ने खुद को नयी कहानी आंदोलन के नारों से अलग रखा था। इसके बावजूद उनकी कहानियों में 'नयी कहानी' का 'अकेलापन', 'अजनबीपन' और 'उदासी' घनीभूत रूप से दिखायी पड़ता है। उषा प्रियवंदा की कहानियों में पारिवारिक टूटन, घुटन, कुण्ठा आदि वृत्तियों का अंकन प्रभावी ढंग से अभिव्यक्त हुआ है।

उषा प्रियंवदा ने नारी हृदय के निगूढ़तम सत्य को सहज रूप से ग्रहण करके स्वाभाविक अभिव्यक्ति दी है। इनकी कहानियां केवल वहीं कम प्रभावशील हुई हैं जहां वे एक रेखाचित्र का रूप धारण कर लेती हैं पर जहां मूल संवेदना सशक्त है और ठीक से निर्मित हो पाई है वहां इनकी कहानी अलग चमक उठी है। इन कहानियों में 'वापसी' तो ऐसी है जो इन्हें सम–सामयिक साहित्य में सफलतम कहानीकारों की अग्रिम पंक्ति में खड़ा रख सकेगी।

'वापसी' कहानी में 'गजाधर बाबू' जिस तरह अपने परिवार में असंगत हो जाते हैं, यह आधुनिक भारतीय मध्यवर्ग के जीवन की त्रासदी है। 'वापसी' कहानी में गजाधर बाबू का अपने परिवार के बीच अकेला हो जाना, आज के जीवन की सबसे क्रूर सच्चाई है।

उषा प्रियंवदा ने अपनी अनेक कहानियों में 'अकेलापन' 'अजनबीपन' और 'उदासी' का चित्रण किया है लेकिन गजाधर बाबू की उदासीनता सबसे अलग है। यह किसी विवशता की वजह से नहीं है बल्कि भारतीय मध्यवर्गीय समाज की मानसिकता का अंकन है। घर के बूढ़े–बुजुर्ग इसी निरर्थकताबोध के साथ अपना बचा–खुचा जीवन व्यतीत करने के लिए अभिशप्त है। इस कहानी में अनेक पक्षों का उद्‌घाटन कहानीकार ने बड़ी सशक्त ढंग से किया है।

4.7 मुख्य शब्दावली

- **तिरस्कार** : घृणा, अवहेलना।
- **दारूण** : दयनीय, बुरी।
- **आघात** : प्रहार, चोट।
- **अभिन्न** : महत्वपूर्ण, आवश्यक।
- **प्रबल** : मजबूत, बलवान, प्रभावी।

4.8 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1. काशी में
2. उर्वशी, लहर
3. कृषि महोत्सव
4. (क) गलत, (ख) सही
5. नवाबराय
6. कर्बला, प्रेम की वेदी
7. स्वाभाविक रूप में
8. (क) सही, (ख) गलत
9. कांगड़ी गुरुकुल में
10. विप्लव
11. सामाजिक, आर्थिक, वैयक्तिक एवं राजनीतिक
12. (क) गलत, (ख) सही
13. नई कहानी
14. पचपन खम्भे लाल दीवारें, शेष यात्रा
15. पारिवारिक टूटन, घुटन, कुंठा आदि
16. (क) सही, (ख) गलत

4.9 अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. कहानी विधा का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
2. जयशंकर प्रसाद का साहित्यिक परिचय दीजिए।
3. हिन्दी कथा साहित्य में प्रेमचंद का क्या स्थान है? संक्षिप्त में उत्तर दीजिए।
4. कथानक की दृष्टि से 'परदा' कहानी का वैशिष्ट्य बताइए।
5. यथार्थवादी कहानीकार के रूप में यशपाल का परिचय दीजिए।
6. नई कहानी आंदोलन में उषा प्रियवंदा के स्थान का उल्लेख कीजिए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. 'पुरस्कार' कहानी की तात्विक समीक्षा कीजिए।
2. 'पूस की रात' कहानी का मूल भावना स्पष्ट कीजिए।

3. 'पूस की रात' कहानी का समीक्षात्मक अध्ययन कीजिए।
4. 'परदा' कहानी में लेखक यशपाल ने मनुष्य जीवन के जिस यथार्थ का चित्र उकेरा है, उस पर प्रकाश डालिए।
5. 'वापसी' कहानी में व्यक्त मूल संवेदना पर विचार कीजिए।
6. 'वापसी' कहानी का कथासार अपने शब्दों में लिखिए।

4.10 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1. *जयशंकर प्रसाद की लोकप्रिय कहानियां,* प्रभात प्रकाशन, दिल्ली।
2. प्रभाकर श्रोत्रिय, *जयशंकर प्रसाद की प्रासंगिकता,* भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2004.
3. प्रेमचन्द, *प्रेमचन्द की सम्पूर्ण कहानियां,* सुमित्र प्रकाशन इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण, 2008.
4. *यशपाल की सम्पूर्ण कहानियां,* खण्ड 1 से 4, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण, 2000.
5. उषा प्रियंवदा, *मेरी प्रिय कहानियां,* राजपाल एंड संस नई दिल्ली– 1974.
6. उषा प्रियवंदा, *मेरी कहानियां,* सं. निर्माला जैन, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
7. विश्वनाथ त्रिपाठी, *कुछ कहानियां कुछ विचार,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1998.
8. रामविलास शर्मा, प्रेमचन्द और उनका युग, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1993.

इकाई 5 : विविध विधाएं – II

5.0 परिचय

लोकप्रिय हिंदी आलोचक, निबंधकार, साहित्येतिहासकार, अनुवादक, कथाकार और कवि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिंदी में पाठ आधारित वैज्ञानिक आलोचना के सूत्रधार हैं। आपने इतिहास लेखन में रचनाकार के जीवन और पाठ को समान महत्व दिया है।

निबंध साहित्य में भी आचार्य शुक्ल का योगदान अहम है। भाव एवं मनोविकार संबंधी मनोविश्लेषणात्मक निबंध उनके प्रमुख हस्ताक्षर हैं। अपने प्रतिनिधि निबंध मित्रता में आचार्य शुक्ल ने मित्र के स्वरूप, चयन, कर्तव्य सरीखे विविध पहलुओं पर मार्गदर्शनात्मक प्रकाश डाला है। वे लिखते हैं– "हमें ऐसे मित्र की खोज में रहना चाहिए, जिनमें हमसे अधिक आत्मबल हो।... मित्र हों तो प्रतिष्ठित और शुद्ध हृदय के हों। मृदुल और पुरुषार्थी हों, शिष्ट और सत्यनिष्ठ हों।..."

महादेवी वर्मा हिंदी साहित्य के छायावादी युग के चार प्रमुख स्तंभों में से एक हैं। इन्हें आधुनिक मीरा कहा जाता है। निराला ने इन्हें हिंदी के विशाल मंदिर की सरस्वती भी कहा है।

महादेवी वर्मा उन कवियों में से एक हैं जिन्होंने व्यापक समाज में काम करते हुए भारत के अंदर व्याप्त पीड़ाजनित हाहाकार–रुदन को न सिर्फ देखा–परखा वरन् करुण होकर अंधकार को दूर करने वाली दृष्टि देने की कोशिश भी की। उनका प्रासंगिक रेखाचित्र 'प्रथम भेंट–अंतिम भेंट' इसी तरह की रचना है। इसमें उन्होंने नारी की व्यथा–कथा का मार्मिक चित्रण किया है।

डॉ. विद्यानिवास मिश्र की विद्वता से हिंदी साहित्य–संसार का कोना–कोना परिचित है। आप संस्कृत के प्रकांड विद्वान एवं विविध देशों के भ्रमण से अर्जित सांस्कृतिक ज्ञानोनुभव से समृद्ध साहित्यकार हैं, जिसका विधायी प्रभाव आपके सृजन में दिखाई देता है। डॉ. मिश्र ने हिंदी साहित्य को ललित निबंध परंपरा से अवगत कराया। इनके निबंधों का संसार इतना व्यापक और बहुआयामी है कि प्रकृति, लोकतत्व, बौद्धिकता, सर्जनात्मकता, कल्पनाशीलता, काव्यात्मकता, रम्य रचनात्मकता, भाषा की उर्वर सृजनात्मकता एवं संप्रेषणीयता इनमें एक साथ अंतःग्रंथित मिलती है। पाठ्य निबंध 'बसंत आ गया पर कोई उत्कंठा नहीं', इनका ललित निबंध है, जो इनके ऐसे ही रचना–कौशल का परिचय देता है।

भारतीय स्वाधीनता आंदोलन में सक्रिय रहे उदयशंकर भट्ट ने कहानी, उपन्यास, आलोचना, नाटक एवं एकांकी के क्षेत्र में अपनी अमिट छाप छोड़ी है। इनकी रचनाधर्मिता इन्हें बहुमुखी प्रतिभा के समर्थ साहित्यकार के रूप में स्थापित करती है। नाटक, गीतनाट्य एवं एकांकियों का इनका क्षेत्र व्यापक है। इनमें इन्होंने जीवन के विभिन्न पहलुओं का चित्रण मार्मिक रूप से किया है।

उदयशंकर भट्ट की आलोच्य एकांकी 'नए मेहमान' एक समस्या–प्रधान एकांकी है। महानगरों की बढ़ती जनसंख्या के कारण उत्पन्न आवासीय समस्या इस एकांकी का आधारभूत विषय है।

इस इकाई में हम आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के निबंध 'मित्रता', महादेवी वर्मा के रेखाचित्र 'प्रथम भेंट–अंतिम भेंट', डॉ. विद्यानिवास मिश्र के ललित निबंध 'बसंत आ गया पर कोई उत्कंठा नहीं' और उदयशंकर भट्ट कृत एकांकी 'नए मेहमान' का समीक्षात्मक अध्ययन करेंगे।

5.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल से परिचित होते हुए उनके निबंध 'मित्रता' का समीक्षात्मक अध्ययन कर पाएंगे;
- महादेवी वर्मा के रेखाचित्र 'प्रथम भेंट–अंतिम भेंट' के विविध पक्षों को समझ पाएंगे;
- डॉ. विद्यानिवास मिश्र के व्यक्तित्व–कृतित्व से अवगत होकर उनके ललित निबंध 'बसंत आ गया पर कोई उत्कंठा नहीं' का समीक्षात्मक आकलन कर पाएंगे;
- उदयशंकर भट्ट के संक्षिप्त जीवन वृत्त से परिचित होकर उनके एकांकी 'नए मेहमान' का समालोचनात्मक अवलोकन कर पाएंगे।

5.4 बसंत आ गया पर कोई उत्कंठा नहीं (ललित निबंध) : डॉ. विद्यानिवास मिश्र

हिन्दी साहित्याकाश में ख्यातिलब्ध संपादक, अनुवादक, शब्द कोषागार, समीक्षक, लेखक एवं कवि के रूप में देदीप्यमान डॉ. विद्यानिवास मिश्र के निबंध संग्रह 'बसंत आ गया पर कोई उत्कंठा नहीं' में कुल 22 निबंध संगृहीत हैं। बसंत आ गया... इस संग्रह का प्रतिनिधि निबंध है। निबंध–सार एवं इसके समीक्षात्मक अध्ययन से पूर्व डॉ. मिश्र से परिचित हो लेना समीचीन होगा।

5.4.1 डॉ. विद्यानिवास मिश्र : एक परिचय

'साहित्य अकादमी' (संस्करण 2016) की संपादकीय के अनुसार विद्यानिवास मिश्र का जन्म 14 जनवरी, 1926 को उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिले में स्थित पकड़डीहा गांव में हुआ। आपके पिता पंडित प्रसिद्ध नारायण मिश्र तथा माता गौरी देवी थीं। इनकी प्राथमिक शिक्षा गांव के प्राथमिक विद्यालय में तथा माध्यमिक शिक्षा गोरखपुर में संपन्न हुई। वर्ष 1939 में हाई स्कूल प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कर सेंट एंड्रूज कॉलेज गोरखपुर में प्रवेश लिया। इसी दौरान उन्होंने 'सरस्वती विलासिनी समिति' नामक संस्था में सक्रीय होकर हस्तलिखित पत्रिका 'मधुलिका' भी निकाली।

वर्ष 1941 में इंटरमीडिएट की परीक्षा प्रांतीय स्तर पर द्वितीय श्रेणी में पास की और फिर इलाहाबाद वि.वि. में अध्ययन आरंभ किया। वर्ष 1943 में बी.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण करने के साथ ही इन्होंने वैवाहिक जीवन में पदार्पण किया। इनका विवाह चंपारण (बिहार) के मंझरिया गांव निवासी शुकदेव प्रसाद तिवारी की पुत्री राधिका देवी से हुआ। विवाह के बाद भी इन्होंने अध्ययन जारी रखा।

वर्ष 1945 में आपने संस्कृत साहित्य से एम.ए. सर्वोच्च स्थान व स्वर्ण पदक के साथ उत्तीर्ण किया। 'दि डिस्क्रिप्टिव टेक्नीक ऑफ पाणिनी' नामक शोध प्रबंध पर आपको पी.एच. डी. की उपाधि मिली।

सृजनात्मक रुझान एवं विविध आयाम– मिश्र जी ने अपनी आयु के 11वें वर्ष से ही निबंधों के प्रति आकर्षित होकर लेख लिखने की चेष्टा की। यह 1937 का समय था। इलाहाबाद की पत्र–पत्रिकाओं में वे लिखते रहे। पहला निबंध संग्रह 'छितवन की छांह' का प्रथम संस्करण 1953 में प्रकाशित हुआ। अपनी रचनाओं के जरिए मिश्र जी ने परंपरा, परिवेश और परिवर्तन के स्वभाव की पहचान व आस्वाद कराने का बीड़ा उठाया। इस भूमिका निर्वहन की ऊर्जा उन्हें भारतीय संस्कृति की भीतरी जीवन शक्ति और लोक तथा शास्त्र की अंतःसलिला में अनवरत अवगाहन से प्राप्त हुई।

यद्यपि यह आस्वाद स्वभावतः एक आधुनिक मानस का था तथापि यह आधुनिकता आयातित और आरोपित न होकर संस्कार जन्य थी। यही कारण है कि उनकी कृतियों में विचारों से टकराव भी है और अभिनव तरीके से सोचने का निमंत्रण भी। वे जीवन के लघु–दीर्घ हर भांति के सुख–दुख से रूबरू कराकर यथार्थ का साक्षात्कार कराते हैं और पाठक को विश्वचेतना से संबद्ध करने का यत्न भी करते हैं।

अपनी विद्वता व रचनाकौशल के चलते डॉ. मिश्र को देश–विदेश में ख्याति मिली। म.प्र. के सूचना विभाग में कार्यरत रहने के बाद वे 1948 से 1977 तक संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय में अध्यापक रहे और फिर कुलपति भी। उन्होंने अमेरिका के कैलीफोर्निया विश्व विद्यालय एवं वाशिंगटन विश्व विद्यालय में हिन्दी का अध्यापन किया। वे भारतीय ज्ञानपीठ के न्यासी बोर्ड के सदस्य रहे और नवभारत टाइम्स के संपादक भी। वर्ष 1999 में भारत सरकार ने उन्हें साहित्य एवं शिक्षा के क्षेत्र में पद्म भूषण से सम्मानित किया।

कृतियां– ललित निबंध परंपरा में डॉ. विद्यानिवास मिश्र आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी और कुबेरनाथ राय के साथ मिलकर एक त्रयी रचते हैं। पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी के बाद अगर कोई साहित्यकार ललित निबंधों को ऊंचाइयों पर ले गया तो वे डॉ. मिश्र ही हैं। इनकी हिन्दी व अंग्रेजी में दो दर्जन से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हैं। महाभारत का काव्यार्थ, भारतीय भाषादर्शन की पीठिका, तुम चंदन हम पानी, बसंत आ गया पर कोई उत्कंठा नहीं, हिन्दी की शब्द संपदा चर्चित कृतियां हैं। इनकी कृतियों का विवरण निम्नांकित हैं–

निबंध संग्रह– छितवन की छांह (1952–1953), हल्दीदूब (1955), कदम की फूल डाल (1955–56), तुम चंदन हम पानी (1956–83), आंगन का पंक्षी और बनजारा मन (1963–88), मैंने सिल पहुंचाई (1966), भोर का आवाहन (1969), बसंत आ गया पर कोई उत्कंठा नहीं (1970–78), हिन्दी की शब्द संपदा (लेख) (1970), साहित्य का प्रयोजन, साहित्य की चेतना, मेरे निबंध, मेरी पसंदगी, मैं निर्णायक क्यों बनूं, गाने का मन, कंटिले कांटों के आर पार (1976), परंपरा बंधन नहीं (1976), अस्मिता के लिए (1980), निज मुख मुकुर (1980), कौन तू फुलवा बीननिहारी (1980), तमाल के झरोखे से (1981), परंपरा बंधन नहीं (1981), भ्रमरानंद का पत्र (1981), संचारिणी (1982), अंगद की नियति (1984), लागौ रंग हरी (श्याम रसायन) 1985, अगिन रथ (1985), गांव का मन (1985), मेरे राम का मुकुट भीग रहा है (1986 तृ.सं.), शेफाली झर रही है (1987), नैरन्तर्य और चुनौती (1988), भारतीयता की पहचान (1989)।

संपादित– स्तवक, वैयाकरणं भूषणम्, आधुनिक हिन्दी निबंध, गति और रेखा, आधुनिक निबंधावली, देव की दीपशिखा, रसखान रचनावली, संघर्ष के सोपान, आज के लोकप्रिय कवि–'अज्ञेय', रहीम–रचनावली, तुलसी मंजरी, आधुनिक हिन्दी कविता (विदेश में), सभापतियों के भाषण, भाग–2, हिन्दी सेवा की संकल्पना, श्यामसुन्दर दास निबंधावली, ब्रज के लोक मंगल का संसार, सत्यनारायण कविरत्न ग्रंथावली, भारतेंदु मुकुट, प्रौढ़ों का शब्द संसार, चंदन चौक (लोक गीतों का संग्रह), सूर वाङ्मय सूची, सूर–प्रयोग वार्षिकी कोश, बाबू श्याम सुंदरदास के निबंधों के संग्रह।

खोजपूर्ण साहित्य– हिन्दू धर्म जीवन में सनातन की खोज, भारतीय भाषा–शास्त्रीय चिंतन की पीठिका, रीति विज्ञान, हिन्दू धर्म दीपिका, भाषा और संप्रेषण, महाभारत का काव्यार्थ (1985)।

कविता संग्रह– पानी की पुकार (1978)।

कोश साहित्य– शासन शब्द कोश, दर्शन शब्द कोश, भाषा विज्ञान शब्द कोश, साहित्यिक ब्रजभाषा शब्द कोश, हिन्दी की शब्द संपदा (शब्दानुक्रमणिका) (1970)।

ध्वनि रूपक– पंचशर।

अनुवाद– अमरुक शतक (1982 ई. द्वि.सं.), मॉडर्न हिन्दी पोयेट्री (अंग्रेजी में), दि इण्डियन पोयेटिक ट्रैडिशन (अंग्रेजी में)।

शोध प्रबंध– दि डिस्क्रिप्टिव टेक्नीक ऑफ पाणिनी।

व्यक्ति को केंद्र में रखकर, महज उसे पैमाना मानकर एजेंडा तय करना समाज–संसार–सृष्टि के लिए ही नहीं, स्वयं व्यक्ति के लिए भी घातक है। ऐसी निजतावादी सोच का विकल्प संबंधों पर केंद्रित परस्पर निर्भर व अनुपूरक दृष्टि है। डॉ. मिश्र के रचना–संसार का मूल इसी दृष्टि से साहित्य व संस्कृति की समझ हम तक पहुंचाने की चुनौती है। यह अनायास नहीं है। इसकी जटिल व संश्लिष्ट रासायनिक पृष्ठभूमि है, जिसमें विभिन्न भाषाओं–साहित्यों–संस्कृतियों के प्रति एक उत्सुकतापूर्ण आकुलता, अपनी जड़ों से जुड़े रहकर भी अपनी निरंतर परीक्षा करते रहने की तैयारी एवं एक कवि हृदय की रचनाशीलता की प्रमुख भूमिका है।

संवाद हो व गति बनी रहे, इसलिए डॉ. मिश्र अनथक यात्री की भांति देश–विदेश की यात्राएं भी करते रहे। 14 फरवरी, 2005 को 80 वर्ष की आयु में एक सड़क दुर्घटना के बाद इनका निधन हो गया। साहित्य जगत में आपकी अर्थपूर्ण सक्रियता, उत्साह–वृत्ति और प्रतिबद्धतापूर्ण भागीदारी हमारे लिए स्पृहणीय बनी रहेगी।

5.4.2 मूल पाठ : बसंत आ गया पर कोई उत्कंठा नहीं

दो हजार वर्ष पूर्व किसी प्राकृत कवि ने लिखा–

दीसइ ण चूअमउलं अत्ता ण अ वाइ मलअगन्धवहो।
पत्तं वसन्तमासं साहइ उक्कण्ठिअं चेअम्।।

दीखते न बौर कहीं आम के
छू नहीं पाई अभी गंधलदी दखिना पवन।
पर अकुलाए चित्त न साखी भरी
सखि बसंत आ गया।

बसंत का प्रमाण ढूंढने की जरूरत नहीं, रागाकुल चित्त ही बसंत का प्रतिष्ठान है, इसलिए कोयल बोले न बोले, भोर में अलसायी दखिनैया बहे न बहे, आम में बौर आए न आए, महुआ के कूचे द्रवें न द्रवें, कुछ अंतर नहीं पड़ता, चित्त अकुला पड़े बस उसी क्षण बसंत का आविर्भाव हो गया। सुंदर दृश्य, मधुर शब्द, स्निग्ध स्पर्श, मदिरगंध और दूधधोया चांदनी का जल अपने आप में व्यर्थ हैं, ये अर्थ देते हैं निश्चित और निरुद्विगन चित्त को पर्युत्सुक बनाकर ही। यह पर्युत्सुकता 'अबोधपूर्व' का स्मरण है, अस्तित्व की निरंतरता का प्रतिबोधन है, 'मैं' की शृंखलाओं का संग्रंथन है, व्यष्टि और समष्टि चित्तों के मिलन की बेचैनी है। 'जननांतरसौहृद' या जन्मांतर–रीति या पिछली पहचान का वास्तविक अभिप्राय यही है कि इस पिंड में रह–रहकर ब्रह्मांड गूंजता है, उस गूंज को सुनकर उसके पीछे दौड़ जाने की बेकली उठती है और तब पिंड ही ब्रह्मांड बन जाता है पिंड का नवरसन ही बसंत बन जाता है।

पर आज चढ़े फागुन की ढलती दुपहरी में ललित निबंध के तगादों को पूरा करने बैठा हूं तो लगता है, बसंत आ गया है, कहीं मैं ही पीछे छूट गया हूं। जापानी कवि सहजो यासों के शब्दों में 'कोई मेरे हाथों एक छोटा–सा लिफाफा पकड़ा गया है, जिसमें एक संदेश है– 'आने वाली पूनो की रात पहाड़ियां दहक उठेंगी'। पर क्या करूं चित्त सुलगने को तैयार नहीं, बहुत फूंकता हूं तो धुआं होकर रह जाता है। मेरी आंखों से, मेरे कानों से बस अंधकार मूसलाधार बरस रहा है। किसी भी उषा की लाली की यहां पैठ नहीं, बस एक शून्य है, जिसमें न वृक्ष हैं, न घर, न घर के बाहर बैठा हुआ कुत्ता, पर शून्य बसेरा लिये चित्त है, जो न मरना चाहता है, न सोना, न सपनों में खोना, जो हर बेचैनी के खिलाफ जेहाद बोले हुए है, जो बस शांति का तिमिरगीत गाए जा रहा है, एकदम बेसुर, एकदम बेताल।

प्राकृत गाथाओं का भोला हिरन जंगल में आग लग जाने पर भी टेसू की सुधि में खोया रहता है और आज के कवि का विदग्ध चित्त टेसू के दहकने को कोई घटना ही नहीं मानता, जहां इतनी आग धधक रही हो, वहां एक फूल की ठंड शोखी की बिसात ही क्या? उससे क्या बनता–बिगड़ता है? कोई दिन नहीं जाता, जब किसी–न–किसी का अभिनंदन न हो, कोई–न–कोई टेसू न बन रहा या बनाया जा रहा हो, किस–किस टेसू का लेखा–जोखा रखा जाए?

और सेमल की कंटीली डालियों के गुलाबी रोमांचकारी रट्टू तोतों का मन ललचाएं, तो ललचाएं अंत में उधियाने वाले इस रागात्मक प्रपंच में इस तत्त्वान्वेषी आधुनिक बोध को क्या रस? मुझे तो नया संवत्सर एक पियक्कड़ अंधे की तरह सड़क पर लुढ़कता हुआ, अर्थहीन गीत गाता हुआ दिख रहा है, इसको तो तुम पुराने भंगोड़ियों बसंत के नाम नहीं पुकारते? अफ्रीका का आदिम कविचित्त पुकारता है, "सभ्यता का सूरज अपने बच्चों को भी कौर बना ले।" यह जो कमल खिला है, वह कमल नहीं मृत्यु है, यह सूरज के नासारंध्रों में से उगकर बाहर निकली है। जिसे तुम बसंत कहते हो, वह इसी मृत्यु कमल की रतनार वासना है। मुझे इस सूरज में, इस सूरजजनित मृत्यु में, ऐसे बसंत में कोई दिलचस्पी नहीं। मेरा कवि–मानस अनादिम है, पुरायठ है, जाने कितना तेल वह सोख चुका है और उस तेल के कारण कितनी धूल समेट चुका है। वह अब घरैतिन महिला का हृदय है जो प्राकृत गाथाकार के शब्दों में 'विश्रब्धहसित परिक्रमों' को, उच्छल हंसी, बांकी चितवन और ललित त्रिभंगी विलासों को एक साथ तिलांजलि दे चुका है और अपने को डुबा चुका है घर के कामकाज में, सांझ की सिरवाई से अब राहत की सांस नहीं मिलती, नदी की हिलोर से पुलक नहीं होती, चैत की चांदनी में चुरने के लिए मन उन्मन नहीं होता, बस घर–बार है और मैं हूं, बसंत की बेचैनी बड़ी बचकानी लगती है।

या मैं बसंत से डर रहा हूं, जैसे कोई अंधकार में श्मशान के पीपल की डाल से लटकती हुई किसी लाश से डरता हो। मैं डर रहा हूं क्योंकि बसंत मेरे डर जाने को प्रमाणित करने के लिए आ रहा है, मैं डर रहा हूं क्योंकि बसंत मेरे ऊपर पागलपन में चढ़ी हुई खोरे की बेल सरीखी मेरी प्रतिमा को झकझोर कर विलग कर देगा, उसे ढूह और हरियाली की लिपटन बरदाश्त नहीं है। नहीं, मैं बूढ़ा नहीं हुआ। बसंत ही बूढ़ा हो चला है। मैं आधुनिकता का प्रवाचक कभी बूढ़ा हो ही नहीं सकता, बसंत की प्रक्रिया में ही कोई

व्यक्तिक्रम आ गया होगा, किसी दुष्यंत ने अपनी विस्मृति की खोझ में यह डौंड़ी पिटवा दी होगी कि इस वर्ष मदनोत्सव नहीं मानाया जाएगा। जिसके कारण–

चूतानां चिरनिर्गतापि कलिका बध्नाति न स्वं रजः,
सन्नद्धं यदपि स्थितं कुरबकं ततकोरकावस्थया।
कण्ठेषु स्खलितं गतेऽपि शिशिरे पुंस्कोकिलानां रुतं
शङ्के संहरित स्मरोऽपि चकितस्तूणार्धकृष्टं शरम्।।

लंबे अरसे से आमों के बौर लगे हैं, पर उनमें पराग अभी नहीं पड़ रहा, कुरबैया बस अपनी कुड्मलावस्था में बाहर जाने को तैयार बैठा है, बाहर निकलने की हिम्मत नहीं कर पा रहा। कोयल का राग गले में रुंधा–सा है, यद्यपि शिशिर कभी का जा चुका। लगता है कामदेव भी अकचकाया–सा, तरकस के तीर निकालूं न निकालूं, आधा निकालकर फिर अंदर कर लेता है।

लगता है कि कुछ छंद बिगड़ गया है। जो लय जहां होनी चाहिए, वहां नहीं है, जहां न होनी चाहिए, वहां है। यह कुबड़ा आम इस साल ऐसा बौराया है कि कुछ न पूछो, इसकी बाढ़ जाने कब से रुकी है, पर यह विश्वास की प्रक्रिया को खुली चुनौती दे रहा है। समस्त युग, लगता है, ययातियों से छा गया है। हर ठूंठ जवानी की शर्त पर ही अपना ठीका सौंपने को राजी है। इसीलिए ठूंठ जवान हैं और जवान ठूंठ।

बसंत का उत्साह जितना बूढ़ों में है उतना तरुणों में नहीं, जितनी निर्मम तटस्थता तरुणों में है, उतनी बूढ़ों में नहीं। बूढ़े गले में ढोल बांधे चिल्लाते हैं– "शिवशंकर खेलें फाग संग लिए" और जवान खिड़कियों, दरवाजों में बंद कर घर में पड़े रहते हैं– मुझे चैन से रहने दो। बसंत जाते ही विद्यालयों में मायूसी छा जाती है, सालभर किए गए उपद्रव बेमानी लगने लगते हैं, लगता है कुछ नहीं होने का, एक निश्चित क्रम है, बसंत उसका है जिसके हाथ में सत्ता है, सत्ताहीन का कैसा बसंत? इसीलिए निर्मर्याद होने की, उच्छृंखल होने की छूट भी उसी को है, जिसके हाथ में बसंत है। वही नियामक और शासक की हैसियत से जितनी चाहे उतनी अनीति करे, शासक की हैसियत से चाहे दमन करे और स्रष्टा की हैसियत से जितना चाहे विध्वंस करे। उसे छूट है बचपन से खेले, तरुणाई से खेले।

जिनके लिए बसंत विधि होना चाहिए, उनके लिए निषेध हो गया है, वे निषेध से जीते हैं–

'अपने बचपन में मुझे स्कूल से नफरत थी
और फिर मुझे अब काम से नफरत है।
सबसे अधिक स्वास्थ्य और सफाई से नफरत है।
स्वास्थ्य और सफाई से बड़ा क्रूर
कोई मनुष्य के लिए हो नहीं सकता।
मुझसे कोई पूछे मैं क्यों पैदा हुआ,
बिना हिचक के कहूंगा नकारने के लिए
मैं जब पूरब हूं कहूंगा पच्छिम जा रहा हूं।
यही मेरी निष्ठा है, जीवन में नकारना ही एकमात्र मूल्य है।

नकारना ही जीवन है।
नकारना ही अपनी निजता को मुट्ठी में करना है।'

(कनेको मित्सुहारु)

जब तरुण इस प्रकार निर्विकार दृष्टि से अपने युग की संभावना को देखे, ऐसी दृष्टि से जिसमें न ईर्ष्या हो, न मत्सर, न काम हो, न क्रोध तब भला संभावना प्राकृत गाथाकार की नायिका की तरह–

सा तुह कएण बालअ अणिसं घरदारतोरणणिसण्णा।
ओससई वन्दणमालिअव्व दिअहं विअ बराई।।

'बेचारी तुम्हारे ही कारण बेटा! निरंतर दरवाजे की तोरण के नीचे बैठी–बैठी एक ही दिन में उसमें तनी बंदनवार की तरह क्यों न सूख जाए।'

पर यह 'बेटा' वह तरुण फूलों में एक अजीब दहशत देखता है, वह चिल्ला उठता है–

'उन्मद उनीदे फूल, मुझे थपकियां देकर सुला दो
पर मुझे तुम प्यार मत दो
उफ कितनी विपुल है तुम्हारी गंध
कितनी भारी है तुम्हारी गुलाबी रून
कितनी अतिअंजी है तुम्हारी दीठ
कितनी तपी है धूप में तुम्हारी रूह
मैं अकेले कांपता हूं तेरा हाथ अपने हाथ लेते
कांपता हूं कहीं तुम एक दिन नारी न बन जाओ।
उन्मद उनीदे फूल।'

(अल्फांसो रेयज़)

उसे दहशत है अपनी पूर्णता से, क्योंकि वह तथाकथित पूर्णताओं से चिपका हुआ है। जीवन की पूर्णता के प्रतिमान इतने रीते लगे हैं कि वह अधूरा बने रहना चाहता है, रीतेपन का जोखिम नहीं उठाना चाहता। उसकी पूरी–की–पूरी पीढ़ी इसी रीतेपन के त्रास से आतंकित है, रीतापन जो उसका नहीं, उसकी पिछली पीढ़ी का है, उस पीढ़ी का, जिसके लिए बसंत एक नीलाम की मुनादी है, एक कानूनी रस्म है, जिसकी पूर्ति इसलिए होनी है कि आज तक होती आई, जिसके लिए क्रमभंग का भय इसलिए इतना यथार्थ है कि वह पीढ़ी मात्र क्रम है, क्रम को छोड़कर कुछ भी नहीं। वह पीढ़ी टूटकर भी जुड़े रहना चाहती है, इसलिए वह मीनाक्षी मंदिर के बजनेवाले खोखले खंभों से पारस्परिक मूल्यों को बारी–बारी से थाम्हती चलती है, उन खंभों से निकली हुई विविध वाद्यों की गूंज उनके शून्य के लिए सेतु का काम करती है, ऐसा सेतु का जिसमें पीढ़ी का स्वत्व नहीं है।

दुष्यंत पुरुवंशी था, पुरु ने ययाति को अपना यौवन देकर राज्यसत्ता पाई थी, दुष्यंत में वही यौवन–विक्रयी संस्कार था, वह संभावना का तिरस्कार कर सकता था, क्योंकि वह मधुलोलुप था, उसे तुरंत और सामने मधु चाहिए, मधुगर्भा शकुंतला से उसका लगाव नहीं, मधुस्नाता शकुंतला से लगाव था। इसीलिए वह अपनी भूल की संभावना के हाथ से निकल

जाने के पछतावे की खीझ उतारता है बसंतोत्सव पर। भला बसंत ने क्या बिगाड़ा था, बसंत ने तो उसे तपोवन में मदनोत्सव दिया था। अंग्रेजी आईने की साया में पली बुजुर्ग और कर्तव्यपरायण राजशाही–परस्त पीढ़ी आज खीझ उतारती है स्वाधीनता पर। स्वाधीनता के लिए जो संघर्ष हुआ, वही सारे अनर्थों की जड़ है, अब इस स्वाधीनता पर पाबंदी लगनी चाहिए, कोई बात हुई कि फूहड़ गीत गाए जाएं, कीच–कांदों फेंके जाएं, बिना मतलब जुलूस निकाले जाएं। सबसे बड़ा मूल्य है शांति और व्यवस्था। सत्य, न्याय ये सब अस्थायी और सापेक्ष मूल्य हैं, शांति और व्यवस्था शाश्वत और निरपेक्ष मूल्य हैं। स्वाधीनता आ ही गई तो रहे, पर जरा सलीके से रहे, पर्दे में रहे, पालकी में चले, अभिसार करने जाए तो जाए, भालुओं से भरे अंधियारे विजन में या गोरी चांदनी से नहलाई रात में, पर सड़क पर चले तो जरा संभलकर, अपनी जबान न खोले, बस लौंडी के जरिए अपनी बात कहे, उसके पैरों की महावर–भर दिखे, शरीर गहनों से (उधार के हों या मुलम्मा हो इससे कोई मतलब नहीं) लदा रहे, शिष्टता का कीमखाबी ओहार पड़ा हो, उसके कहारों को देशी ताड़ी पीने की छूट है और ठर्रा किस्म का कहरवा गाने की छूट है या किसी पीपल की छाया में पालकी उतारकर खर्राटे भरने की छूट है पर स्वाधीनता की सामंती मर्यादाओं के भीतर ही रहना है। उसकी मंजिल हवेली है, जहां से चली वह मैका हवेली है।

फिर कैसा बसंत और बेचैनी? अब कोयल क्यों दिन–दुपहर अपना राग बिखेरे? सब सो जाएं, कोई सुननेवाला न हो तब अपनी पुकार शून्य के तट पर अंकित करा जाए, काफी है। शांतिभंग का अपराध न हो और अपनी बेचैनी भी द्वार पा सके, इसके लिए सिवाए इसके कि बसंत और वासंती आकुलता का स्मरण उसके प्रत्याख्यान के द्वारा किया जाए कोई चारा नहीं। स्वाधीनता का रागात्मक स्मरण उसके तामझाम को, उसकी दीख रही अटारीनुमा मंजिल को नकारकर ही संभव है। आज बसंत के प्रति तटस्थता ही बेचैनी की सही अभिव्यक्ति है और चूंकि मेरा चित्त अनाकुल और तटस्थ है, इसलिए बसंत जरूर कहीं चोरी छिपे आ गया है, लीजिए उसके लिए यह अपेक्षा की अंजलि समर्पित है। मेरे जीवन में उसका अस्तित्व प्रमाणित हो ले।

5.4.3 निबंध सार : बसंत आ गया पर कोई उत्कंठा नहीं

इस निबंध में लेखक ने नई पीढ़ी की निर्मम तटस्थता को विचार का विषय बनाया है। वास्तविक अर्थों में बसंत जीवन की पूर्णता का प्रतिमान है, किंतु युवा पीढ़ी इसे मानती ही नहीं। वह तथाकथित पूर्णता के अन्यान्य आयामों से चिपकी हुई है। इसलिए बसंत युवापीढ़ी को रीता लगता है।

ठीक इसी तरह की स्थिति जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी रही है। जिस भांति नई पीढ़ी को बसंत पर खीझ होती है, उसी प्रकार राजशाही परस्त पीढ़ी को स्वाधीनता पर खीझ होती है। वह मानती है कि स्वतंत्रता पर अंकुश लगाना चाहिए। 'निबंधकार' के शब्दों में उसका रवैया है कि, "सबसे बड़ा मूल्य है शांति और व्यवस्था। सत्य, न्याय में सब अस्थाई और सापेक्ष मूल्य हैं; शांति और व्यवस्था शासन के शाश्वत और निरपेक्ष मूल्य हैं।"

'बसंत आ गया पर कोई उत्कंठा नहीं' एक ललित निबंध है। ललित निबंध उस गद्यमयी सृजनात्मक रचना को कहते हैं जिसमें किसी विषयवस्तु के माध्यम से निबंधकार

का मन भाव तरंगों में लहराता है, निजी उमंगों में विस्तार करता है और निबंध के समाप्त होने के साथ तरंगों का ज्वार भी समाप्त हो जाता है। विद्यानिवास मिश्र अपने ललित निबंधों में अपने चिंतन को भारत, भारती और भारतीयता की स्वस्थ पहचान कराते हुए 'विश्व–कुटुंब' की दृष्टि से विश्व संस्कृति की पहचान तक ले गए हैं। उनके निबंधों में सर्वत्र भारतीय संस्कृति के विभिन्न पक्ष, पौराणिक संदर्भ, भोजपुरी लोक संस्कृति, प्रकृति, वैयक्तिकता की स्पष्ट छाप, प्राचीन ऐतिहासिक संदर्भ आदि बिखरे हुए हैं। बसंत आ गया.... में युवा पीढ़ी की सरोकार विहीनता, जीवंतता के अभाव आदि के प्रति लेखक की चिंता व्यक्त हुई है। निबंध के आरंभ में लेखक स्पष्ट करता है कि बसंत की अर्थवत्ता ऋतु विशेष या प्राकृतिक परिवेश में नीहित नहीं है। यह हमारे आंतरिक आह्लाद और सहज–शास्वत संतुष्टि का विषय है। वह कहता है–

"बसंत का प्रभाव बाहर ढूंढ़ने की जरूरत नहीं, रागाकुल चित्त ही बसंत का प्रतिष्ठान है, इसलिए कोयल बोले न बोले, भोर में अलसायी दखिनैया बहे न बहे, आम में बौर आए न आए, महुआ के कूचे द्रवें न द्रवें, कुछ अंतर नहीं पड़ता, चित्त अकुला पड़े बस उसी क्षण बसंत का आविर्भाव हो गया। सुंदर दृश्य, मधुर शब्द, स्निग्ध स्पर्श, मदिरगंध और दूधधोया चांदनी का जल अपने आप में व्यर्थ हैं, ये अर्थ देते हैं निश्चित और निरुद्विग्न चित्त को पर्युत्सुक बनाकर ही। यह पर्युत्सुकता 'अबोधपूर्व' का स्मरण है, अस्तित्व की निरंतरता का प्रतिबोधन है, 'मैं' की शृंखलाओं का संग्रंथन है, व्यष्टि और समष्टि चित्तों के मिलन की बेचैनी है। 'जननांतरसौह्रद' या जन्मांतर–रीति या पिछली पहचान का वास्तविक अभिप्राय यही है कि इस पिंड में रह–रहकर ब्रह्मांड गूंजता है, उस गूंज को सुनकर उसके पीछे दौड़ जाने की बेकली उठती है और तब पिंड ही ब्रह्मांड बन जाता है पिंड का नवरसन ही बसंत बन जाता है।"

वर्तमान युवा पीढ़ी इस यथार्थ से बहुत दूर है। बनावटीपन से भरी है, यांत्रिक है। आंतरिक आह्लाद की बात तो छोड़िये उसे प्राकृतिक परिवेश व ऋतुगत बदलाव जनित सुंदरता–सरसता भी प्रभावित नहीं करती। इस स्थिति पर व्यंग्य करते हुए डॉ. मिश्र कहते हैं– "नहीं, मैं बूढ़ा नहीं हुआ। बसंत ही बूढ़ा चला है। मैं आधुनिकता का प्रवाचक कभी बूढ़ा हो ही नहीं सकता, बसंत की प्रक्रिया में ही कोई व्यक्तिक्रम आ गया होगा, किसी दुष्यंत ने अपनी विस्मृति की खोझ में यह डौंड़ी पिटवा दी होगी कि इस वर्ष मदनोत्सव नहीं मनाया जाएगा।"

बाहरी और आंतरिक बसंत का उत्साह वृद्धों में नजर आता है, वह संस्कृतिपरक उत्सवों–उल्लासों में अपने को संलग्न पाता है लेकिन युवा वर्ग तटस्थ रहता है। वह स्वयं तक सिमटता जा रहा है और एकाकीपन में सुकून खोजता है। लेखक के शब्दों में– "लगता है कि कुछ छंद बिगड़ गया है। जो लय जहां होनी चाहिए, वहां नहीं है, जहां न होनी चाहिए, वहां है। यह कुबड़ा आम इस साल ऐसा बौराया है कि कुछ न पूछो, इसकी बाढ़ जाने कब से रुकी है, पर यह विश्वास की प्रक्रिया को खुली चुनौती दे रहा है। समस्त युग, लगता है, ययातियों से छा गया है। हर ठूंठ जवानी की शर्त पर ही अपना ठीका सौंपने को राजी है। इसीलिए ठूंठ जवान हैं और जवान ठूंठ।"

ऐसा क्यों है? कारण क्या है? युवापीढ़ी इस अवस्था में क्यों हैं? इसके लिए उसकी दिशाहीनता, स्वावलंबन रहितता, सत्ताशून्यता को भी उत्तरदायी मानता है लेखक। सत्तासीनों पर चोट करते हुए डॉ. मिश्र कहते हैं– "बसंत उसका है जिसके हाथ में सत्ता है, सत्ताहीन का कैसा बसंत? इसीलिए निर्मर्याद होने की, उच्छृंखल होने की छूट भी उसी को है, जिसके हाथ में बसंत है। वही नियामक और शासक की हैसियत से जितनी चाहे उतनी अनीति करे, शासक की हैसियत से चाहे दमन करे और स्रष्टा की हैसियत से जितना चाहे विध्वंस करे। उसे छूट है बचपन से खेले, तरुणाई से खेले।"

आवश्यकता चाहे आजादी की हो, चाहे राजनैतिक आजादी की हो या फिर चाहे मौलिक अधिकारों से संबंधित आजादी की ही, क्यों न हो : उसकी पूर्ति शासक–सामंती लोगों के ताम–झाम, भोगवृत्ति यानी उनकी प्रत्यक्ष होती 'अटारीनुमा मंज़िल' को नकारे बिना संभव नहीं। यही कारण है कि ऐसे लोग शांति भंग होने, अव्यवस्था फैलने की वजह बताकर स्वाधीनता देने के पक्ष में नहीं रहते। इस निबंध में इसी सत्य की अभिपुष्टि करते हुए डॉ. मिश्र कहते हैं– "अंग्रेजी आईने की साया में पली बुजुर्ग और कर्तव्यपरायण राजशाही–परस्त पीढ़ी आज खीझ उतारती है स्वाधीनता पर। स्वाधीनता के लिए जो संघर्ष हुआ, वही सारे अनर्थों की जड़ है, अब इस स्वाधीनता पर पाबंदी लगनी चाहिए, कोई बात हुई कि फूहड़ गीत गाए जाएं, कीच–कांदों फेंके जाएं, बिना मतलब जुलूस निकाले जाएं। सबसे बड़ा मूल्य है शांति और व्यवस्था। सत्य, न्याय ये सब अस्थायी और सापेक्ष मूल्य हैं, शांति और व्यवस्था शाश्वत और निरपेक्ष मूल्य हैं। स्वाधीनता आ ही गई तो रहे, पर जरा सलीके से रहे, पर्दे में रहे, पालकी में चले, अभिसार करने जाए तो जाए, भालुओं से भरे अंधियारे विजन में या गोरी चांदनी से नहलाई रात में, पर सड़क पर चले तो जरा संभलकर, अपनी जबान न खोले, बस लौंडी के जरिए अपनी बात कहे, उसके पैरों की महावर–भर दिखे, शरीर गहनों से (उधार के हों या मुलम्मा हो इससे कोई मतलब नहीं) लदा रहे, शिष्टता का कीमखाबी ओहार पड़ा हो, उसके कहारों को देशी ताड़ी पीने की छूट है और ठर्रा किस्म का कहरवा गाने की छूट है या किसी पीपल की छाया में पालकी उतारकर खर्राटे भरने की छूट है पर उसे स्वाधीनता की सामंती मर्यादाओं के भीतर ही रहना है।"

5.4.4 'बसंत आ गया पर कोई उत्कंठा नहीं' का समीक्षात्मक अवलोकन

स्वातंत्र्योत्तर काल में ललित विधा को समुन्नत करने वाले मनीषियों में डॉ. विद्यानिवास मिश्र अग्रणी हस्ताक्षर हैं। आप आधुनिक युग के श्रेष्ठ हिन्दी निबंधकार होने के बावजूद संस्कृत, पालि, प्राकृत, अंग्रेजी, फ्रेंच एवं फारसी भाषाओं पर असाधारण अधिकार रखते हैं। विविध भाषाओं के साहित्य–अध्येयता रहने के कारण आपके सृजन में विदेशी विचार–साहित्य–संस्कृत आदि की तुलनात्मक चर्चा हुई है। भाषा–प्रभु डॉ. मिश्र के ललित निबंध हिन्दी साहित्य की अमूल्य धरोहर हैं।

'बसंत आ गया पर कोई उत्कंठा नहीं' के मद्देनजर डॉ. मिश्र के निबंध–सृजन का समीक्षात्मक अवलोकन निम्नांकित बिंदुओं के तहत किया जा सकता है–

- **तात्विक विश्लेषण**

निबंध तत्वों के संदर्भ में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना बुद्धि, अनुभूति, कल्पना, अहं एवं शैली को निबंध के तत्व मानते हैं। डॉ. मुरलीधर बंशीलाल शहा ने निबंध

के चार तत्व स्वीकार किया है– व्यक्ति सापेक्षता, स्वच्छन्दता, वैचारिकता एवं संक्षिप्तता। डॉ. हर्षनारायण 'नीरव' परिवेश, अनुभूति व समझ की एकान्विति, अनुभव, आत्मपरकता एवं आत्माभिव्यंजन को निबंध का तत्व स्वीकारते हैं। यहां हम अहं तत्व, वैचारिकता, अनुभूति एवं स्वच्छंदता के आलोक में डॉ. मिश्र के निबंधों का अवलोकन कर रहे हैं।

(क) अहं तत्व

अहं निबंधकार का व्यक्तित्व है और निबंध की प्रेरणा। अपने को अभिव्यक्त करने की बेचैनी व्यक्तित्व को आकार देती है। निबंध के जनक मान्टेन के शब्दों में कहें तो– "मैं ही अपने निबंधों का विषय हूं क्योंकि मुझे अत्यंत जानने वाला व्यक्ति मैं ही हूं।" डॉ. विद्यानिवास मिश्र के निबंधों में उनका अहं तत्व बहुतायत में अभिव्यक्त हुआ है। उनके व्यक्तित्व की गहरी छाप उनके हर निबंध में प्रत्यक्ष है। उनका व्यक्तित्व पाठकों को आत्मीयता से संबोधित करने में, सबल कथन में, कभी गहन चिंतन तो कभी व्यंग्य में आकार पाता है। 'बसंत आ गया पर कोई उत्कंठा नहीं' में एक जगह वे कहते हैं– "नहीं, मैं बूढ़ा नहीं हुआ। बसंत ही बूढ़ा चला है। मैं आधुनिकता का प्रवाचक कभी बूढ़ा हो ही नहीं सकता...।"

'छितवन की छांह' से लेकर 'भारतीयता की पहचान' तक उनके सभी तरह के निबंधों में चंदन की तरह उनका व्यक्तित्व फैला हुआ है।

अपनी वैयक्तिकता के संदर्भ में आत्मीयता व मनोविनोद पूर्ण तरीके से पाठकों से मुखातिब होने के दौरान वे अपने आलोचकों को भी जवाब देने में माहिर हैं। 'कहो कैसा रंग है' में तद्विषयक उनके 'अहं तत्व' की एक बानगी देखिए–"लोग कहते हैं कि तुम परंपरावादी और आधुनिक दोनों बनने की कोशिश करते हो, पर तुम पलायनवादी हो, न परंपरा के हो न आधुनिकता के। तुम्हारी आधुनिकता कितनी है और तुम्हारी परंपरा अगर है, तो दूसरों को क्यों नहीं दिखती? मैं कैसे कहूं कि जड़ें न दिखें, तभी पेड़ की जिंदगी है। जड़ें उधर जायें तो पेड़ मर जाए। मैं कैसे कहूं कि किताबें जड़ नहीं होती वे गूंगी होती है, उन गूंगों में आदमी अपना खोया स्वर वापस पा जाता है। मैं कैसे कहूं कि कितना बेहाल हूं, जिन्दगी के लगाव के प्रति। जिन्दगी यह जानती है, इसलिए उलझने देती है– तुम उलझे रहो। मेरे दुश्मन मुझे विवश किए रहते हैं कि तुम मैदान न छोड़ो– जबकि मुझे लड़ाई अर्थहीन लगती है, दुश्मनी बेईमानी लगती है।

मैं दूसरों की बात नहीं जानता पर अपनी बात कहता हूं, मेरा परिवेश मैं स्वयं हूं, क्योंकि मैंने जिस जगह को, जिस आदमी को, जिस संस्कृति को जितना जिस रूप में पाया है, उतना ही तो मेरे लिखने में आया है।"

(ख) वैचारिकता

निबंधकार जीवन–जगत के मद्देनजर चिंतन व प्रतिक्रिया स्वरूप अपने विचारों को अभिव्यक्त करता है। इसलिए वैचारिकता को निबंध का प्राणतत्व कहा जा सकता है। 'हिन्दी निबंध का शैलीगत अध्ययन' में डॉ. मुरलीधर बंशीलाल शहा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के मत का हवाला देते हुए लिखते हैं कि "आचार्य शुक्ल जब निबंध को गद्य की कसौटी कहते हैं तो उनका अभिप्राय निबंध की कसौटी केवल भाषा या उसकी सरसता पर न होकर, उसकी वैचारिक गहराई पर ही अधिक होती है।... वैचारिकता निबंध में इसलिए आवश्यक है कि

वह पाठक की केवल ज्ञान पीपासा ही जाग्रत नहीं करती, उसे अधिक परिष्कृत, सरस, तीव्र और सहज बनाती है।"

डॉ. मिश्र के बहुश्रुत तथा बहुपठित व्यक्तित्व का दर्शन हमें उनके वैचारिक निबंधों में मिलता है। उनके वैचारिक निबंधों का एक पृथक संग्रह भी है– 'संचारिणी'। 'नैरन्तर्य और चुनौती' निबंध संग्रह भी चिंतनपरक– समीक्षात्मक विचारों का संग्रह है।

तटस्थता एक सद्‌गुण है। अध्यात्म में साक्षीत्व को बड़ा महत्व दिया गया है। लोक जीवन, उसकी सरसता, उसके उत्सव के संदर्भ में यह लेखक को ग्राह्य नहीं है। 'बसंत आ गया पर कोई उत्कंठा नहीं' में डॉ. मिश्र लिखते हैं– "बसंत का उत्साह जितना बूढ़ों में है, उतना तरुणों में नहीं। जितनी निर्मम तटस्थता तरुणों में है, उतनी बूढ़ों में नहीं। बूढ़े गले में ढोल बांधे चिल्लाते हैं– 'शिवशंकर खेलें फाग संग लिए' और जवान खिड़कियों–दरवाजों को बंद कर घर में पड़े रहते हैं– मुझे चैन से रहने दो।"

साहित्य, कला, भारतीयता, लोक संस्कृति, प्रकृति किसी भी विषय को डॉ. मिश्र लें; उनके विचार निबंध के अनुसार गहन–चिंतनपरक–सरल एवं निश्छल रूप में आकार पाते हैं। चीन और भारत की मान्यताओं का विश्लेषण करते हुए वे 'आदर्शों के व्यंग्य' नामक निबंध में कहते हैं– "चीनी विश्वास तो करता है मानववाद में पर उससे प्रेम नहीं; और प्रेम करता है वह विस्तारवाद से पर इसमें उसे विश्वास नहीं। भारत वर्तमान समय में चीन की तरह है। वह प्रेम करता है, समझौता से, विश्वास करता है युद्ध में। पर एक अंतर है, कि चीन झूठे आदर्शों को सच्चाई से जी रहा है और भारत सच्चे आदर्शों को झुठला रहा है। चीन में इसीलिए गलत नेतृत्व भी शक्तिशाली है। और भारत में सही, नेतृत्व शिथिल। संघर्ष विचारधारा का ही नहीं; विचारधाराओं के साथ तादात्म्य की मात्रा में भी है।"

(ग) अनुभूति एवं स्वच्छंदता

लेखक की कृति की उतकृष्टता उसकी अनुभूति की गहनता पर निर्भर करती है। अनुभूति का तादात्म्य हृदय और चक्षु से होता है। आंखों से देखे और हृदय से अनुभव किए गए विषय को जब निबंधकार विचार व कल्पना के सहयोग से रचनात्मक रूप देता है तब वह व्यापक होकर अनुभूति बन जाता है।

डॉ. मिश्र के निबंधों में उनकी संवेदनशीलता व रागात्मिकता के कारण अनुभूति तत्व अधिक तीव्रता एवं प्रखरता से व्यक्त हुआ है। ललित निबंधकार जीवन में प्रकृति, स्थान, मानव, परिवेश आदि का अवलोकन करता है और उनसे प्रभावित होकर सृजन करता है। मिश्र जी के निबंधों में वर्णित ऐसे प्राकृतिक, ऐतिहासित, सांस्कृतिक, शैक्षणिक आदि अनेक स्थल हैं जिनमें निबंध का अनुभूति तत्व आकार पाता है। 'बसंत आ गया पर कोई उत्कंठा नहीं' में आपके शब्द हैं– "प्राकृत गाथाओं का भोला हिरण जंगल में आग लग जाने पर भी टेसू की सुधि में खोया रहता है और आज के कवि का विदग्ध चित्त टेसू के दहकने को कोई घटना ही नहीं मानता। जहां इतनी आग धधक रही हो, वहां एक फूल की ठंड शोखी की विसात ही क्या? उससे क्या बनता–बिगड़ता है?"

'तमाल के झरोखे' नामक बहुचर्चित निबंध में लेखक की सहृदयता, संवेदनशीलता जनित अनुभूति पाठ को प्रभावित करती है। वृक्ष की शाखाएं काटे जाने पर उनके हृदय की

अनुभूत वेदना अनूठी है। इसी प्रकार 'रूपहला धुआं' नामक निबंध में जल–प्रपात के आस–पास की प्रकृति–सुषमा के वर्णन में वे अपनी अनुभूति को प्रत्यक्ष करते हैं। वे लिखते हैं– "एक बार और नजदीक जाकर मैंने इस धुयें को निरखा तो मुझे लगा कि पृथ्वी का रूप और पृथ्वी का स्पर्श और पृथ्वी का आर्तनाद और पृथ्वी की गंध एक साथ मिल कर एक वाष्प यंत्र में परिणत हो गया है, जिसमें रूप चमक आया हो, रस उमड़ आया हो, स्पर्श लहक आया हो, नाद थहर आया हो, और गंध बिथुर आयी हो।"

स्वच्छंदता अथवा स्वतंत्रता भी निबंध का आधारभूत तत्व है। जितनी स्वतंत्रता साहित्य सर्जक को इस विधा में होती है उतनी अन्य विधाओं में नहीं होती। स्वच्छंदता का अर्थ रूढ़ियों से पृथक, सर्वथा मौलिक होना है, सीमाहीन या उच्छृंखल होना कदापि नहीं। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में– "निबंध के व्यक्तिगत होने का अर्थ यह नहीं कि उसमें विचार शृंखला न हो। ऐसा होने से वे प्रलाप कहे जाएंगे। संसार में हम जो कुछ देखते हैं वह दृश्य भी, विभिन्नता के कारण नानाभाव से पैदा होता है।"

डॉ. मिश्र प्रारंभ में डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी से प्रभावित प्रतीत होते हैं परंतु बाद में उनकी प्रतिभा की धारा निरंतर स्वच्छंदता के साथ बहती है। आपके चिंतनों में स्वतंत्र नीति, विचारधाराएं, तर्क–वितर्क, जीवन–दृष्टिकोण, परीक्षण, निष्कर्ष आदि सर्वथा ही स्वचेतना से अभिव्यक्त हैं। 'बसंत आ गया पर कोई उत्कंठा नहीं' में वे लिखते हैं– "मेरा कवि–मानस अनादिम है, पुरायठ है, जाने कितना तेल वह सोख चुका है और उस तेल के कारण कितनी धूल समेट चुका है। वह अब घरैतिन महिला का हृदय है जो प्राकृत गाथाकार के शब्दों में 'विश्रब्धहसित परिक्रमों' को, उच्छल हंसी, बांकी चितवन और ललित त्रिभंगी विलासों को एक साथ तिलांजलि दे चुका है और अपने को डुबा चुका है घर के कामकाज में, सांझ की सिरवाई से अब राहत की सांस नहीं मिलती, नदी की हिलोर से पुलक नहीं होती, चैत की चांदनी में चुरने के लिए मन उन्मन नहीं होता, बस घर–बार है और मैं हूं, बसंत की बेचैनी बड़ी बचकानी लगती है।"

• संस्कृति दर्शन

डॉ. विद्यानिवास मिश्र भारतीय संस्कृति के महान व्याख्याता और संवर्धक के रूप में जाने जाते हैं। इनका जीवन आरंभ से ही संस्कृत साहित्य के अध्ययन एवं साहित्य के उद्भट विद्वानों की संगति में बीता। इसलिए इनके मन–मस्तिष्क पर संस्कृत वाङ्मय, भारतीय संस्कृति, लोकसाहित्य की अमिट छाप पड़ना स्वाभाविक था। विदेश–प्रवास एवं विविध विदेशी भाषाओं के अध्ययन के कारण आप पाश्चात्य संस्कृति को भी बखूबी समझ पाए।

डॉ. मिश्र ने भारतीय संस्कृति को लेकर अनेक निबंध लिखे हैं। कुछ महत्वपूर्ण निबंध हैं– 'संस्कृत की पाषाणी', (आंगन का पंछी और बनजारा मन) 'संस्कृति और समन्वय', 'वैज्ञानिक मनोभाव और मानव संस्कृति', 'अहमनृतात्सत्यमुपैति : सत्यधर्म दाम्यत दत्त दयध्वम् : दानधर्म, मा पुरो जरसो मृथा : जीवन धर्म, विनयी विन्ध्याचल', 'नगाधिराज हिमालय', 'शिव की बारात', 'बोद्धावतारे', 'पुर्णमदः पूर्णमिदम्', 'हल्दी : दूध और दधि–अच्छत', 'तुम चन्दन हम पानी', 'मां और धरती', 'आलोकपर्व तिमिरपर्व', 'नारियल', 'बढ़ती समृद्धि और बिखरती संस्कृति', 'भारति जय–विजय करे', 'कुम्भ : जन, जल और आस्था', 'राम

कथा : मेरे लिए', 'जननी जन्म भूमिश्च', 'कांहे बिन सून अंगनवा', 'सर्जन के देवता' (तमाल के झरोखे से), 'भारत में मनुष्य और उनका परिवेश', 'भारतीय संस्कृति की प्रासंगिकता', 'भारतीय सनातन मूल्य – वसुधैव कुटुम्बकम् भारतीय आराध्य शिव का स्वरूप', 'भारत में मातृदेवी की प्रतिष्ठा', 'भारतीय पर्व– रामनवमी, श्रीकृष्ण जन्म', होली, बासन्ती, नवरात्र' आदि।

डॉ. मिश्र के निबंधों में भारतीय संस्कृति सर्वत्र बोलती है। उनकी रचनाओं में– मूल मान्यताएं, आराध्य, मांगलिक प्रतीक– तीनों रूपों में भारतीय संस्कृति का चित्रण हुआ है। उनका यह भी प्रयत्न रहा है कि लोक जीवन में इनकी तलाश की जाए। उनके निबंधों को दृष्टिगत रखते हुए डॉ. जयनाथ 'नलिन' ने 'हिन्दी निबंध के आलोक शिखर' में लिखा है– "सत्य का अनुसंधान हमारी संस्कृति का आधार है। इसमें शोधात्मक आस्था, उपलब्धि, अनुसंधान की निरंतरता, उसकी प्रतिष्ठा आदि की परिधि जीवन–जगत, आत्मा–परमात्मा, धर्म साधना, अनुष्ठान, कला–संस्कृति, साहित्य, राजनीति, नैतिककता और इन सबका युगीन परिवेश और मांग के अनुरूप या मार्गदर्शक व्याख्या–सभी कुछ आ जाता है।"

पं. मिश्र के सांस्कृतिक निबंध में चर्चित आराध्य हैं– राम, कृष्ण, आदि शक्ति, बुद्ध, ब्रह्मा–विष्णु–महेश, हिमालय, भारत, भागीरथी, राधा, सीता आदि। अग्र मानव श्रीकृष्ण की महिमा का चित्रण करते हुए अपने निबंध 'आंगन का पंछी और बनजारा मन' में वे लिखते हैं– "क्योंकि श्रीकृष्ण लोक पुरुष हैं और पूर्णतया लोकपुरुष।... पुरुषों में अग्र वही होता है जो सब पुरुषों के हृदय के साथ एकांत होता है। निषेध, वर्जन, उपेक्षा, अभिमान, दर्प, राज मद, ज्ञान का अहंकार, लोकहित को भार मानने की चिंतनशीलता– ये ही बातें अग्र पुरुष बनने में बाधक हैं। भगवान श्रीकृष्ण इन सबके ऊपर उठे हुए थे और इसीलिए वे न केवल अपने युग के बल्कि भारत के समग्र इतिहास में सबसे बड़े अग्रपुरुष के रूप में जनता और साहित्य, दर्शन और साहित्य द्वारा प्रतिष्ठित हैं।"

मांगलिक प्रतीकों पर डॉ. मिश्र ने अपने कुछ निबंधों में स्वतंत्र चिंतन किया है। डॉ. जयनाथ 'नलिन' ने उनके निबंध के प्रतीकों पर प्रकाश डालते हुए 'हिन्दी निबंध : आलोक शिखर' की पृष्ठ संख्या 281 पर लिखा है– "तिलक, सिन्दूर, सूत्र–बंधन, आरती, स्वस्तिक, दीपक रोली, हल्दी, दूर्वादल, दही, अक्षत, भरा कलश आदि हमारी संस्कृति के मांगलिक या शिव की उपलब्धि और आकांक्षा के प्रतीक हैं। उन्हें यों ही प्रतीक नहीं मान लिया गया है। वे सभी हमारे राष्ट्र, हमारी धरती माता की समृद्धि, उपज, पोषण, सामर्थ्य, अनुदान की उदारता, उल्लास, प्रवृत्ति, भूगोल–इतिहास की अभिव्यक्ति करते हैं।"

मिश्र जी ने अपने सांस्कृतिक निबंधों में भारतीय तथा पाश्चात्य सांस्कृतिक धरोहरों की जानकारी पाठकों को दी है; पश्चिम से अपनी संस्कृति–रक्षा का प्रश्न उठाया है और स्व–संस्कृति को नवजीवन देने की चेतना जाग्रत करने का यत्न किया है। प्रसिद्ध आलोचक डॉ. विजयेन्द्र स्नातक ने 'विजयवाद–कौन बुलाया बीन बिहारी की समीक्षा' (समीक्षा अंक 84, अप्रैल 1982, पृ. 38) में लिखा है– "भारतीय संस्कृति की जैसी मजबूत पकड़ और सही समझ लेखक में है वह आज हमारे समूचे लेखन में से ढीला होकर लुप्त होती जा रही है। इसलिए मैं संस्कृति का कायल हूं। पंडित विद्यानिवास मिश्र के निबंधों को पढ़कर, इनसे

जुड़कर क्यों न हम अपनी अस्मिता पर एक बार फिर गर्व से ऊंचा मस्तिष्क करें और भड़कीली भद्दी नकल से बचकर, राष्ट्रीय गौरव का स्वाभिमान संचित कर, सीना तानकर खड़े होने का साहस दिखायें।"

• कथ्य–विचार एवं शिल्प

विचारों–भावों की अभिव्यक्ति सर्जक की अंतरंग उर्मि होती है। भाषा ही इस अभिव्यक्ति का साधन है। शैली भाषा का अंतर्वाक्यीय वैशिष्ट्य है। हर व्यक्ति की अपनी शैली होती है।

शैली रचना का वह उच्च और सक्रिय सिद्धांत है जिसके जरिए सर्जक अपने विषय की गहराई में उतरकर उसके अंतस को उद्घाटित करता है। डॉ. नागराज उपाध्याय ने अपने 'निबंधायन' नामक संकलन में भाषा–शैली को निबंध–तत्वों में स्थान दिया है। निबंध में विचारों का अहम स्थान होता है, इसलिए भारतीय तथा पाश्चात्य विचारकों ने भाषा एवं शैली को विचारों की अभिव्यक्ति व संप्रेषण का माध्यम माना है। 'हिन्दी के प्रतिनिधि निबंधकार' नामक पुस्तक में डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना ने डॉ. मिश्र की भाषा के संदर्भ में लिखा है– "मिश्र जी ने भाषा को विविध रंगों से सजाया, विविध अर्थच्छवियों से अलंकृत किया है। विविध उक्ति–चमत्कारों से सुसज्जित किया है। इसी कारण आपकी भाषा में विविधता, विलक्षणता है; चमत्कारिकता है और कवित्वमयी सरसता है।"

मिश्र जी की भाषागत अनेक विशिष्टताएं जो 'छितवन की छांह' से लेकर 'भारतीयता की पहचान' तक द्रष्टव्य है। सृजन में आवश्यकतानुसार स्थान–स्थान पर संस्कृतनिष्ठ तत्सम शब्द, लोक प्रचलित अंग्रेजी, उर्दू, फारसी, प्राकृत, अपभ्रंश, भोजपुरी एवं लोकभाषा के शब्दों का प्रयोग होने से भाषा में चमत्कार, चुलबुलापन तथा अभिनव आवेश दिखाई देता है।

शैली की बात करें तो आपने अपने विविध निबंधों में विविध प्रकार की शैलियों का प्रयोग किया है। ललित निबंधों में प्रसाद, तरंग, विक्षेप, अलंकारिक, वर्णनात्मक एवं लाक्षणिक शैलियों को देखा जा सकता है। वैचारिक, चिंतन प्रधान, समीक्षात्मक निबंधों में व्याख्यात्मक, आलोचनात्मक, गुट–गुम्फित तथा विवेचनात्मक शैलियां साकार हुई हैं। 'हिन्दी शब्द सम्पदा' नामक संग्रह भले ही समीक्षात्मक अथवा गवेषणात्मक हो परंतु उसमें प्रसाद तथा तरंग शैली का पर्याप्त प्रयोग हुआ है।

मिश्र जी के निबंध संस्मरण, चिंतन प्रवणता आदि का भी स्पर्श करते हैं लेकिन इन्होंने मुख्यतया ललित निबंध ही लिखे हैं। पं. श्री नारायण चतुर्वेदी 'तुम चंदन हम पानी' की भूमिका में एक निबंधकार के रूप में डॉ. विद्यानिवास मिश्र का वैशिष्ट्य स्पष्ट करते हुए लिखते हैं– "संस्कृत साहित्य का प्राचीन और अर्वाचीन ढंग से अध्ययन करने के कारण उनकी साहित्यिक जड़ें इस धरती में गहरी चली गयी हैं और वे इसी देश की जलवायु उसके सूर्यास्त और सूर्योदय, उठती हुई घटाओं और घटते बढ़ते ताप कणों के प्रति संचेत्य है.... हरसिंगार, जूही, मालती, बेला, कर्णिकार, मंदार और कमल उनके हृदय को प्रफुल्लित करते हैं।.... कभी–कभी मैं सोचता हूं कि उन्हें कवि होना चाहिए था। ये निबंध कहीं–कहीं वास्तव में काव्य हो गये हैं। यदि रस का परिपाक काव्य का मुख्य लक्षण है तो मुझे यह कहने में संकोच नहीं है कि ये निबंध गद्य–काव्य हैं। हिन्दी में मैंने ऐसे निबंध नहीं देखे, जो गंभीर होते हुए भी कविता से इतने सराबोर हों।"

वे आगे लिखते हैं– "ताजगी उनका एक अन्य विशेष गुण है। कोई भी निबंध घिसे–पिटे विषय पर नहीं है। केवल विषय ही मौलिक नहीं है, प्रत्युत दृष्टिकोण भी मौलिक है। इन निबंधों में शायद ही कोई ऐसा निबंध हो, जिसमें कही गयी बात या जिसमें प्रतिपादित दृष्टिकोण, अन्य लेखकों का अनुसरण हो।"

समग्रतः डॉ. विद्यानिवास मिश्र के कथ्य–विचार एवं शिल्प का अवलोकन करने से यह स्पष्ट होता है कि वे एक भाषा–प्रभु हैं। हिन्दी के साथ ही संस्कृत भाषा पर भी उनका अधिकार है। वे संस्कृत साहित्य के पंडित हैं इसलिए उनके भाषा–प्रयोग में एक सफाई है, प्रौढ़ता है और प्रगल्भता भी। प्राकृत भाषा के अधिकारी होने के कारण वे लोकभाषा और लोक संस्कृति से अपनी निकटता का परिचय देते हैं। शहर पहुंचने पर भी शहरी नहीं बन पाते। उनका अंतर्मन आंचलिक लोक जीवन, ग्रामांचल एवं घर–आंगन की ओर उसी प्रकार उन्मुख रहता है जिस प्रकार संध्याकाल में गाय का मन अपने बछड़े की ओर।

डॉ. मिश्र के साहित्य में लोक भाषा संस्कृति, मृदुलता, सहजता व रसता सर्वत्र विद्यमान है। पश्चिमी भाषा–संस्कृति से अछूते नहीं होने के कारण वे यथा आवश्यकता अंग्रेजी आदि भाषा के शब्दों का प्रयोग भी करते हैं। प्राकृत और उर्दू के प्रयोग भी वे सहजतः करते हैं। 'विद्या' के 'निवास' एवं 'मिश्र' यानी मिठास से युक्त विद्यानिवास मिश्र की शैली काव्यमयता से समृद्ध है, उसमें लालित्य है और कहीं–कहीं अनुप्रास युक्त लय तथा नर्तन भी। वैयक्तिक वार्तालाप शैली के कारण अंतरंग रूप में वे पाठकों से मुखातिब होते हैं। सहज आत्मीयता आकार लेती है क्योंकि वे पाठकों के सामने पूरी तरह खुल जाते हैं।

कमियां हर किसी में होती है। कुछ विचारकों के अनुसार डॉ. मिश्र के निबंध संस्कृत प्रचुर भाषा–शैली के कारण सामान्य बुद्धि के पाठकों की चीज नहीं हैं। 'हिन्दी निबंध के आलोक शिखर' पुस्तक में डॉ. जयनाथ 'नलिन' लिखते हैं– "शैली और व्यक्तित्व निबंध के अनिवार्य तत्व माने जाते हैं। मिश्र जी संस्कृत के अध्येता और शिक्षक रहे हुए हैं। तब संस्कृत का प्रभाव होना स्वाभाविक है। इनके अनेक निबंधों के शीर्षक भी संस्कृत में हैं। इनकी शैली का सर्वाधिक उभरा हुआ तत्व है संस्कृत के उद्धरणों का प्रयोग। 'जयति जगनिवासो देवकी जन्मवाद' : साढ़े आठ पृष्ठों का निबंध है, इसमें संस्कृत श्लोकों की 44 पंक्तियां हैं।" आगे वे लिखते हैं– "संस्कृत श्लोकों का बाहुल्य शैली का दोष बन गया है। जो लेखक उद्धरणों आदि वाक्यों के सहारे रचना करता है, उसमें मौलिकता स्वाधीन चिंतन और निजी अनुभूति का अभाव मानना चाहिए।"

डॉ. मिश्र के निबंध साहित्य को अवसरानुकूल व मधुर भाषा शैली ने सरस तो बनाया ही है, साथ ही वे इस तरह रसपूर्ण बने हैं कि पाठकों के लिए सहज आस्वाद बन जाते हैं। विचार प्रधान निबंध लेखन की स्थिति में उनके भावों की कोमलता कम हो जाती है लेकिन सहजता उनकी शैली में बनी रहती है। सहजता के साथ स्पष्टवादिता, व्यंग्य, जोश, गति की तीव्रता, प्रतिपादन सम्मत आग्रह आदि के कारण उनके वैचारिक व ललित निबंध अपने उद्देश्य में सफल रहते हैं।

5.5 नए मेहमान (एकांकी) : उदयशंकर भट्ट

अंग्रेजी विद्वान डॉ. किथ ने एक अंक में समाप्त होने वाले नाटकों को 'One Act Play' संज्ञा दी है, जिसका अर्थ है एक अंक वाला नाटक। अंग्रेजी संज्ञा का हिन्दी रूपांतरण ही एकांकी है। उदयशंकर भट्ट जी ने एकांकी को स्वयंपूर्ण नाटक रचना कहा है। उनकी मान्यता है– "एकांकी नाटक अपने में पूर्ण होता है। वह अपने से बाहर किसी की अपेक्षा नहीं रखता। उसमें जीवन की एक छोटी–सी घटना का रूप–दर्शन होता है जो पात्र या पात्रों द्वारा अभिव्यक्त होता हुआ पराकाष्ठा पर पहुंचता है।"

उदयशंकर भट्ट ने हिन्दी साहित्य की विभिन्न विधाओं में काम किया है। आपके छह उपन्यास, बारह काव्य संग्रह, कई एकांकी, चौदह नाटक तथा साहित्य के स्वर निबंध प्रकाशित हुए हैं। इतना ही नहीं आपने रेडियो नाटक भी लिखे हैं। अतः कहा जा सकता है कि भट्ट जी आधुनिक हिन्दी एकांकी के कथ्य और शिल्प दोनों दृष्टि से सच्चे उन्नायक हैं। भट्ट जी ने कई एकांकी नाटक लिखे जिनमें से 'नये मेहमान' एकांकी उनका प्रसिद्ध एकांकी माना जाता है। 'नए मेहमान' भट्ट जी का एक समस्या प्रधान एकांकी है जिसमें महानगरों की आवास समस्या को सांकेतिक रूप में प्रस्तुत किया गया है। मेहमानों के आ जाने से महानगरों में छोटे घरों में रहने वाले लोगों को कितनी असुविधा हो जाती है इसका रोचक व विनोदपूर्ण वर्णन 'नए मेहमान' एकांकी में किया गया है।

5.5.1 उदयशंकर भट्ट : एक परिचय

उदयशंकर भट्ट का जन्म 4 अगस्त, 1898 ई. को इटावा नगर (उ.प्र.) में स्थित उनके ननिहाल में हुआ था। उनके पूर्वज गुजरात से आकर उत्तर प्रदेश में रहने लगे थे। भट्ट जी के नाना का परिवार शिक्षा, भाषा एवं साहित्य के क्षेत्र में विशेष रुचि रखता था। नाना के घर पर बचपन में ही भट्ट जी को संस्कृत भाषा का ज्ञान करा दिया गया था तथा बाद में संस्कृत, हिन्दी और अंग्रेजी की शिक्षा आपने औपचारिक रूप से अर्जित की। चौदह वर्ष की अवस्था में ही माता–पिता का साया भट्ट जी के सिर से उठ गया। काशी हिंदू विश्वविद्यालय से स्नातक की उपाधि प्राप्त करने के बाद भट्ट जी ने पंजाब से 'शास्त्री' और कलकत्ता (कोलकाता) से 'काव्यतीर्थ' की उपाधि भी प्राप्त की। सन् 1923 ई. में जीविका की खोज में भट्ट जी लाहौर चले गए और वहां एक विद्यालय में हिन्दी और संस्कृत का अध्यापन कार्य करते रहे।

उदयशंकर भट्ट ने भारतीय स्वाधीनता आंदोलन में सक्रिय रूप से भाग लिया और सन् 1947 ई. में देश विभाजन के उपरांत लाहौर से दिल्ली चले आये। यहां उन्होंने आकाशवाणी में परामर्शदाता एवं निदेशक के रूप में दीर्घकाल तक अपनी सेवाएं अर्पित कीं। नागपुर और जयपुर आकाशवाणी में प्रोड्यूसर के पद पर भी कार्य किया। सेवा–निवृत्त होने के बाद भट्ट जी स्वतंत्र रूप से कहानी, उपन्यास, आलोचना और नाटक आदि विधाओं पर लेखनी चलाते रहे। 22 फरवरी, 1966 ई. को इस महान साहित्यकार का स्वर्गवास हो गया।

भट्ट जी के प्रमुख एकांकी संग्रह हैं– 1. अन्त्योदय, 2. समस्या का अंत, 3. परदे के पीछे, 4. अभिनव एकांकी, 5. आज का आदमी, 6. स्त्री का हृदय, 7. आदि युग।

भट्ट जी ने कविता, उपन्यास और नाटक भी लिखे हैं। भट्ट जी की एकांकी कला का प्रौढ़तम रूप 'बाबूजी', 'यह स्वतंत्रता का युग', 'मायोपिया', 'अपनी–अपनी खाट पर', 'बार्गेन', 'ग्रहदशा', 'पर्दे के पीछे' आदि एकांकियों में मिलता है।

भट्ट जी को रंगमंच एवं रेडियो दोनों की शिल्प–विधि का संपूर्ण ज्ञान था। अंतः उन्होंने अपने नाट्य–सृष्टि में अनेक प्रकार के प्रयोग किये। उन्होंने ऐतिहासिक, पौराणिक और सामाजिक सभी प्रकार के नाटकों की रचना की।

भट्ट जी के प्रथम ऐतिहासिक नाटक 'विक्रमादित्य' में पश्चिमी शैली का प्रभाव दिखाई देता है। दूसरी रचना 'दाहर' अथवा 'सिंघ पल' में दुःखांत पद्धति है। इसके बाद इन्होंने कई ऐतिहासिक और पौराणिक नाटक लिखे। 'मुक्तिपथ' और 'शकविजय' ऐतिहासिक नाटक हैं। 'अम्बा' तथा 'सगरविजय' पौराणिक नाटक हैं। 'कमला' और 'अन्तहीन अन्त' सामाजिक नाटक हैं। 'नया समाज' भी आधुनिक शहरी वर्ग का चित्र प्रस्तुत करने वाला सुंदर नाटक है। आपकी एकांकियों की मुख्य शक्ति पात्रों का अंतर्द्वंद्व है। विशेष परिस्थितियों में पड़े हुए पात्रों के मनोद्वन्द्वों को भट्ट जी ने सफलतापूर्वक पकड़ा है और सशक्त ढंग से अभिव्यक्त किया है।

भट्ट जी की एकांकियों में पात्रों के अंतर्द्वंद्व को उभारने का सफल प्रयास हुआ है। इस कारण भट्ट जी द्वारा लिखित एकांकी जनमानस में विशेष लोकप्रिय हुए हैं। विषय की दृष्टि से भट्ट जी के एकांकी नाटक समस्या प्रधानता लिये हुए हैं जो हास्य एवं व्यंग्य के माध्यम से समस्या निवारण का संदेश देते हैं। आपकी नाट्य शैली युगानुरूप नवीनता धारण किए हुए है, जो कि रंगमंच एवं रेडियो प्रसारण दोनों दृष्टियों में सफल है।

इनकी रचनाधर्मिता से प्रमाणित होता है कि ये बहुमुखी प्रतिभा के समर्थ साहित्यकार और युग की नवीन साहित्यिक गतिविधियों से परिचित थे। फलतः इनकी नाट्य कला देश की साहित्यिक प्रगति के साथ–साथ नया मोड़ लेती गयी। इन्होंने पौराणिक कथाओं के आधार पर नाट्य–रचना प्रारंभ की और युग के अनुरूप नयी मान्यता और नाट्य–शैलियों को अपनी कला में सम्मिलित किया। भट्ट जी ने गीतनाट्यों का एक नया प्रयोग रेडियो–रूपकों को दृष्टि में रखकर किया, जो कि अत्यधिक सफल सिद्ध हुआ।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि भट्ट जी की एकांकियों का क्षेत्र व्यापक है, जिनमें जीवन के विभिन्न पहलुओं का चित्रण मार्मिक रूप से हुआ है। भट्ट जी ने अपनी लेखनी से हिन्दी साहित्य की जो सेवा की वह चिरस्मरणीय है।

5.5.2 नए मेहमान : मूल पाठ

पात्र

विश्वनाथ	:	गृहपति
नन्हेमल, बाबूलाल	:	अतिथि
प्रमोद, किरण	:	विश्वनाथ के बच्चे
आगंतुक	:	रेवती का भाई

रेवती : विश्वनाथ की पत्नी

स्थान : भारत का कोई बड़ा नगर

समय : गर्मी की रात को आठ बजे

(गर्मी की ऋतु, रात के आठ बजे का समय। कमरे के पूर्व की ओर दो दरवाजे। दक्षिण का द्वार बाहर आने–जाने के लिए। पश्चिम का द्वार भीतर खुलता है। उत्तर की ओर एक मेज है, जिस पर कुछ किताबें और अखबार रखे हैं। पास में दो कुर्सियां रखी हैं। पश्चिमी द्वार के पास एक पलंग बिछा है। मेज पर रखा हुआ पुराना पंखा चल रहा है, जिसमें बहुत कम हवा आ रही है। कमरा बेहद गरम है। मकान एक साधारण गृहस्थ का है। पंखे के पास चार–पांच साल का एक बच्चा सो रहा है। पंखे की हवा केवल उस बच्चे को लग रही है। फिर भी वह पसीने से तर है। इसीलिए वह कभी–कभी बेचैन हो उठता है, फिर सो जाता है।

कुरता–धोती पहने एक व्यक्ति प्रवेश करता है। पसीने से उसके कपड़े तर हैं। कुरता उतारकर वह खूंटी पर टांग देता है और हाथ के पंखे से बच्चे को हवा करता है। उसका नाम विश्वनाथ है। उम्र 45 वर्ष, गठा हुआ शरीर, गेहुंआ रंग, मुख पर गंभीरता तथा सुसंस्कृति के चिह्न।)

विश्वनाथ : ओफ! बड़ी गर्मी है। [पंखा जोर–जोर से करने लगता है] इन बन्द मकानों में रहना कितना भयंकर है। मकान है कि भट्टी।

[पश्चिम की ओर से एक स्त्री प्रवेश करती है]

रेवती : [आँचल से मुंह का पसीना पोंछती हुई] पत्ता तक नहीं हिल रहा है। जैसे सांस बंद हो जाएगी। सिर फटा जा रहा है। [सिर दबाती है]

विश्वनाथ : पानी पीते–पीते पेट फूला जा रहा है और प्यास है कि बुझने का नाम नहीं लेती। अभी चार गिलास पानी पीकर आया हूँ, फिर भी होंठ सूख रहे हैं। एक गिलास पानी और पिला दो, ठण्डा तो क्या होगा।

रेवती : गरम है! आँगन में घड़े में भी तो पानी ठण्डा नहीं होता–हवा लगे, तब तो ठण्डा हो। जाने कब तक इस जेलखाने में सड़ना होगा।

विश्वनाथ : मकान मिलता ही नहीं। आज दो साल से दिन–रात एक करके ढूँढ रहा हूँ। हाँ, पानी तो ले आओ, जरा गला भी तर कर लूँ।

रेवती : बर्फ ले आते। पर मरी बर्फ भी कोई कहाँ तक पिए।

विश्वनाथ : बर्फ! बर्फ का पानी पीने से क्या फायदा? प्यास जैसी की तैसी, बल्कि दुगुनी लगती है। ओफ! पंखा ले लो। बच्चे क्या ऊपर हैं?

रेवती : रहने दो, तुम्हीं करो। छत इतनी छोटी है कि पूरी खाट भी नहीं आती। एक खाट पर दो–दो, तीन–तीन बच्चे सोते हैं, तब भी पूरा नहीं पड़ता।

विश्वनाथ : एक ये पड़ोसी हैं, निर्दयी, जो खाली छत पड़ी रहने पर भी बच्चों के लिए एक खाट नहीं बिछाने देते।

रेवती : वे तो हमको मुसीबत में देखकर प्रसन्न होते हैं। उस दिन मैंने कहा तो लाला की औरत बोली, 'क्या छत तुम्हारे लिए है? नकद पचास देते हैं, तब चार खाटों की जगह मिली है। न बाबा, यह नहीं हो सकेगा। मैं खाट नहीं बिछाने दूँगी। सब हवा रुक जाएगी और किसी को सोता देखकर नींद नहीं आती।'

विश्वनाथ : पर बच्चों के सोने में क्या हर्ज है? जरा आराम से सो सकेंगे। कहो तो मैं कहूँ?

रेवती : क्या फायदा? अगर लाला मान भी ले, तो वह दुष्टा नहीं मानेगी। वैसे भी मैं उसकी छत पर बच्चों का अकेला सोना पसन्द नहीं करूँगी। बड़ी डायन औरत है। उसके तो बाल–बच्चे हैं नहीं, कुछ कर दे तब?

विश्वनाथ : फिर जाने दो। मैं नीचे आँगन में सो जाया करूँगा। कमरे में भला क्या सोया जाएगा? मैं कभी–कभी सोचता हूँ, यदि कोई अतिथि आ जाए तो क्या होगा?

रेवती : ईश्वर करे इन दिनों कोई मेहमान न आए। मैं तो वैसे ही गर्मी के मारे मर रही हूँ। पिछले पन्द्रह दिन से दर्द के मारे सिर फट रहा है। मैं ही जानती हूँ, जैसे रोटी बनाती हूँ।

विश्वनाथ : सारे शहर में जैसे आग बरस रही हो। यहाँ की गर्मी से ईश्वर बचाए। इसीलिए यहाँ गर्मियों में सभी सम्पन्न लोग पहाड़ों पर चले जाते हैं।

रेवती : चले जाते होंगे। गरीबों की तो मौत है।

[रेवती जाती है। बच्चा गर्मी से घबरा उठता है।
विश्वनाथ जोर–जोर से पंखा करता है।]

विश्वनाथ : इन सुकुमार बालकों का क्या अपराध है? इन्होंने क्या बिगाड़ा है? तमाम शरीर मारे गर्मी के उबल रहा है।

[रेवती पानी का गिलास लेकर आती है]

रेवती : बड़े का तो अभी बुरा हाल है। अब भी कभी–कभी देह गर्म हो जाती है।

विश्वनाथ : [पानी पीकर] उसने क्या बीमारी भोगी है– पूरे तीन महीने तो पड़ा रहा है। वह तो कहो मैंने उसे शिमला भेज दिया, नहीं तो न जाने...

रेवती : भगवान् ने रक्षा की। देखा नहीं, सामने वालों की लड़की को फिर से टाइफाइड हो गया और वह चल बसी। तुम कुछ दिनों की छुट्टी क्यों नहीं ले लेते मुझे डर है कहीं कोई बीमार न पड़ जाए।

विश्वनाथ : छुट्टी कोई दे तब न! छुट्टी ले भी लूँ, तो खर्च चाहिए। खैर, तुम आज जाकर ऊपर सो जाओ। मैं आँगन में खाट डालकर पड़ा रहूँगा। बच्चे को ले जाओ, वह गर्मी में भुन रहा है।

रेवती : यह नहीं हो सकता। मैं नीचे सो जाऊँगी। तुम ऊपर छत पर जाकर सो जाओ और ऊपर भी क्या हवा है। चारों तरफ से दीवारें तप रही हैं। तुम्हीं जाओ ऊपर।

विश्वनाथ : यही तो तुम्हारी बुरी आदत है। किसी का कहना न मानो ..., बस अपनी ही हाँके जाओगी। पन्द्रह दिन से सिर में दर्द हो रहा है। मैं कहता हूँ खुली हवा में सो जाओगी तो तबियत ठीक हो जाएगी।

रेवती : तुम तो व्यर्थ की जिद करते हो। भला यहाँ आँगन में तुम्हें नींद आएगी? बन्द मकान, हवा का नाम नहीं। रात भर नींद न आएगी। सबेरे काम पर जाना है। जाओ, मेरा क्या है, पड़ी रहूँगी।

विश्वनाथ : नहीं, यह नहीं हो सकता। आज तो तुम्हें ऊपर सोना पड़ेगा। वैसे भी मुझे कुछ काम करना है।

रेवती : ऐसी गर्मी में क्या काम करोगे? तुम्हें भी न जाने क्या धुन सवार हो जाती है। जाओ, सो जाओ। मैं आँगन में खाट पर इसे लेकर जैसे–तैसे काट लूँगी, जाओ।

विश्वनाथ : अच्छा, तुम जानो। मैं तो तुम्हारी भलाई के लिए कह रहा था। मैं ही ऊपर जाता हूँ।

[बाहर से कोई दरवाजा खटखटाता है।]

रेवती : कौन होगा?

विश्वनाथ : न जाने! देखता हूँ।

रेवती : हे भगवान्! कोई मुसीबत न आए।

[बच्चे को पंखा करती है। बच्चा गर्मी से उठ बैठता है और पानी माँगता है। वह बच्चे को पानी पिलाती है, पंखा करती है। इसी समय दो व्यक्तियों साथ विश्वनाथ प्रवेश करता है। रेवती बच्चे को लेकर आँगन में चली जाती है। आगंतुक एक साधारण बिस्तर तथा एक संदूक लेकर कमरे में प्रवेश करते हैं। विश्वनाथ भी पीछे–पीछे आता है। कमीजों के ऊपर काली बंडी, सिर पर सफेद पगड़ियाँ। बड़े की अवस्था पैंतीस और छोटे की चौबीस है। रंग साँवला, बड़े की मूँछें मुँह को घेरे हुए। माथे पर सलवट। छोटे की अधकटी मूँछें, लम्बा मुख और बड़े–बड़े दाँत। दोनों मैली धोतियाँ पहने हैं। बड़े का नाम नन्हेमल और छोटे का नाम बाबूलाल है। इस हबड़–धबड़ में दोनों बच्चे ऊपर से उतरकर आते हैं और दरवाजे के पास खड़े होकर आगंतुकों को देखते हैं।]

विश्वनाथ : [बड़े लड़के से] प्रमोद, जरा कुर्सी इधर खिसका दो। [दूसरे अतिथि से] आप इधर खाट पर आ जाइए। जरा पंखा तेज कर देना, किरण [पंखा तेज किया जाता है, किन्तु पंखा वैसे ही चलता है]

नन्हेंमल : [पगड़ी के पल्ले से मुँह का पसीना पोंछकर उसी से हवा करता हुआ] बड़ी गर्मी है। क्या कहें पण्डितजी, पैदल चले आ रहे हैं, कपड़े तो ऐसे हो गए कि निचोड़ लो।

विश्वनाथ : जी, आप लोग...

बाबूलाल : चाचा, मेरे कपड़े निचोड़कर देख लो। एक लोटे से कम पसीना नहीं निकलेगा। धोती ऐसे चर्रा रही है, जैसे पुरानी हो। पिछले दिनों नकद नौ रुपये खर्च करके खरीदी थी।

नन्हेमल : मोतीराम की दुकान से ली होगी। बड़ा मक्कार है। मैंने भी कुरतों के लिए छः गज मलमल मोल ली थी, सवा रुपया गज दी, जबकि नत्थामल के यहाँ साढ़े नौ आने गज बिक रही थी। पण्डितजी, गला सूखा जा रहा है। स्टेशन पर पानी भी नहीं मिला, मन करता है लेमन की पाचँ–छः बोतलें पी जाऊँ।

बाबूलाल : मुझे कोई पिलाकर देखे, दस से कम नहीं पीऊँगा। [बच्चों की ओर देखकर] क्या नाम है तुम्हारा भाई?

प्रमोद : प्रमोद।

बाबूलाल : ठंडा–ठंडा पानी पिलाओ दोस्त, प्राण सूखे जा रहे हैं।

विश्वनाथ : देखो प्रमोद, कहीं से बर्फ मिले तो ले आओ, आप लोग...

नन्हेमल : अपना लोटा कहाँ रखा है? थैले में ही है न?

बाबूलाल : बिस्तर में होगा चाचा, निकालूँ क्या? और तो और, बिस्तर भी पसीने से भींग गया, चाचा मैं तो पहले नहाऊँगा, फिर जो होगा देखा जाएगा, हाँ नहीं तो। मुझे नहीं मालूम था यहाँ इतनी गर्मी है।

नन्हेमल : देखते जाओ। हाँ, साहब!

विश्वनाथ : क्षमा कीजिएगा, आप कहाँ से पधारे हैं?

नन्हेमल : अरे, आप नहीं जानते। वह लाल संपतराम हैं न गोटेवाला, वह मेरे चचेरे भाई हैं। क्या बताएँ साहब, उन बेचारों का कारोबार सब चौपट हो गया, हम लोगों को देखते–देखते वह लाखों के आदमी खाक में मिल गए। बाबू, यह मेरी बंडी संदूक में रख दो।

विश्वनाथ : कौन संपतराम?

बाबूलाल : अरे, वही गोटेवाले। लाओ न, चाचा, [संदूक खोलकर बंडी रखते हुए] माल–मसाला तो अंटी में है न?

नन्हेमल : नहीं! जेब में है। बंडी की जेब में है। अब डर की क्या बात है? घर ही तो है। जरा बीड़ी का बंडल तो मेरी जेब से निकाल।

बाबूलाल : बीड़ी तो मेरे पास भी है, लो! जरा भाई, दियासलाई ले आना।

किरण : अभी लाया।

[जाता है और लौटकर दियासलाई देता है। दोनों बीड़ी पीते हैं।]

विश्वनाथ : मैं संपतराम को नहीं जानता।

नन्हेमल : मैं संपतराम को जानने की क्यों..., वह तो आपसे मिले हैं। आपकी तो वह...

बाबूलाल : हाँ, उन्होंने कई बार मुझसे कहा है। आपकी तो वह बहुत तारीफ करते हैं। पण्डितजी, क्या मकान इतना ही बड़ा है?

नन्हेमल : देख नहीं रहे, इसके पीछे एक कमरा दिखाई देता है। पण्डितजी, इसके पीछे आँगन होगा और ऊपर छत होगी? शहर में तो ऐसी ही मकान होते हैं।

किरण : [विश्वनाथ से] माँ पूछती है खाना....

नन्हेमल : क्यों बाबूलाल? पण्डितजी, कष्ट तो होगा, पर तुम जानो, खाना तो....

बाबूलाल : बस एक साग और पूरी।

नन्हेमल : वैसे तो मैं पराँठे भी खा लेता हूँ।

बाबूलाल : अरे, खाने की भली चलाई, पेट ही भरना है। शहर में आये हैं तो किसी को तकलीफ थोड़े ही देंगे। देखिए पण्डितजी, जिसमें आपको आराम हो, हम तो रोटी भी खा लेंगे। कल फिर देखी जाएगी।

नन्हेमल : भूख कब तक नहीं लगेगी– सारा दिन तो गया।

बाबूलाल : नहाने का प्रबंध तो होगा, पण्डितजी?

[प्रमोद बर्फ का पानी लाता है]

नन्हेमल : हाँ, ला तो जरा, डेढ़ लोटा पानी पीऊँगा।

बाबूलाल : उतना ही मैं भी।

[दोनों गट–गट पानी पीते हैं]

किरण : [विश्वनाथ से धीरे–से] फिर खाना....

विश्वनाथ : [इशारे से] ठहर जा जरा।

नन्हेमल : [पानी पीकर] आह, अब जान में जान आई। सचमुच गर्मी में पानी ही तो जान है।

बाबूलाल : पानी भी खूब ठंडा है। वाह भैया, खुश रहो।

नन्हेमल : कितने अच्छे लड़के हैं!

बाबूलाल : शहर के हैं न!

नन्हेमल : क्षमा कीजिए, मैंने आपकी....

दोनों : अरे पण्डितजी, आप कैसी बातें करते हैं? हम तो आपके पास के हैं।

विश्वनाथ : आप कहाँ से आए हैं?

नन्हेमल : बिजनौर से।

विश्वनाथ : [आश्चर्य से] बिजनौर से! बिजनौर में तो मैं गया हूँ, किन्तु....

नन्हेमल : मैं जरा नहाना चाहता हूँ।

बाबूलाल : मैं भी स्नान करूँगा।

विश्वनाथ : पानी तो नल में शायद ही हो, फिर भी देख लो। प्रमोद, इन्हें नीचे नल पर ले जाओ।

बाबूलाल : तब तक खाना भी तैयार हो जाएगा।

[दोनों बाहर निकल आते हैं। रेवती का प्रवेश]

रेवती : ये लोग कौन हैं? जान–पहचान के तो मालूम नहीं पड़ते।

विश्वनाथ : क्या पूछूँ? दो–तीन बार पूछा, ठीक–ठीक उत्तर ही नहीं देते।

रेवती : मेरा तो दर्द के मारे सिर फटा जा रहा है। इधर पिछली शिकायत फिर से बढ़ती जा रही है। पहले सोते–सोते हाथ–पैर सुन्न हो जाते थे, अब बैठे–बैठे हो जाते हैं।

विश्वनाथ : क्या बताऊँ, जीवन में तुम्हें कोई सुख न दे सका। नौकर भी न टिकता है।

रेवती : पानी जो तीन मंजिल पर चढ़ाना पड़ता है इसलिए भाग जाता है। गर्मी क्या कम है? किसी को क्या जरूरत पड़ी है, जो गर्मी में भुने? यह तो हमारा ही भाग्य है कि चने की तरह भाड़ में भुनते हैं।

विश्वनाथ : क्या किया जाए?

रेवती : फिर क्या खाना बनाना होगा? पर ये हैं कौन?

विश्वनाथ : खाना तो बनाना ही पड़ेगा। कोई भी हों, जब आए हैं, तो जरूर खाना खायेंगे। थोड़ा–सा बना लो।

रेवती : [तुनक कर] खाना तो खिलाना ही होगा– तुम भी खूब हो। भला इस तरह कैसे काम चलेगा? दर्द के मारे सिर फटा जा रहा है, फिर खाना बनाना इनके लिए और इस समय? आखिर ये आए कहाँ से हैं?

विश्वनाथ : कहते हैं बिजनौर से आए हैं।

रेवती : [आश्चर्य से] बिजनौर! क्या बिजनौर में तुम्हारी जान–पहचान है? अपनी बिरादरी का तो कोई आदमी वहां रहता नहीं है।

विश्वनाथ : बहुत दिन हुए एक बार काम से बिजनौर गया था, पर तब से अब तो बीस साल हो गए हैं।

रेवती : सोच लो, शायद वहाँ कोई साहित्यिक मित्र हो, उसी ने इन्हें भेजा हो।

विश्वनाथ : ध्यान तो नहीं आता, फिर भी कदाचित् कोई मुझे जानता हो और उसी ने भेजा हो। किसी संपतराम का नाम बता रहे थे, मैं जानता भी नहीं।

रेवती : बड़ी मुश्किल है। मैं खाना नहीं बनाऊँगी। पहले आत्मा, फिर परमात्मा– जब शरीर ही ठीक नहीं रहता, तो फिर क्या करूँ?

विश्वनाथ : क्या कहेंगे कि रातभर भूखा मारा, बाजार से कुछ मँगा दो न।

रेवती : बाजार से क्या मुफ्त आ जाएगा? तीन–चार रुपये से कम में क्या उनका पेट भरेगा! पहले तो पूछ लो, मैं बाद में खाना बनाऊँगी।

[बाबूलाल का प्रवेश। रेवती का दूसरी ओर से जाना]

बाबूलाल : तबियत अब शांत हुई, फिर भी पसीने से नहा गया हूँ। न जाने पण्डितजी, आप कैसे रहते हैं? [पंखा करता है]

विश्वनाथ : आठ–नौ लाख आदमी इसी शहर में रहते हैं और उनमें से छः–सात लाख आदमी इसी तरह के मकानों में रहते हैं।

[ऊपर छत पर शोर मचता है]

प्रमोद : [आकर] उन्होंने दूसरी छत पर हाथ धो लिए, पानी फैल गया इसीलिए वह पड़ोसी की स्त्री चिल्ला रही है। मैंने कहा, सबेरे साफ कर देंगे, इन्हें मालूम नहीं था।

विश्वनाथ : तुमने क्यों नहीं बताया कि हाथ दूसरी जगह धोओ।

प्रमोद : मैं पानी पीने चला गया था। वहाँ ऊषा रोने लगी। उसे चुप कराया, पानी पिलाया और पंखा करता रहा।

विश्वनाथ : चलो कोई बात नहीं, उनसे कह दो कि सबेरे साफ करा देंगे।

[नेपथ्य में– 'अरे बाबू, मेरी धोती दे देना। मैं भी नहा लूँ।']

बाबूलाल : लाया चाचा! [जाता है]

[पड़ोसी का तेजी से प्रवेश]

पड़ोसी : देखिए साहब, मेहमान आपके होंगे, मेरे नहीं। मैं यह बर्दाश्त नहीं कर सकता कि मेरी छत पर इस तरह गंदा पानी फैलाया जाए। सारी छत गंदी कर दी।

विश्वनाथ : वाकई गलती हो गयी, कल सबेरे साफ करा दूँगा।

पड़ोसी : आपसे रोज ही गलती हो जाती है।

विश्वनाथ : अनजान आदमी से गलती हो ही जाती है। उसे क्षमा कर देना चाहिए। कल से ऐसा नहीं होगा।

पड़ोसी : होगा क्यों नहीं, रोज होगा। अभी उसी दिन आपके एक और मेहमान ने पानी फैला दिया था। फिर वह खाट बिछाकर लेट गया था।

विश्वनाथ : मैंने समझा तो दिया था, फिर तो वह आदमी खाट पर नहीं लेटा था।

पड़ोसी : तो आपके यहाँ इतने मेहमान आते ही क्यों हैं? यदि मेहमान बुलाने हों तो बड़ा–सा मकान लो।

विश्वनाथ : यह भी आपने खूब कहा कि इतने मेहमान क्यों आते हैं। अरे भाई, मेहमानों को क्या मैं बुलाता हूँ? खैर, आज क्षमा करें, अब आगे ऐसा नहीं होगा।

पड़ोसी : कहाँ तक कोई क्षमा करे। क्षमा, क्षमा! बस एक ही बात याद कर ली है– क्षमा।

[चला जाता है। दोनों अतिथि आते हैं।]

दोनों : क्या बात है?

विश्वनाथ : कुछ नहीं, आप धोतियाँ छज्जे पर सुखा दें।

नन्हेमल : ले बाबू, डाल तो दे और ला, बीड़ी निकाल।

बाबूलाल : मेरी जेब से ले लो। [धोतियाँ लेकर चला जाता है]

नन्हेमल : सचमुच हमारी वजह से आपको बड़ा कष्ट हुआ। [बैठकर बीड़ी सुलगाता है] भैया, जरा–सा पानी और पिला। उफ्, बड़ी गर्मी है। हाँ, साहब, खाने में क्या देरदार है? बात यह है कि नींद बड़े जोर से आ रही है।

विश्वनाथ : देखिए! मैं आपसे एक–दो बातें पूछना चाहता हूँ।

नन्हेमल : हाँ, हाँ, पूछिए, मालूम होता है आपने हमें पहचाना नहीं है।

[बाबूलाल आता है]

विश्वनाथ : जी हाँ, बात यह है कि मैं बिजनौर गया तो अवश्य हूँ, पर बहुत दिन हो गए।

नन्हेमल : तो क्या हर्ज है, कभी–कभी ऐसा भी हो जाता है। हम तो आपको जानते हैं, कई बार आपको देखा भी है।

बाबूलाल : लाला भानामल की लड़की की शादी में आप नजीबाबाद गए थे?

नन्हेमल : अरे, दूर क्यों जाते हो? अभी पिछले साल आप मुरादाबाद गए थे?

विश्वनाथ : हाँ, पिछले साल मैं, लखनऊ जाते हुए दो दिन के लिए जगदीश प्रसाद के पास मुरादाबाद ठहरा था।

नन्हेमल : हाँ, सेठ जगदीश प्रसाद के यहाँ हमने आपको देखा था।

बाबूलाल : उनकी आटे की मिल है। क्या कहने हैं उनके, बड़े आदमी हैं। हम उन्हीं के रिश्तेदार हैं।

विश्वनाथ : पर उनकी तो प्रेस है।

नन्हेमल : प्रेस भी होगा। उनकी एक बड़ी मिल है। अब एक और गन्ने की मिल बिजनौर में खुल रही है।

बाबूलाल : अगले महीने खुल जाएगी। हाँ, भैया, पानी ले आए, लो चाचा, पहले तुम पी लो।

विश्वनाथ : तो आप कोई चिट्ठी–विट्ठी लाए हैं।

दोनों : [सकपका कर] चिट्ठी–विट्ठी तो नहीं लाए हैं।

नन्हेंमल : संपतराम ने कहा था कि स्टेशन से उतरकर सीधे रेलवे रोड चले जाना। वहाँ कृष्ण गली में वे रहते हैं।

विश्वनाथ : पर कृष्ण गली तो यहाँ छः हैं। कौन–सी गली में बताया था?

नन्हेमल : छः हैं। बहुत बड़ा शहर है, साहब! हमें तो यह मालूम नहीं है, शायद बताया हो। याद नहीं रहा।

विश्वनाथ : [खीझकर] जिसके यहाँ आपको जाना है, उसका नाम तो बताया होगा?

बाबूलाल : क्या नाम था चाचा?

नन्हेमल : नाम तो याद नहीं आता। जरा ठहरिए, सोच लूँ।

बाबूलाल : अरे, चाचा! कविराज या कवि बताया था। मैं उस समय नहीं था। सामान लेने घर गया था। तुम्हीं ने रेल में बताया था।

नन्हेमल : हाँ साहब, कविराज बताया था। आप तो बेकार शक में पड़े हैं, हम कोई चोर थोड़े ही हैं।

बाबूलाल : चोर छिपे थोड़े ही रहते हैं। पण्डितजी, क्या बताएँ हमारे घर चलकर देख लें, तो पता लगेगा कि हम भी....

नन्हेमल : चुप, एक बीड़ी और निकाल, बाबू!

बाबूलाल : यह लो।

विश्वनाथ : लेकिन मैं कविराज नहीं हूँ।

दोनों : [चिल्लाकर] तो कवि ही बताया होगा, साहब।

नन्हेमल : हमें याद नहीं आ रहा। हमें तो जो पता दिया था, उसी के सहारे आ गए। नीचे आवाज लगाई और आप मिल गए, ऊपर चढ़ आए। पहले हमने सोचा होटल या धर्मशाला में ठहर जाएं। फिर सोचा, घर के ही तो हैं। चलो, घर चलें।

विश्वनाथ : जिनके यहाँ आपको जाना था, वह काम क्या करते हैं?

नन्हेमल : काम? क्या काम बताया था, बाबू?

बाबूलाल : मेरे सामने तो कोई बात नहीं हई। मैं तो सामान लेने चला गया था। आप तो पण्डितजी, शायद वैद्य हैं।

नन्हेमल : हाँ याद आया। बताया था वैद्य हैं।

विश्वनाथ : पर मैं तो वैद्य नहीं हूँ।

प्रमोद : पिछली गली में एक कविराज वैद्य रहते हैं।

विश्वनाथ : हाँ, हाँ, ठीक! कहीं आप कविराज रामलाल वैद्य के यहाँ तो नहीं आए हैं?

दोनों : [उठकर] अरे हाँ, वही तो कविराज रामलाल!

विश्वनाथ : शायद वह उधर के ही हैं भी।

नन्हेमल : ठीक है, साहब ठीक है। वही हैं। मैं भी सोच रहा था कि आप न संपतराम को जानते हैं, न जगदीश प्रसाद को– [प्रमोद से] कहाँ है उन कविराज का घर?

विश्वनाथ : जाओ, इन्हें उनका मकान बता दो। मैं भीतर हो आऊँ।

दोनों : चलो, जल्दी चलो भैया, अच्छा साहब, राम–राम।

विश्वनाथ : [भीतर से ही] राम–राम।

रेवती : अब जान में जान आई। हाय, सिर फटा जा रहा है।

[नीचे से आवाज आती है]

[नेपथ्य में, भले आदमी, जाने कहाँ मकान लिया है, ढूँढ़ते–ढूँढ़ते आधी रात होने आयी।]

रेवती : फिर, फिर अरे [प्रसन्न होकर], अरे भैया हैं। आओ, तुमने तो खबर भी न दी।

आगंतुक : रेवती! [दोनों मिलते हैं] [विश्वनाथ से] पिछले चार घण्टे से बराबर मकान खोज रहा हूँ। क्या मेरा तार नहीं मिला?

विश्वनाथ : नहीं तो, कब तार दिया?

आगंतुक : कल ही तो झाँसी से दिया था। सोचा था कि ठीक समय पर मिल जाएगा। ओह, बड़ी परेशानी हुई।

रेवती : लो कपड़े उतार डालो। पंखा करती हूँ। अरे, प्रमोद, जा जल्दी से बर्फ तो ला, मामाजी को ठंडा पानी पिला और देख, नुक्कड़ पर हलवाई की दुकान खुली हो तो....

आगंतुक : भाई बहुत बड़ा शहर है। वह तो कहो, मैं भी ढूँढ़कर ही रहा, नहीं तो न जाने कहीं होटल या धर्मशाला में रहना पड़ता। बड़ी गर्मी है। मैं जरा नहाना चाहता हूँ।

विश्वनाथ : हाँ, हाँ अवश्य। सामने चले जाइए।

आगंतुक : एक बार तो जी में आया कि सामने होटल में ठहर जाऊँ। शायद रात को आप लोगों को कष्ट हो।

रेवती : ऐसा क्यों सोचते हो? कष्ट काहे का। यह तो हम लोगों का कर्तव्य था। अच्छा तुम तैयार हो, मैं खाना बनाती हूँ।

आगंतुक : भई देखो, इस समय खाना–वाना रहने दो। मैं पानी पीकर सो जाऊँगा। वैसे मुझे भूख भी नहीं है।

रेवती : [जाती हुई लौटकर] कैसी बातें करते हो, भैया! मैं अभी खाना बनाती हूँ।

आगंतुक : इतनी गर्मी में! रहने दो न।

विश्वनाथ : तुम नहाने तो जाओ! [आगंतुक जाता है] [रेवती से] कहो, अब?

रेवती : अब क्या– मैं खाना बनाऊँगी। भैया भूखे नहीं सो सकते।

[यवनिका]

5.5.3 नए मेहमान का सार

'नये मेहमान' समस्या प्रधान एकांकी है जिसमें महानगरों की बढ़ती जनसंख्या के कारण आवासीय समस्या को सांकेतिक रूप में उठाया गया है। अधिकांश नगर निवासी किस प्रकार छोटे–छोटे घरों में निवास कर रहे हैं और किस प्रकार उनका हृदय संकुचित हो गया है– इसका सजीव चित्रण इस एकांकी में किया गया है। छोटे घर होने की वजह से मेहमानों के आ जाने पर कितनी असुविधा नगर निवासियों को उत्पन्न हो जाती है; इसका रोचक एवं विनोदपूर्ण वर्णन इस एकांकी की विषयवस्तु है।

इस एकांकी का आकर्षण 'मान न मान, मैं तेरा मेहमान' की उक्ति चरितार्थ करने वाले दोनों नए मेहमानों का चरित्र है। वे बिना जाने–बूझे एक अनजान व्यक्ति के घर में घुस आते हैं और गृहस्वामी की परेशानियों की चिंता किए बिना अपनी फरमाइशें करते जाते हैं। गृहस्वामी विश्वनाथ के शील–संकोच का फायदा उठाकर नए मेहमान अपना उल्लू सीधा करते हैं। रेवती का चरित्र आधुनिक महिला का है जो सिर दर्द का बहाना बनाकर नए मेहमानों के लिए भोजन बनाने से बचती है, किंतु उनके जाने के बाद अपने भाई के आने पर उत्साहपूर्वक खाना बनाने लगती है।

सामग्री

उदयशंकर भट्ट ने नारी को पत्नी रूप में प्रतिष्ठित करते समय भारतीय संस्कृति के आदर्श की रक्षा की है। 'नए मेहमान' में स्त्री पात्र रेवती अपने बच्चों और पति का ख्याल करने वाली भारतीय नारी का चित्र प्रस्तुत करती है। उसे अपनी चिंता नहीं परंतु पति के स्वास्थ्य तथा बच्चों की सुरक्षा की चिंता ज्यादा है।

विश्वनाथ कहता है– 'यही तो तुम्हारी बुरी आदत है। किसी का कहना नहीं मानोगी, बस अपनी ही हांके जाओगी। पंद्रह दिन से सिर में दर्द हो रहा है। मैं चाहता हूं खुली हवा में सो जाओगी तो तबीयत ठीक हो जाएगी।'

रेवती कहती है– 'तुम तो व्यर्थ की जिद करते हो। भला यहां आंगन में तुम्हें नींद आएगी? बंद मकान, हवा का नाम नहीं। रात भर नींद न आएगी। सबेरे काम पर भी जाना है। जाओ, मेरा क्या है, पड़ी रहूंगी।'

विश्वनाथ कहता है– 'नहीं, यह नहीं हो सकता। आज तो तुम्हें ऊपर सोना पड़ेगा। वैसे भी मुझे कुछ काम करना है।'

रेवती कहती है– 'ऐसी गर्मी में क्या काम करोगे? तुम्हें भी न जाने क्या धुन सवार हो जाती है। जाओ, सो जाओ। मैं आंगन में खाट पर इसे लेकर जैसे–तैसे काट लूंगी, जाओ।'

रेवती बच्चों के प्रति अतीव प्यार के कारण अंधविश्वास भी करने लगती है। पड़ोसवाली औरत, जिसके बच्चे नहीं हैं, उसका वह विश्वास नहीं करती। रेवती कहती है– "वैसे भी मैं उसकी छत पर बच्चों का अकेला सोना पसंद नहीं करूंगी। बड़ी डायन औरत है। उसके तो बाल–बच्चे हैं नहीं, कुछ कर दे तब!"

नए मेहमान एकांकी के मुख्य पात्र रेवती और विश्वनाथ के अलावा दो अन्य पात्र नन्हेमल और बाबूलाल भी एकांकी के मुख्य आकर्षण हैं जो बिजनौर से विश्वनाथ के यहां रात में पहुंचते हैं। उन्हें जाना किसी और व्यक्ति के पास होता है लेकिन वे पहुंच जाते हैं विश्वनाथ और रेवती के पास। अपरिचित मेहमानों के आ जाने से रेवती का रोग बढ़ जाता है। खाना बनाने के नाम पर उसे सिरदर्द होने लगता है। लेकिन उन मेहमानों के जाने पर जब उसके भाई साहब अचानक रात में आ जाते हैं तो उसका रोग लुप्त हो जाता है। और सिरदर्द का पता भी नहीं रहता। वह खाना बनाने में उत्साहपूर्वक लग जाती है।

वस्तुतः इस एकांकी में दो प्रकार के मेहमानों के प्रति जो दृष्टिभेद हैं, उसे व्यंग्यात्मक शैली में अंकित किया गया है। यह एकांकी चार बिंदुओं पर केंद्रित है– गर्मी के दिनों में किसी महानगर में रहने वाले साधारण निम्न मध्यमवर्गीय व्यक्तियों का जीवन, महानगर में रहने वाले पड़ोसियों का व्यवहार, गांव–कस्बों से आने वाले भोले–भाले व्यक्तियों का अनजाने में किसी अपरिचित के यहां अधिकारपूर्वक मेहमान बनना और किसी स्त्री का अन्य मेहमानों की तुलना में अपने मायके वाले मेहमानों के प्रति अत्यधिक प्रेम व्यक्त करना।

नए मेहमान एकांकी में उदयशंकर भट्ट ने नारी की मनोवृत्ति के अंतर्गत परिचित और अपरिचित मेहमानों के अंतर को बहुत रोचकता से प्रस्तुत किया है। 'नए मेहमान– हिन्दी एकांकी साहित्य की एक ऐसी सृष्टि है, जिसमें रंगमंचीयता के सभी गुण विद्यमान

हैं। सफलतापूर्वक इस एकांकी का अनेक बार रंगमंच पर मंचन एवं रेडियो पर ध्वनि–नाटक के रूप में प्रसारण हो चुका है।

5.5.4 नए मेहमान : समीक्षात्मक अवलोकन

'नए मेहमान' एकांकी के लेखक उदयशंकर भट्ट का हिन्दी साहित्य के वरिष्ठ एकांकीकारों में प्रमुख स्थान है। यहां 'नए मेहमान' एकांकी की मुख्य तत्वों जैसे' 'कथोपकथन', 'भाषा–शैली', 'संकलन–त्रय', 'उद्देश्य' और 'रंगमंचीयता' आदि के आधार पर समीक्षा की जा रही है।

कथोपकथन

एकांकी 'नए मेहमान' के कथोपकथन, जिन्हें संवाद भी कहा जाता है, इतने सशक्त, सार्थक एवं व्यंजनापूर्ण हैं कि उनमें नाटकीयता अपने आप ही समाहित हो गई है। ये कथोपकथन संक्षिप्त, बोलचाल की शैली में तथा पात्रों के मनोभावों और परिस्थितियों का प्रतिनिधित्व करने वाले हैं। एकांकी के ये कथोपकथन जीवंत होते हुए इतने गतिशील हैं कि पाठक को कुछ भी अलग से सोचने का मौका नहीं देते हैं। इन संवादों में पात्रों का अंतर्द्वंद्व पूरी तरह से उभरकर सामने आया है और यही इनकी विशेषता है, जैसे–

विश्वनाथ : ओफ, बड़ी गर्मी है। इन बंद मकानों में रहना कितना भयंकर है! मकान है कि भट्ठी!

रेवती : पत्ता तक नहीं हिल रहा है। जैसे साँस बंद हो जाएगी। सिर फटा जा रहा है।

विश्वनाथ : पानी पीते–पीते पेट फूला आ रहा है और प्यास है कि बुझने का नाम नहीं लेती। अभी चार गिलास पानी पीकर आया हूँ, फिर भी ओंठ सूख रहे हैं। एक गिलास पानी और पिला दो। ठंडा तो क्या होगा?

रेवती : गरम है। आँगन में घड़े में भी तो पानी ठंडा नहीं होता– हवा लगे, तब तो ठंडा हो। जाने कब तक इस जेलखाने में सड़ना होगा!

विश्वनाथ का पड़ोसी के साथ होने वाले संवाद का यह उदाहरण देखिए–

पड़ोसी : देखिए साहब, मेहमान आपके होंगे, मेरे नहीं। मैं यह बर्दाश्त नहीं कर सकता कि मेरी छत पर इस तरह गंदा पानी फैलाया जाए। सारी छत गंदी कर दी।

विश्वनाथ : अनजान आदमी से गलती हो ही जाती है। उसे क्षमा कर देना चाहिए। कल से ऐसा नहीं होगा।

पड़ोसी : तो आपके यहाँ इतने मेहमान आते ही क्यों हैं? यदि मेहमान बुलाने हों, तो बड़ा–सा मकान लो।

विश्वनाथ : यह भी आपने खूब कहा कि इतने मेहमान क्यों आते हैं। अरे भाई, मेहमानों को क्या मैं बुलाता हूँ? खैर, आज क्षमा करें, अब आगे ऐसा नहीं होगा।

एकांकी के अंत में जब रेवती का भाई उसके घर आता है, तब की स्थिति देखिए–

आगंतुक : भई, देखो, इस समय खाना–वाना रहने दो। मैं पानी पीकर सो जाऊँगा। वैसे मुझे भूख नहीं है।

रेवती : कैसी बातें करते हो भैया! मैं अभी खाना बनाती हूँ।

आगंतुक : इतनी गर्मी में! रहने दो न।

विश्वनाथ : तुम नहाने तो जाओ। (रेवती से) कहो, अब?

रेवती : अब क्या– मैं खाना बनाऊँगी। भैया भूखे नहीं सो सकते।

भाषा–शैली

'नए मेहमान' एकांकी में प्रयुक्त भाषा एवं पात्रों की मानसिकता को प्रस्तुत करने वाली शैली आधुनिकता से प्रेरित है तथा रंगमंच के सर्वथा अनुकूल है। एकांकी में पात्रों के कथोपकथनों में उपयोग की गई भाषा उनकी चरित्रगत मानसिकता के अनुसार सटीक है। विश्वनाथ और रेवती के बीच संपन्न वार्तालाप की भाषा तर्कपूर्ण, सार्थक और बोलचाल के लहज़े में बहुत स्वाभाविक है। इस एकांकी के पात्रों द्वारा प्रयुक्त भाषा में कहीं तर्कपूर्ण विवशता भरी तल्खी है तो कहीं उदाहरणों की रोचकता और कहीं अंतःकरण को आंदोलित कर देने वाली व्यंजना।

एकांकीकार ने मुहावरों का भी बहुत सुंदर एवं स्वाभाविक प्रयोग किया है, जैसे– 'चने की तरह भाड़ में भुनते हैं', 'पेट फूला आ रहा है', 'सांस बंद हो जाएगी', 'पत्ता तक नहीं हिल रहा', 'पहले आत्मा फिर परमात्मा' आदि।

वाक्य रचना के समय एकांकीकार ने शब्दों का बहुत सुंदर चयन किया है, जिससे पूरा वातावरण सहज रूप से उभरकर सामने आ जाता है, जैसे– 'भैया भूखे नहीं सो सकते', 'अब जान में ज़ान आई', 'हाय, सिर फटा जा रहा है', 'चिट्ठी–विट्ठी', 'हम कोई चोर थोड़े ही हैं', 'खाने में क्या देरदार है', 'बात यह है कि नींद बड़े जोर से आ रही है', 'ला, बीड़ी निकाल', 'मेरी जेब से ले लो', 'आप धोतियां छज्जे पर सुखाते हैं', 'पड़ोसी की स्त्री चिल्ला रही है', 'पसीने से नहा गया हूं', 'खाना तो बनाना ही पड़ेगा', 'वैसे तो मैं पराठे भी खा लेता हूं', 'पंडितजी गला सूखा जा रहा है', 'जैसे–तैसे रात काट लूंगी', 'बड़ी डायन औरत है', 'जाने कब तक इस जेलखाने में सड़ना होगा', 'मकान है कि भट्टी' आदि ऐसे अनेक लोकप्रिय शब्दों का प्रयोग किया है।

संकलन–त्रय

रंगमंच से संदर्भित होने के कारण किसी भी नाट्य अथवा एकांकी में संकलन–त्रय का बहुत महत्व होता है। कल्पित कथा को घटित कथा में प्रतीति कराने का संपूर्ण दायित्व संकलन –त्रय के समायोजन पर निर्भर रहता है। संकलन–त्रय, जिसे अन्विति–त्रय भी कहा जाता है, में स्थान, समय और घटना में एकसूत्रात्मक संबंध होता है। कथा विधा में इसे 'देश, काल और परिस्थिति' कहा जाता है।

पं. उदयशंकर भट्ट रेडियो और रंगमंच के शिल्प से जुड़े हुए थे, इसलिए उनकी प्रायः सभी नाट्य–कृतियों, विषेशकर आलोच्य एकांकी 'नए मेहमान' में संकलन–त्रय का निर्वाह बहुत कुशलता से हुआ है। संपूर्ण कथानक एक ही मंच–अवतारणा में एक ही

दृश्यबंध में घटित हुआ है। स्थान, समय और घटनाओं के सुंदर समन्वय के कारण यह एकांकी रंगमंच के सर्वथा उपयुक्त है।

एकांकी की कथा दिल्ली जैसे किसी भी महानगर की है, जिसमें सामान्य आय वाले व्यक्ति की पारिवारिक एवं आर्थिक कठिनाइयों का वर्णन है।

कथा का संपूर्ण घटनाक्रम रात्रि आठ बजे से अर्द्धरात्रि के पूर्व तक घटित होता है। कथा में घटनाओं का संयोजन क्रमिक रूप से बहुत सुनियोजित है। विश्वनाथ का बाहर से घर में आना, अपनी पत्नी रेवती से पानी मांगना, गर्मी के कारण घर में बच्चों और रेवती का परेशान होना, पड़ोसियों के असहयोग के बीच होने वाली परेशानियों के बीच अचानक नन्हेमल और बाबूलाल जैसे अपरिचित मेहमानों का आगमन, मेहमानों के द्वारा अपनी आवश्यकताओं की सूची को बढ़ाते जाना, मेहमानों को गलत स्थान पर आने की जानकारी होना और उनका वापस जाना, उसके पश्चात् अचानक नए आगंतुक रेवती के भाई का आना और रेवती द्वारा उसकी सेवा में लग जाना– ये कुछ ऐसे घटनाक्रम हैं, जो एक के बाद एक कथावस्तु में आकर रंगमंच में दर्शकों के मन में उत्सुकता की सृष्टि करते हुए गुदगुदाते रहते हैं। इस दृष्टि से यह एकांकी अपने आप में अप्रतिम है।

उद्देश्य

व्यंग्य से भरपूर 'नए मेहमान' एक बहुलोकप्रिय उद्देश्यपूर्ण एकांकी है। इस एकांकी के द्वारा भट्ट जी ने नारी–मनोविज्ञान के अंतर्गत जाने और अनजाने मेहमानों के अंतर को बहुत रोचकता के साथ प्रस्तुत किया है। इस एकांकी में समस्याओं को प्रमुखता से उकेरा गया है– गर्मी के दिनों में किसी महानगर में रहने वाले साधारण निम्न मध्यमवर्गीय व्यक्तियों का जीवन, महानगर में रहने वाले पड़ोसियों का व्यवहार, गांव–कस्बों से आने वाले भोले–भाले व्यक्तियों का अनजाने में किसी अपरिचित के यहां अधिकारपूर्वक मेहमान बनना और किसी स्त्री का अन्य मेहमानों की तुलना में अपने मायके वाले मेहमानों के प्रति सहज प्रेम की अभिव्यक्ति।

एकांकी 'नए मेहमान' संदेश देती है कि व्यक्ति को प्रत्येक स्थिति में समभाव से सहज रहना चाहिए। विपरीत स्थितियों का धैर्यपूर्वक सामना करते हुए उसका समाधान खोजना चाहिए। व्यावहारिक बनते हुए सभी के प्रति समान और प्रेमपूर्ण व्यवहार रखना चाहिए। समाज में व्यक्तियों के जीवन–मूल्यों में विघटन हुआ है, इसलिए किसी भी अपरिचित व्यक्ति से व्यवहार करते हुए सतर्क रहना चाहिए। आलोच्य एकांकी एक उद्देश्यपूर्ण, किंतु हास्य एकांकी है, जिसमें भट्टजी ने एकांकी की नायिका रेवती के माध्यम से नारी–मनोविज्ञान का बहुत सुंदर एवं रोचक परिदृश्य उपस्थित किया है। यही कारण है कि हल्के–फुल्के व्यंग्यपूर्ण कथोपकथनों के बीच एकांकी का संपूर्ण घटनाक्रम बहुत रोचक बन पड़ा है।

रंगमंचीयता

'नए मेहमान' एक सफल रंगमंचीय एकांकी है। एक ही मंच–संयोजना में सारे घटनाक्रम को जिस रोचकता के साथ उदयशंकर भट्ट जी ने प्रस्तुत किया है, वह इस एकांकी को रंगमंच पर जीवंत बनाने के लिए पर्याप्त है। घटनाओं का विकास और उनका उतार–चढ़ाव

इस एकांकी को रंगमंच के लिए उपयुक्त बनाता है। गिने–चुने पात्र होने से उनका अंतर्द्वंद्व भी रंगमंच पर बड़ी मुखरता से परिलक्षित होने की पूर्ण संभावनाएं हैं। संकलन–त्रय सुनियोजित होने से कथावस्तु के संगठन में स्थान, समय और घटना के बीच होने वाले सामंजस्य की संभावनाएं रंगमंच के अनुकूल हो गई हैं।

आधुनिक परिदृश्य में ध्वनि एवं प्रकाश के विस्तार की पर्याप्त संभावनाएं इस एकांकी में अंतर्निहित हैं। निश्चित ही यह एक सफल रंगमंचीय एकांकी है।

5.6 सारांश

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल निबंधकार, इतिहासकार, कवि, कोषकार एवं अनुवादक भी थे। उन्होंने हिन्दी साहित्य की विविध विधाओं में आचार्यवत् योगदान किया। इनकी रचनाओं में पांडित्य, गंभीरता और मननशीलता के दर्शन होते हैं। शुक्ल जी ने अनेक रचनाओं का प्रणयन किया। सूरदास, गोस्वामी तुलसीदास, मलिक मुहम्मद जायसी पर निबंधात्मक आलोचनाएं अत्यंत अर्थपूर्ण एवं मनोवैज्ञानिक हैं।

शुक्ल जी का 'मित्रता' निबंध मित्रता नामक भाव के संबंध में है। शुक्ल जी ने वैचारिक दृष्टि से विश्लेषण किया है कि मित्रता भी एक भाव है। युवावस्था में कैसे मित्र बनाएं और कैसे लोगों की संगति करें यही इस निबंध का प्रतिपाद्य है। शुक्ल जी ने निबंध के आरंभ में इस बात पर विचार किया है कि मित्र कैसे बनते हैं।

महादेवी वर्मा सर्वाधिक प्रतिभावान कवयित्रियों में से एक और हिन्दी साहित्य में छायावादी युग के प्रमुख स्तंभों– जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला और सुमित्रानंदन पंत के साथ अहम स्तंभ मानी जाती हैं।

गद्य साहित्य में भी उन्होंने अपनी अमिट छाप छोड़ी। उनके लेख, निबंध, रेखाचित्र, संस्मरण एवं भूमिकाओं में गद्य का उत्कृष्ठतम रूप देखने को मिलता है।

'प्रथम भेंट–अंतिम भेंट' की नायिका के दोबारा विधवा होने की सूचना जब महादेवी वर्मा को अपनी सहेली से मिलती है तब वे अपनी आक्रोशपूर्ण पीड़ा इस प्रकार व्यक्त करती हैं– "मन में आ रहा है कि मन्दबुद्धि सखी को एक लंबा–चौड़ा व्याख्यान लिख डालूं। मनु महाराज जो कह गए हैं, उसे असत्य प्रमाणित कर कुम्भीपाक में विहार करने की इच्छा न हो, तो यह कहना ही पड़ेगा कि बिट्टो तीसरे विवाह की इच्छा को हृदय के किसी कोने में छिपाए हुए है और उसके उद्धार के लिए निरंतर कटिबद्ध वृद्ध परोपकारियों की इस पुण्यभूमि में और विशेषकर इस जाग्रत युग में कमी नहीं हो सकती।"

हिन्दी साहित्याकाश में ख्यातिलब्ध संपादक, अनुवादक, शब्द कोषागार, समीक्षक, लेखक एवं कवि के रूप में देदीप्यमान डॉ. विद्यानिवास मिश्र के निबंध संग्रह 'बसंत आ गया पर कोई उत्कंठा नहीं' में कुल 22 निबंध संगृहीत हैं। बसंत आ गया... इस संग्रह का प्रतिनिधि निबंध है।

स्वातंत्र्योत्तर काल में ललित विधा को समुन्नत करने वाले मनीषियों में डॉ. विद्यानिवास मिश्र अग्रणी हस्ताक्षर हैं। आप आधुनिक युग के श्रेष्ठ हिन्दी निबंधकार होने के

Institute of Distance Education
Rajiv Gandhi University

A Central University

Rono Hills, Arunachal Pradesh

Contact us:

+91-98638 68890 | Ide Rgu | Ide Rgu | helpdesk.ide@rgu.ac.in